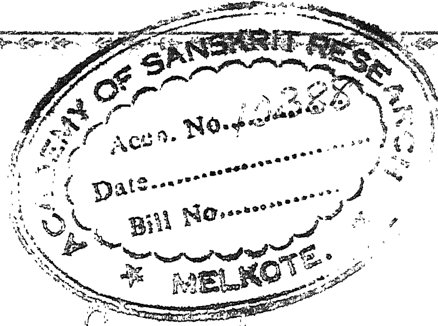
Rg veda Samhitha:

Dev: script.



समर्पण

जिनका हिन्दी-साहित्य-प्रेम भारत-प्रसिद्ध है, जो वैदिक धर्मके अनन्य
भक्त हैं, जिनकी विद्वत्ता और लेखनकलाकी प्रशंसा
शत मुखसे की जाती है, जिनकी राजशासन-
निपुणता, सरलता, दानपरायणता और
मृगया-प्रवीणता आदर्श और
अनुकरणीय हैं, उन

बनैली-नरेश, ब्राह्मण-रत्न

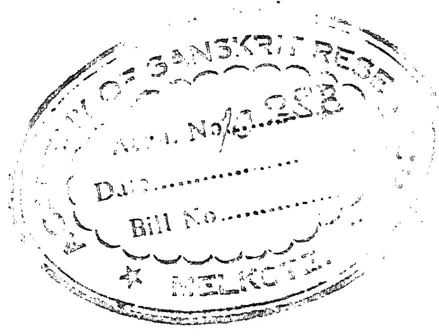
राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी० ए०

कमनीय कर-कमलोंमें

सादर समर्पित

—रामगोविन्द त्रिवेदी

गौरीनाथ झा



प्राक् कथन

संसारके प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थ तीन गिने जाते हैं—वेद, चीनियोंका शुकिंग और पारसियोंकी गाथाएँ अथवा अवस्ता। प्रबल विद्याव्यसनी यूरोपियनोंने इन तीनोंका यथेष्ट मन्थन किया है। इनपर, उन्होंने, लाखों रुपये खर्च किये हैं, कितने ही आलोचनाएँ-प्रत्यालोचनाएँ और भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं। कइयोंने तो एक-एक शब्दका विश्लेषण और निर्वचन करनेमें महीनों बिता डाले हैं! इन ग्रन्थोंके बलपर उन्होंने तुलनात्मक देवता-विज्ञान और भाषा-विज्ञान नामक नवीन शास्त्रोंको आविष्कृत अथवा पुष्पित किया है।

सबको तो नहीं; परन्तु अधिकांश विद्वानोंकी राय है कि, उक्त तीनोंमें वेद सबसे प्राचीन हैं। वेदोंमें भी ऋग्वेद प्राचीनतम है। मानवजातिके प्राथमिक समाजकी नाड़ी परखनेके लिये ऋग्वेदसे बढ़कर कोई वैद्य नहीं है। मनुष्यका क्रमिक-विकास-रहस्य जाननेके लिये ऋग्वेद कुञ्जी है। संसारकी सर्व-प्रथम विजेता जाति (आर्यजाति; जिसे यूरोपियन भी अपना पूर्वज कहते हैं) को तो सारी युद्धविद्या, निखिल धर्म-कर्म, आचार-विचार और सभ्यता-संस्कृतिका ऋग्वेद प्रामाणिक कोष ही माना जाता है। बल्कि संसारका सच्चा आदिम इतिहास जाननेके लिये ऋग्वेद दीप-स्तम्भ है।

ये ही सब कारण हैं, जिनसे प्रेरित होकर प्रचण्ड विद्याव्यसनी यूरोपियनोंने ऋग्वेदके लिये, उसका तत्त्व जाननेके लिये, समय, श्रम, शक्ति और द्रव्यका अपार और सार्थक व्यय किया है। राथ और ब्लूमफिल्ड जैसे कितने ही विद्वानोंने तो वेद-परिशीलनमें अपना जीवन ही खपा दिया था! यूरोपियनोंके सिवा संसारके अन्य देशों और भारतके भी कितने ही विद्वान्, उक्त कारणोंसे ही, ऋग्वेदके सामने सिर नवाते हैं। परन्तु हिन्दुओंके लिये इन कारणोंके सिवा एक और भी कारण है, जिसके लिये हिन्दू वेदोंको प्राणके समान मानते हैं। वेद हमारे धर्म-ग्रन्थ भी हैं। हमारे दर्शन, धर्मशास्त्र,पुराण आदि इन वेदोंकी व्याख्याएँ हैं—"वेदा मूलम्"—मूल धर्म-ग्रन्थ वेद ही हैं। इस नाते भी जो श्रद्धा ईसाइयों और मुसलमानोंकी बाइबिल और कुरानपर है, वेदोंपर वह प्रत्येक हिन्दूकी है। परन्तु वेदोंकी बराबरी अन्य ग्रन्थोंसे नहीं की जा सकती; क्योंकि वेद मूल धर्म-ग्रन्थ होनेके सिवा विश्वकी सर्व-श्रेष्ठ आर्यजातिका वास्तविक इतिहास भी हैं। यही कारण है कि, मीमांसा, सांख्य आदि जैसे अनीश्वरवादी शास्त्र भी, अपनी अच्छेद्य श्रद्धाके कारण, वेदोंको अपौरुषेय और नित्यतक मानते हैं। धर्म-शास्त्र-ग्रन्थोंमें तो वेदज्ञानशून्य हिन्दूका सामाजिक बहिष्कारतक लिखा हुआ है। प्रत्येक द्विजके लिये वेदाध्ययन अनिवार्य माना गया है।

शोक है कि, ऐसे अमूल्य ग्रन्थके ज्ञानसे हम वञ्चित हो रहे हैं। यही कारण है कि, हम हर तरहसे परावलम्बी, दरिद्र और दुःखी बन गये हैं। ध्यान रहे, वेदके अध्ययन और प्रचारकी ओरसे हमारी यह उदासीनता हमें रसातल भेज देगी।

परन्तु इस उदासीनताके सिवा वेद-प्रचारमें एक दूसरी जबर्दस्त बाधा भी है। वह है टीका-ग्रन्थोंकी महार्घता। सम्पूर्ण ऋग्वेदपर केवल सायणाचार्यका भाष्य मिलता है और उसका मूल्य १९०) रु०से कम कहीं भी नहीं है। भारतको राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें भी उसका आजतक अनुवाद नहीं हुआ है—यह और दुःखको बात है। इसी मर्मान्तक अभावकी पूर्त्तिके लिये बनैलीराज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुरकी सहायतासे "वैदिकपुस्तकमाला" की स्थापना की गयी, जिसमें सर्व-प्रथम ऋग्वेदके सम्पूर्ण सायण-भाष्यका संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद निकालना निश्चय किया गया। इसी निश्चयके अनुसार, कई महीने हुए, ऋग्वेदके आठ अष्टकोंमेंसे प्रथम अष्टक प्रकाशित किया गया था। प्रसन्नताको बात है कि, प्रथम अष्टकको देश और विदेशके विद्वानोंने खूब पसन्द किया। ब्रिटिश म्युजियम (लण्डन) के डा० बर्नेट, डरे (इंगलैण्ड) के डा० ग्रियर्सन, ओरियेण्टल स्कूल (लण्डन) के प्रो० रैप्सन आदि तथा चीनके "वर्ल्ड फिडरेशन" ने प्रथम अष्टककी बड़ी प्रशंसा की और "बाम्बे क्रानिकल", "हिन्दू," "न्यू इण्डिया" जैसे अंग्रेजीके विख्यात पत्रों तथा "प्रताप", "आज", "माधुरी" जैसी प्रतिष्ठित हिन्दी-पत्रपत्रिकाओंने बढ़ियासे बढ़िया समालोचनाएँ छापीं।

आज द्वितीय अष्टक भी आपके सामने है। यह भी प्रथम अष्टकको ही तरह, कई रंगीन चित्रों, टिप्पनियों, कई ज्ञातव्य विषयों और हिन्दी-अनुवादसे सुसज्जित किया गया है। इसका भी मूल्य २) रु० ही रखा गया है। यदि यही ग्रन्थ विलायतमें छपता, तो कम-से-कम १०)रु० मूल्य रखा जाता। प्रो० मैक्डानलके द्वारा प्रकाशित, इससे भी छोटी, शौनककी सर्वानुक्रमणीका मूल्य १८) रु० है। जो हो, जहाँ सायण-भाष्य १९०) में मिलता है, वहाँ उसका, सम्पूर्ण आठो अष्टकोंका संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद हमने सिर्फ १६) रु०में देना निश्चित किया है। यदि इतना समय और शक्तिका व्यय न होता, तो कदाचित् इससे कम मूल्यमें भी हम इस पुस्तकको देते। इसपर भी "वैदिकपुस्तकमाला" और हमारे द्वारा सम्पादित "गंगा" मासिक पत्रिकाके ग्राहकोंसे डाक खर्च नहीं लिया जाता। इस पुस्तक-मालाका उद्देश्य व्यापार करना नहीं। अनुवाद-कार्यके लिये १०००) रु०से अधिककी तो हमें पुस्तकें ही मँगानी पड़ी हैं।

जिस "वेदरहस्य"के लिखे जानेकी सूचना प्रथम अष्टकमें दी गयी थी, वह बहुत कुछ लिखा जा चुका है। सम्पूर्ण होनेपर उसके प्रकाशनमें हाथ लगेगा। हमने जो "गंगा" का "वेदाङ्क" निकाला है, उसमें "वेदरहस्य" की अनेक बातें भी आयी हैं।

तृतीय अष्टक छप रहा है। छपाई-सफाईमें प्रथम और द्वितीय अष्टकोंसे वह अधिक सुन्दर होगा।

कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर
वटसावित्री, १९८९ विक्रमीय

—रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा

द्वितीय अष्टककी जानने योग्य बातें

प्रथम अष्टकमें यह शीर्षक नहीं था; परन्तु उसमें अत्यधिक टिप्पनियाँ देकर स्थल-स्थलपर ऐसी बातें लिखी गयी थीं, जिनका संग्रह भूमिकाके पास छापा गया था। इस अष्टकमें टिप्पनियाँ कम देकर जानने योग्य बातोंका, पाठकोंके सुभीतेके लिये, यहीं संग्रह कर दिया गया है। इस अष्टकमें प्रथम मण्डलके शेष सूक्तोंके अतिरिक्त सम्पूर्ण द्वितीय मण्डल तथा तृतीय मण्डलके छ सूक्तोंका भी समावेश है; इसलिये प्रत्येक जानने योग्य विषयके आगे मण्डल, सूक्त और मन्त्रकी संख्याएँ दी गयी हैं। प्रथम मण्डलके १२१ सूक्तोंमें प्रथम अष्टक समाप्त हुआ है। इसलिये १ (मण्डल)के १२१ सूक्तके पहलेकी संख्याओंका जहाँ उल्लेख है, वहाँ प्रथम अष्टक देखना चाहिये।

१।१२२।१—रुद्रके लिये असुर शब्द आया है। सब मिलकर देव, राजा, ऋत्विक् और स्वर्गलोकके लिये द्वितीय अष्टकमें दस बार और प्रथम अष्टकमें सात बार असुर शब्दका प्रयोग हुआ है। प्रथम अष्टक (१।५४।३) देखिये।

१।१२२।५—घोषाके कोढ़की बात। १।११७।७ भी देखिये।

१।१२२।१२—इष्टाश्व राजाका उल्लेख है। के० एम० बनर्जीके मतसे यहाँ इष्टाश्व, विष्टास्प, गुष्टास्प वा कुष्टास्प जेन्द-धर्मके प्रचारक थे।

१।१२३।४—अहनाका विवरण है। १।३०।२२ भी देखिये।

१।१२३।८—सूर्यकी दैनिक गतिका विवरण।

१।१२६।७—गन्धारदेशकी स्त्रीका उल्लेख।

१।१२८।६—सूर्यका सुवर्ण-धन धारण करना। १।२२।५ भी देखिये।

१।१३०।७—दिवोदासके लिये इन्द्रका ९९ नगरोंका नष्ट करना।

१।१३०।८—इसमें सायणाचार्यने दस हजार अनुचरोंवाले कृष्ण नामके असुरका उल्लेख किया है।

१।१३१।३—पुरुषके साथ स्त्रीका यज्ञमें सम्मिलित होना। इसमें स्वर्गकी भी बात है।

१।१३२।२—स्वर्ग-निवास।

१।१३३।५—पिशाच और राक्षस।

१।१२९—१३३ तकके सूक्तोंमें यूरोपियन वेदाभ्यासी आर्योंके साथ कोलों (आदि द्रविड़ों) और द्रविड़ोंके युद्धका आभास पाते हैं।

१।१३८।४—सूर्यका वाहन छाग।

१।१३९।११—तेंतीस देवता।

१।१५४।१—वामनावतार।

१।१५५।६—चौरानबे कालावयव ये हैं—संवत्सर, दो अयन, पाँच ऋतु (हेमन्त और शिशिर एकमें), बारह मास, चौबीस पक्ष, तीस अहोरात्र, आठ पहर और बारह राशियाँ। म्योरके मतसे "चतुर्भिः नवतिं"का अर्थ है नब्बेका चौगुना अर्थात् वर्षके ३६० दिन।

१।१५८।३—तुग्र राजाके पुत्र भुज्युको समुद्र-यात्राका उल्लेख। १।११६।३ भी देखिये।

१।१६१।१—सुधन्वा नामक अङ्गिरा मनुष्यके पुत्र ऋभुओंका देवता बन जाना। छठे मंत्रमें और भी स्पष्ट उल्लेख है। १।२०।२—४ और १।११०।३—५ में भी ऋभुओंकी विशेष बातें हैं।

१।१६२—पूरे सूक्तमें अश्वमेध-यज्ञका विस्तृत विवरण है। अश्वमांसका विषय दर्शनीय है।

१।१६३।२—यमराजका उल्लेख। १।३५।६ में भी यमका उल्लेख है।

१।१६४।२—सूर्यके सात घोड़े और किरणें। १।५०।८—९ भी देखिये।

१।१६४।६—परमात्माका वर्णन।

१।१६४।११—बारह राशियों और ३६० दिनों तथा ३६० रात्रियोंका उल्लेख।

१।१६४।१२—बारह मास। इसमें दक्षिणायन और उत्तरायणकी भी कुछ चर्चा है।

१।१६४।२०—परमात्माका उल्लेख।

१।१६४।३०—जीवात्माका अमरत्व।

१।१६४।४४—क्षौरकर्मकर्त्ताकी चर्चा।

१।१६४।४५—ब्राह्मणका उल्लेख।

१।१६४—यह समस्त सूक्त पढ़ने योग्य है। यह सूक्त अथर्ववेदमें भी है। इस सूक्तकेसे विचार दशम मण्डलमें ही अधिक हैं।

१।१९१।—१४ और १५ में मयूर और नकुलका उल्लेख।

२।२।१०—चार वर्णोंका उल्लेख। १।७।९ में भी चारो वर्णोंका उल्लेख है।

२।३।६—स्त्रियोंका कपड़े बुनना। दो स्त्रियाँ ताना-बाना भी करती थीं।

२।७।१—भारत शब्दका उल्लेख।

२।११।१७—दाढ़ीमें लगे सोमरसको झाड़ना।

२।१२।१२—सूर्यकी सात किरणों या रंगोंकी चर्चा।

२।१५।५—परुष्णी, इन्द्रधुनि अथवा इरावती नदीका उल्लेख।

२।१५।५—अन्धे और लँगड़े परावृज ऋषिका कई कन्याओंके साथ विवाह। १।११२।८ भी देखिये।

२।१७।७—आजीवन अविवाहिता कन्याका पितृसम्पत्तिकी अधिकारिणी बनना।

२।१९।५—एतश ऋषिकी चर्चा। १।६१।१५ भी देखिये।

२।२०।७—काले रंगकी द्रविड़जातिका उल्लेख।

२।२३।२—वृत्र असुरके लिये देव शब्दका प्रयोग। १।३२।१२ भी देखिये।

२।२३।३—१७—कोलों (आदि द्रविड़ों) और द्रविड़ोंके उपद्रव तथा शत्रुताका उल्लेख।

२।२७।१—छ सूर्योंका नाम—द्वादशका नहीं। १।११४।३ भी देखिये।

२।२७।१०—सौ वर्षकी परमायु।

२।२८।९—ऋण-ग्रस्तका परिताप।

२।२७—२९—दोनों सूक्त भगवद्भक्तोंके लिये पठनीय हैं।

२।२९।१—गुप्त-प्रसविनी स्त्रीका उल्लेख।

२।३०।८—असुर-पुरोहित शण्डामर्कका उल्लेख।

२।३२।४—कपड़े पर बेल-बूटे काढ़ना।

२।३४।३—सोनेके मुकुट या शिरस्त्राणका वर्णन।

२।३४।१३—क्षोणी (वीणा-विशेष) नामके बाजेका उल्लेख।

२।३५।६—इन्द्रके उच्चैःश्रवा नामक घोड़ेका उल्लेख।

२।३८।४—कपड़े बुननेवाली स्त्रियाँ।

२।३९।३—चक्रवाकका उल्लेख।

२।३९।४—कवचका उल्लेख। १।२५।१३ भी देखिये।

२।४१।५—सहस्र स्तम्भवाले भवनका उल्लेख।

२।४२—४३—सूक्तोंके देवता शकुनि या कपिञ्जल-रूपी इन्द्र हैं। पक्षियोंको अशुभ ध्वनि सुननेपर इन दोनों सूक्तोंका जप किया जाता है।

३।१।१०—स्वर्ग और पृथिवीके पति सूर्यदेव हैं; इसलिये द्यावापृथिवी सपत्नी कहे जाते हैं।

३।४।८—भारती और सारस्वत शब्दोंका उल्लेख।

३।६।९—तेंतीस देवोंका उल्लेख। १।३४।११ और १।४५।२ भी देखिये।



सायणाचार्यके मतानुसार द्वितीय अष्टकमें पौराणिक कथाएँ

द्वितीय अष्टकमें प्रथम मण्डलके १२२ से १९१ सूक्त, द्वितीय मण्डलके सब (४३) सूक्त और तृतीय मण्डलके ६ सूक्ततक हैं। हर एक कथाके आगे मण्डल, सूक्त और मंत्रकी संख्याएँ दी गयी हैं।

१ कुष्ठरोग-ग्रस्ता घोषा १।१२२।५
२ इष्टाश्व और इष्टरश्मि नामक राजाकी शत्रुतारक नेताओं (वरुणादि) से शत्रुता १।१२२।१३
३ मशर्शार राजाके और अयवस राजाके पुत्रोंका उपद्रव १।१२२।१५
४ कक्षीवान्का विवाह १।१२५।१
५ स्वनय राजा द्वारा कक्षीवान्को प्रदत्त दहेज १।१२६।३-५
६ लोमशाके साथ स्वनयका सम्भोग १।१२६।६-७
७ शम्बरके विनाशके लिये इन्द्रका दिवोदासके लिये साहाय्य १।१३०।७
८ अंशुमतीके तटपर इन्द्रने कृष्णासुरकी काली चमड़ी उधेड़ी १।१३०।८
९ ऊँटपर चढ़कर युद्ध करना १।१३८।२
१० ऋषियोंका दीर्घ जीवन १।१३९।९
११ गर्भिणी दीर्घतमाकी माताके साथ बृहस्पतिका सम्भोग १।१४७।३
१२ शतहव्यकी दुग्धशून्या गौका दुग्धवती होना १।१५३।३
१३ वामनावतार १।१५४।१
१४ अश्विनीकुमारोंका औषध-ज्ञान १।१५७।६
१५ आचार्यों द्वारा एक वृद्धकी बोटी-बोटी काटा जाना १।१५८।५ और १।१५९।२
१६ सुधन्वाके पुत्रोंद्वारा चमसका बनाया जाना १।१६१।१
१७ अश्वमांसका उपयोग १।१६२ पूरा सूक्त
१८ इन्द्र और मरुद्गणका मनोरञ्जक संलाप १।१६५ पूरा सूक्त
१९ मरुद्गणकी शृंगार-प्रियता १।१६६।१०
२० पृश्नि द्वारा महासंग्रामके लिये मरुद्गणका प्रसूत होना १।१६८।९
२१ इन्द्र द्वारा अत्यन्त दृढ़ सात पुरियोंका तोड़ा जाना १।१७४।२
२२ दुर्योणि राजाके लिये इन्द्र द्वारा कुयवका बध १।१७४।७
२३ अगस्त्य और लोपामुद्राका कामपूर्ण सम्भाषण १।१७९ पूरा सूक्त
२४ डूबते हुए तुग्रपुत्रके लिये अश्विनीकुमारोंने समुद्रमें नौका दौड़ायी थी १।१८२।५-६
२५ विषाक्त सरिसृपगण १।१९१ पूरा सूक्त
२६ इन्द्रने त्रितके बन्धुत्वमें त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका बध किया २।११।१९
२७ इन्द्रका दस सौ घोड़ोंपर प्रभुत्व। दभीति ऋषिका दस्युओं द्वारा त्राण पाना २।१३।९
२८ निन्यानबे बाहुवाला उरण २।१४।४
२९ शुष्णका स्कन्ध-हीन होकर मरना २।१४।५
३० वर्चीके सौ हजार पुत्र २।१४।६
३१ इन्द्रने सिन्धुको उत्तरवाही किया २।१५।६
३२ अन्धे और लँगड़े परावृजके विवाहके लिये कन्याएँ आयीं; पर परावृजको इस प्रकारका देखकर भाग गयीं; पीछे परावृज भी दौड़े— इसी क्षण इन्द्रकी कृपासे वे सुन्दर अङ्गवाले हो गये २।१५।७
३३ इन्द्रने चुमुरि और धुनि असुरोंको दीर्घ-निद्रित करके विनष्ट किया २।१५।९
३४ इन्द्र द्वारा पर्वतोंका परास्त होना २।१७।५
३५ अनेकानेक घोड़ोंवाले इन्द्र २।१८।४-६
३६ अंगिरा लोगोंको गो-प्राप्ति २।२०।५
३७ गौओंका अन्वेषण करते समय अंगिरा लोगोंके विकट मार्ग २।२४।६-७
३८ रुद्रदेवका दवा तैयार करना २।३३।७
३९ रुद्र द्वारा पृश्नीके उदरसे मरुतोंका जन्म २।३४।२
४० रुद्र दुवारा पृथ्वीके अधोभागका दोहन २।३४।१०
४१ समुद्रसे उच्चैःश्रवाका जन्म २।३५।६
४२ स्त्री दुवारा वस्त्रका बुना जाना २।३८।४
४३ पक्षियों दुवारा शकुन २।४२–४३
४४ जन्मके साथ ही अग्निने भुवनोंको प्रकाशित किया ३।२।२-७



देव-विवरण

इला (भू-देवी)	१।१२८।१ १।१४२।९ १।१८६।१ १।१८८।८ २।१।११ ३।१।२३ ३।४।८
आप्री देवता	१।१४२ सूक्त
त्रित और त्रैतन	१।१५८।४-५ । प्रथम अष्टक (१।५२।५) भी देखिये ।
रोदसी (विद्युद्देवता)	१।१६७।६
इन्द्रके साथ मरुद्गण	१।७१।४
अहिर्बुध्न [रुद्र] वा अहि	१।१८६।५ । रुद्रके सम्बन्धमें १।४३ सूक्त देखिये । २।३१।६
ऋभुक्षा	१।१८६।१०
इन्द्र और त्वष्टाकी शत्रुता	२।११।१९। तैत्तिरीय संहिता (२।५।१) और शतपथ ब्राह्मण (१।६।३) में भी यह कथा है ।
राका, सिनीवाली, गुंगु	२।३२।६-८
मरुतोंका वाहन पृषती वा बिन्दु-चिह्नित मृग	२।३४।३ । प्रथम अष्टक (१।३७।२) भी देखिये ।
गरुत्मान् (गरुड़)	१।१६४।४६
असुर	१।१२२।१
३३ देवता	१।१३९ और ३।६।९



वैदिकपुस्तकमालाकी नियमावली

(१) इस मालामें हिन्दी-अनुवाद-सहित चारों वेद और विशेषतः वैदिक ग्रन्थ ही गूँथे जायँगे ।

(२) ॥) भेजकर मालाके स्थायी ग्राहक बननेवालों और "गंगा" के ग्राहकोंको किसी भी पुस्तक पर डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा ।

(३) स्थायी ग्राहकोंको मालामें प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना होगा ।

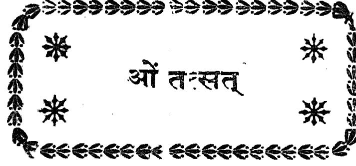
(४) मालामें प्रकाशित पुस्तकें, सूचना देकर, वी० पी० से, भेजी जायँगी ।

मैनेजर, वैदिक-पुस्तकमाला, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर

ऋग्वेद-संहिता







ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी टीका और टिप्पणियोंसे संयुक्त)



२ अष्टक । १ मण्डल । १ अध्याय । १८ अनुवाक ।



१२२ सूक्त । विश्वेदेव देवता । यहाँसे १२५ सूक्ततक कक्षीवान् ऋषि और त्रिष्टुप् छन्द है ।

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१॥

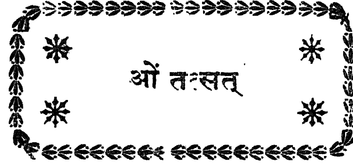
---

१ क्रोध-विरहित ऋत्विको, तुम लोग कर्म फलदाता रुद्रदेवको पालनशील और यज्ञ-साधन अन्न अर्पण करो । मैं भी उन द्युलोकके असुर (देव) और उनके अनुचर एवं स्वर्ग और पृथिवीके मध्यस्थवासी मरुद्गणकी स्तुति करता हूँ । जैसे तूणीर द्वारा शत्रुओंको निरस्त किया जाता है, वैसे ही रुद्र भी वीर मरुतोंके द्वारा शत्रुओंको निरस्त करते हैं ।

ऋग्वेद-संहिता

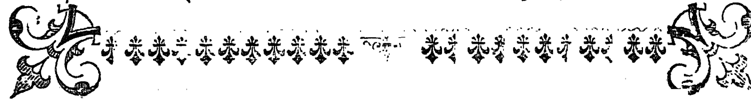






ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी टीका और टिप्पणियोंसे संयुत)



२ अष्टक । १ मण्डल । १ अध्याय । १८ अनुवाक ।



१२२ सूक्त । विश्वेदेव देवता । यहाँसे १२५ सूक्ततक कक्षीवान् ऋषि और त्रिष्टुप् छन्द है ।

प्रवः पान्तं रघुमन्यवोन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१॥

---

१ क्रोध-विरहित ऋत्विको, तुम लोग कर्म फलदाता रुद्रदेवको पालनशील और यज्ञ-साधन अन्न अर्पण करो। मैं भी उन द्युलोकके असुर (देव) और उनके अनुचर एवं स्वर्ग और पृथिवीके मध्यस्थवासी मरुद्गणकी स्तुति करता हूँ। जैसे तूणीर द्वारा शत्रुओंको निरस्त किया जाता है, वैसे ही रुद्र भी वीर मरुतोंके द्वारा शत्रुओंको निरस्त करते हैं।

पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥२॥
ममत्तु नः परिज्मावसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥३॥
उतत्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥४॥
आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावनआँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥५॥
श्रुतं मे मित्रावरुणाहवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥६॥
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥७॥

---

२ जैसे स्वामीके प्रथम आह्वानपर पत्नी शीघ्र आती है, वैसे ही अहोरात्र-देवता नानाविध स्तुतियों द्वारा स्तुत होकर हमारे प्रथम आह्वानपर शीघ्र आवें। अरि-मर्दन सूर्यकी तरह उषादेवी हिरण्यवर्ण किरणोंसे युक्त होकर और विशाल रूप धारण कर सूर्यकी शोभासे शोभन हों।

३ वसनयोग्य और सर्वतोगामी सूर्य हमारी प्रसन्नता बढ़ावें। वारि-वर्षक वायु हमारा आनन्द बढ़ावें। इन्द्र और पर्वत (मेघ) हमारी बुद्धिको बढ़ावें। विश्वेदेवगण, हमें यथेष्ट अन्न देनेकी चेष्टा करो।

४ मैं उशिजका पुत्र हूँ। ऋत्विको, मेरे लिये अन्न-भक्षक और स्तुति-भाजन अश्विनीकुमारोंको, संसारको प्रकाशित करनेवाली उषाके समय, बुलाओ। जलके नप्ता अग्निकी स्तुति करो तथा मेरे सदृश स्तोता मनुष्योंके मातृ-स्थानीय अहोरात्र-देवताओंकी भी स्तुति करो।

५ देवगण, मैं उशिजका पुत्र कक्षीवान् हूँ। मैं तुम्हारे सम्बन्धमें कहने योग्य स्तोत्रका, आह्वानके लिये, पाठ करता हूँ। अश्विद्वय, जैसे अपने शरीरगत श्वेतवर्ण त्वचा-रोगके विनाशके लिये घोषा नामक ब्रह्मवादिनी महिलाने तुम्हारी स्तुति की, वैसे ही मैं भी स्तुति करता हूँ। देवो, फलदाता पूषा देवकी भी स्तुति करता हूँ और अग्नि-सम्बन्धी धनकी भी स्तुति करता हूँ।

६ मित्र और वरुण, मेरा आह्वान सुनो। यज्ञ-गृहमें समस्त आह्वान सुनो। प्रसिद्ध धनशाली जलाभिमानी देव खेतोंमें जल बरसाकर हमारा आह्वान सुनें।

७ मित्र और वरुण, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। जिस स्तोत्रसे अन्नका नियमन होता है, वही स्तोत्र पढ़ा जाता है; इसलिये कक्षीवान् (ऋषि) को अपनी प्रसिद्ध गौ दो। प्रसिद्ध और सुन्दर रथसे युक्त कक्षीवान्के प्रति प्रसन्न होकर तुम लोग आओ तथा आकर मुझे पोषण करो।

अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥८॥
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये निधत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥९॥
स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥१०॥
अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥११॥
एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥१२॥
मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत् पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥१३॥

८ मैं महान् धनवाले देवोंके धनकी स्तुति करता हूँ । हम मनुष्य हैं; इसलिये शोभन पुत्र-पौत्र आदिसे संयुक्त होकर हम इस धनका संभोग करें । जो देव अङ्गिरा गोत्रमें उत्पन्न कक्षीवान्‌के लिये अन्न प्रदान करते हैं, अश्व और रथ देते हैं, उनकी स्तुति करता हूँ ।

९ हे मित्र और वरुण, जो तुम्हारा द्रोही है, जो किसी तरह भी तुम्हारा द्रोह करता है, जो तुम्हारे लिये सोम रसका अभिषव नहीं करता, वह अपने हृदयमें यक्ष्मा रोग धारण करता है । जो व्यक्ति यज्ञ करता और स्तुति-वचनोंसे सोमरस तैयार करता है—

१० वह व्यक्ति श्रान्त अश्व प्राप्त करता, मनुष्योंको परास्त करता और समान मनुष्योंमें अन्नके लिये प्रसिद्ध होता है । अतिथियोंको धन देता है और सारे युद्धोंमें हिंसक मनुष्योंकी ओर निःशङ्क होकर सदा जाता है ।

११ सर्वाधिपति, आनन्द-वर्द्धक, तुम मरण-रहित स्तोत्रकारी मनुष्यके (अर्थात् मेरे) आह्वानको सुनो और आओ । तुम आकाशव्यापी हो । तुम अन्य-रक्षक-रहित रथसे संयुक्त यजमानकी समृद्धिके साधन हव्यकी प्रशंसा करना पसन्द करते हो ।

१२ "जिस यजमानके दसो इन्द्रियोंके बलकारक अन्नकी प्राप्तिके लिये हम आये हैं, उसे यह मनुष्य-विजेता बल दिया"—देवोंने ऐसा कहा । इन देवोंका प्रकाशमान अन्न और धन अत्यन्त शोभा पाता है । उत्तम यज्ञमें देवता लोग अन्न दान करें ।

१३ चूँकि इन्द्रियाँ दस प्रकारकी हैं; इसलिये ऋत्विक् लोग, दस अवयवोंसे युक्त अन्न धारण करके गमन करते हैं । हम विश्वदेवोंकी स्तुति करते हैं । इष्टाश्व और इष्टरश्मि नामके राजा शत्रुतारक नेताओं (वरुणादि) का क्या कर सकते हैं ।

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥१४॥
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥१५॥



१२३ सूक्त। उषा देवता ।

पृथूरथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१॥
पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२॥
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥३॥
गृहं गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधिनामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥४॥

१४ विश्वदेव हमें हिरण्यकर्ण, मणिग्रीव और रूपवान् पुत्र प्रदान करें। श्रेष्ठ विश्वदेवगण सद्योनिर्गत स्तुति और हव्यकी आकांक्षा करें।

१५ मशर्शार राजाके चार पुत्र और विजयी आयवस राजाके तीन पुत्र मुझे बाधा देते हैं। मित्रावरुण, तुम्हारा अति विस्तृत और शोभन दीप्तिशाली रथ सूर्यको तरह कान्ति प्राप्त किये हुए है।

---

१ दक्षिणा या उषाका रथ अश्व-संयुक्त हुआ। अमर देव लोग उस रथपर सवार हुए। कृष्णवर्ण अन्धकारसे उत्थित, पूजनीय, विचित्र-गतिमती और मनुष्यके निवासस्थानोंका रोग दूर करनेवाली उषा उदित हुई।

२ सब जीवोंके पहले ही उषा जागी। उषा अन्नदायिनी, महती और संसारको सुख देनेवाली हैं। वह युवती हैं; बार बार आविर्भूत होती हैं। ऊर्द्ध्वस्थिता उषा देवी हमारे बुलानेपर पहले ही आती हैं।

३ सुजाता उषा देवी, तुम मनुष्योंकी पालिका हो। तुम अभी मनुष्योंको जो प्रकाशांश प्रदान करती हो, उसीको प्रदान कर दानशील सविता या प्रेरक देव, सूर्यके आगमनके लिये, हमें पाप-रहित कहकर स्वीकार करें।

४ अहना या उषा प्रतिदिन नम्र भावसे हर एक घरको ओर जाती हैं। भोगेच्छाशालिनी और द्युतिमती प्रतिदिन आगमन करती और हव्यरूप धनका श्रेष्ठ भाग ग्रहण करती हैं। *

* अहना ही कदाचित् ग्रीकोंकी Athena या Minerva हैं।

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥५॥
उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूढ़ाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६॥
अपान्यदेत्यभ्यन्यदेति विषुरूपे अहनी सञ्चरेते।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥७॥
सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परियन्ति सद्यः ॥८॥
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥९॥
कन्येव तन्वा शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१०॥

---

५ सूनृता उषा, तुम भग या सूर्यकी भगिनी और वरुण या प्रकाशदेवकी सहजाता हो। तुम श्रेष्ठ हो। सब देवता तुम्हारी स्तुति करें। इसके अनन्तर जो दुःखका उत्पादक है, वह भागे। तुम्हारी सहायता पाकर उसे रथ द्वारा हम जीतेंगे।

६ सच्ची बातें कही जायँ। प्रज्ञा प्रबुद्ध हो। अत्यन्त प्रकाशमान आगें प्रज्वलित हों। इससे विचित्र प्रभावती उषा अन्धकारावृत स्पृहणीय धन आविष्कार करती हैं।

७ विलक्षण रूपवान् दोनों अहोरात्र-देवता व्यवधान-रहित होकर चलते हैं। एक जाते हैं, एक आते हैं। पर्यायगामी दोनों देवताओंमें एक पदार्थोंको छिपाते हैं, दूसरे (उषा) अतीव दीप्तिमान् रथ द्वारा उसे प्रकाशित करते हैं।

८ उषा देवी जैसे आज हैं, वैसे ही कल भी वे विशुद्ध हैं। प्रतिदिन वे वरुण या सूर्यके अवस्थिति-स्थानसे तीस योजन आगे अवस्थित होती हैं। एक एक उषा उदय-कालमें ही गमन-आगमनरूप कार्य सम्पादित करती हैं। *

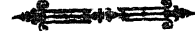
९ उषा दिनके प्रथमांशके आगमनका काल जानती हैं। वह स्वयं ही दीप्त और श्वेतवर्ण हैं। कृष्णवर्णसे उनकी उत्पत्ति हुई है। वह सूर्य-लोकमें मिश्रित होती हैं; किन्तु उसको हानि नहीं पहुँचातीं; बल्कि उसकी शोभा बढ़ाती हैं।

१० देवि, कन्याकी तरह अपने अंगोंको विकसित करके तुम दानपरायण और दीप्तिमान् सूर्यके निकट जाओ। अनन्तर युवतीको तरह अतीव प्रकाश-सम्पन्न होकर, कुछ हँसती हुई, सूर्यके सामने अपना हृदय-देश उघारो।

---

* सायणाचार्यके मतानुसार सूर्य प्रतिदिन ५०५९ योजन भ्रमण करते हैं। इस तरह सूर्य, प्रत्येक दण्डमें, ७१ योजन घूमते हैं। चूँकि उषा सूर्यसे ३० योजन पूर्व-गामिनी हैं; इसलिये सूर्योदयसे प्रायः आधा दण्ड (½) पहले उषाका उदय मानना चाहिये। कुछ यूरोपियनोंके मतसे सूर्य प्रतिदिन २०००० मील चलते हैं।

सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशेकम्।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥१३॥



१२४ सूक्त। उषा देवता।

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन् सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद्द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै ॥१॥
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥२॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३॥

११ जैसे माताके देहको धो देनेपर कन्याका रूप उज्ज्वल हो जाता है, वैसे ही तुम भी होकर दर्शनके लिये अप शरीरको प्रकाशित करो। तुम कल्याणशीला हो। अन्धकारको दूर कर दो। अन्य उषाएँ तुम्हारे कार्यको नहीं व्याप्त करेंगी

१२ अश्व और गौसे सम्पन्न, सर्वकालीन और सूर्यरश्मियोंके साथ तमोनिवारणके लिये चेष्टा-विशिष्ट उष देवियाँ कल्याणकर नाम धारण करके जाती और आती हैं।

१३ उषा, ऋत या सूर्यकी रश्मिका अनुधावन करती हुई हमें कल्याणकारिणी प्रज्ञा प्रदान करो। हम तुम्हें बुला हैं। अन्धकार दूर करो। हम हविर्लक्षण धनसे युक्त हैं। हमारे पास धन हो।

---

१ अग्निके समिद्धमान होनेपर उषा, अन्धकारका निवारण करती हुई, सूर्योदयकी तरह प्रभूत ज्योति फैलाती हैं हमारे व्यवहारके लिये सविता द्विपद और चतुष्पदके संयुक्त धन देते हैं।

२ उषा देव-सम्बन्धी व्रतोंमें विघ्न नहीं करती, मनुष्योंकी आयुका ह्रास करती, अतीत और नित्य उषाओं समान हैं और आगामिनी उषाओंकी प्रथमा हैं। उषा द्युति फैलाती हैं।

३ उषा स्वर्ग-पुत्री हैं। वह प्रकाश द्वारा आच्छादित होकर धीरे-धीरे पूर्व दिशाकी ओर दिखाई देती हैं। उषा मानो सूर्यका अभिप्राय जानकर ही उनके मार्गपर अच्छी तरह भ्रमण करती हैं। वह कभी भी दिशाओंको नहीं मारती।

उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ॥४॥
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्रकेतुम् ।
व्युप्रथते वितरं वरीय ओभापृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥५॥
एवेदेषा पुरुतमा दृशेकं नाजामिं न परिवृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥६॥
अभ्रातेव पुंस एतिप्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषाहस्रेव निरिणीते अप्सः ॥७॥
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यंक्ते समनगा इव व्राः ॥८॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥९॥
प्रबोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१०॥

---

४ जैसे सूर्य अपना वक्षःस्थल प्रकटित करते हैं और नोधा ऋषिने जैसे अपनी प्रिय वस्तुका आविष्कार किया है, उसी प्रकार उषाने भी अपनेको आविष्कृत किया है। जैसे गृहिणी जागकर सबको जगाती है, वैसे ही उषा भी मनुष्योंको जगाती है। अभिसारिकाओंके बीच उषा सर्वापेक्षा अधिक आती हैं।

५ विस्तृत आकाशके पूर्व भागमें उत्पन्न होकर उषा दिशाओंको चेतनता-युक्त करती हैं। उषा पितृ-स्थानीय स्वर्ग और पृथिवीके अन्तरालमें रहकर अपने तेजसे देवोंको परिपूर्ण करके विस्तृत और विशिष्ट रूपसे प्रख्यात हुई हैं।

६ इस तरह अत्यन्त विस्तृत होकर उषा सरलतासे दर्शन-निमित्त मनुष्यादि और देवादिमेंसे किसीको भी नहीं छोड़तीं। प्रकाशशालिनी उषा विमल शरीरमें क्रमशः स्पष्ट होकर छोटे या बड़े किसीसे भी नहीं हटतीं।

७ भ्रातृ-हीना स्त्री जैसे पित्रादिके अभिमुख गमन करती है, गतभर्तृका जैसे धन-प्राप्तिके लिये घर आती है, उषा भी वैसा ही करती हैं। जैसे पत्नी पतिकी अभिलाषिणी होकर सुन्दर वस्त्र पहनती हुई हास्य द्वारा अपनी दन्त-राजि प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा भी करती हैं।

८ भगिनी-रूपिणी रात्रिने बड़ी बहन (उषाको) अपर रात्रि-रूप उत्पत्ति-स्थान प्रदान किया है एवं उषाको जना कर स्वयं चली जाती है। सूर्य-किरणोंसे अन्धकार हटाकर उषा विद्युद्राशिकी तरह जगत्‌को प्रकाशित करती हैं।

९ इन सब भगिनीभावापन्न प्राचीन उषाओंमें पहली दूसरीके पीछे प्रतिदिन गमन करती हैं। प्राचीन उषाओंकी तरह नयी उषा सुदिन पैदा करती हुई हमें प्रभूत-धन-विशिष्ट करके प्रकाशित करें।

१० धनवती उषा, हविर्दाताओंको जगाओ। पणिलोग न जागकर निद्रामें पड़ें। धनशालिनि, धनी यजमानोंको समृद्धि दो। सूनृते, तुम सारे प्राणियोंको क्षीण करती हुई यजमानको समृद्धि दो।

सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशेकम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥१३॥



१२४ सूक्त । उषा देवता ।

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन् सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद्द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै ॥१॥
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥२॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३॥

---

११ जैसे माताके देहको धो देनेपर कन्याका रूप उज्ज्वल हो जाता है, वैसे ही तुम भी होकर दर्शनके लिये अपने शरीरको प्रकाशित करो। तुम कल्याणशीला हो। अन्धकारको दूर कर दो। अन्य उषाएँ तुम्हारे कार्यको नहीं व्याप्त करेंगी।

१२ अश्व और गौसे सम्पन्न, सर्वकालीन और सूर्यरश्मियोंके साथ तमोनिवारणके लिये चेष्टा-विशिष्ट उषा-देवियाँ कल्याणकर नाम धारण करके जाती और आती हैं।

१३ उषा, ऋत या सूर्यकी रश्मिका अनुधावन करती हुई हमें कल्याणकारिणी प्रज्ञा प्रदान करो। हम तुम्हें बुलाते हैं। अन्धकार दूर करो। हम हविर्लक्षण धनसे युक्त हैं। हमारे पास धन हो।

---

१ अग्निके समिद्धमान होनेपर उषा, अन्धकारका निवारण करती हुई, सूर्योदयकी तरह प्रभूत ज्योति फैलाती हैं। हमारे व्यवहारके लिये सविता द्विपद और चतुष्पदके संयुक्त धन देते हैं।

२ उषा देव-सम्बन्धी व्रतोंमें विघ्न नहीं करती, मनुष्योंकी आयुका ह्रास करती, अतीत और नित्य उषाओंके समान हैं और आगामिनी उषाओंकी प्रथमा हैं। उषा द्युति फैलाती हैं।

३ उषा स्वर्ग-पुत्री हैं। वह प्रकाश द्वारा आच्छादित होकर धीरे-धीरे पूर्व दिशाकी ओर दिखाई देती हैं। उषा मानो सूर्यका अभिप्राय जानकर ही उनके मार्गपर अच्छी तरह भ्रमण करती हैं। वह कभी भी दिशाओंको नहीं मारती।

उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ॥४॥
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्रकेतुम् ।
व्युप्रथते वितरं वरीय ओभापृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥५॥
एवेदेषा पुरुतमा दृशेकं नाजामिं न परिवृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥६॥
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः ॥७॥
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यंक्ते समनगा इव व्राः ॥८॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसृणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥९॥
प्रबोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१०॥

४ जैसे सूर्य अपना वक्षःस्थल प्रकटित करते हैं और नोधा ऋषिने जैसे अपनी प्रिय वस्तुका आविष्कार किया है, उसी प्रकार उषाने भी अपनेको आविष्कृत किया है। जैसे गृहिणी जागकर सबको जगाती है, वैसे ही उषा भी मनुष्योंको जगाती हैं। अभिसारिकाओंके बीच उषा सर्वापेक्षा अधिक आती हैं।

५ विस्तृत आकाशके पूर्व भागमें उत्पन्न होकर उषा दिशाओंको चेतनता-युक्त करती हैं। उषा पितृ-स्थानीय स्वर्ग और पृथिवीके अन्तरालमें रहकर अपने तेजसे देवोंको परिपूर्ण करके विस्तृत और विशिष्ट रूपसे प्रख्यात हुई हैं।

६ इस तरह अत्यन्त विस्तृत होकर उषा सरलतासे दर्शन-निमित्त मनुष्यादि और देवादिमेंसे किसीको भी नहीं छोड़तीं। प्रकाशशालिनी उषा विमल शरीरमें क्रमशः स्पष्ट होकर छोटे या बड़े किसीसे भी नहीं हटतीं।

७ भ्रातृ-हीना स्त्री जैसे पित्रादिके अभिमुख गमन करती है, गतभर्तृका जैसे धन-प्राप्तिके लिये घर आती है, उषा भी वैसा ही करती हैं। जैसे पत्नी पतिकी अभिलाषिणी होकर सुन्दर वस्त्र पहनती हुई हास्य द्वारा अपनी दन्त-राजि प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा भी करती हैं।

८ भगिनी-रूपिणी रात्रिने बड़ी बहन (उषाको) अपर रात्रि-रूप उत्पत्ति-स्थान प्रदान किया है एवं उषाको जगा कर स्वयं चली जाती है। सूर्य-किरणोंसे अन्धकार हटाकर उषा विद्युद्राशिकी तरह जगत्‌को प्रकाशित करती हैं।

९ इन सब भगिनीभावापन्न प्राचीन उषाओंमें पहली दूसरीके पीछे प्रतिदिन गमन करती हैं। प्राचीन उषाओंकी तरह नयी उषा सुदिन पैदा करती हुई हमें प्रभूत-धन-विशिष्ट करके प्रकाशित करें।

१० धनवती उषा, हविर्दाताओंको जगाओ। पणिलोग न जागकर निद्रामें पड़ें। धनशालिनि, धनी यजमानोंको समृद्धि दो। सूनृते, तुम सारे प्राणियोंको क्षीण करती हुई यजमानको समृद्धि दो।

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युंक्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्रकेतुर्गृहं गृहमुपतिष्ठाते अग्निः ॥११॥
उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥

१२५ सूक्त । दान देवता ।※

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या निधत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयूरायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

---

११ युवती उषा पूर्व दिशासे आती और सात घोड़ोंको रथमें जोतती हैं। वह दिनकी सूचना करके रूप-रहित अन्तरिक्षमें अन्धकारका निवारण करती हैं। घर-घरमें आग जलती है।

१२ उषा, तुम्हारा उदय होनेपर चिड़ियाँ अपने घोंसलेसे ऊपर उड़ती हैं। अन्न-प्राप्तिमें आसक्त होकर मनुष्य ऊपर मुँह करके जाते हैं। देवि, देव पूजन-गृहमें अवस्थित हव्य-दाता मनुष्यके लिये प्रभूत धन ले आओ।

१३ स्तुति-पात्र उषाएँ, मेरे मन्त्र द्वारा तुम स्तुत हो। मेरी समृद्धिकी इच्छा करके हमें वर्द्धित करो। देवियो, तुम्हारी रक्षा प्राप्त करके हम सहस्रसंख्यक और शतसंख्यक धन प्राप्त करें।

---

१ स्वनय राजाने, प्रातःकाल आकर, प्रातःकाल ही रत्न ला रखा। कक्षीवान्ने उठकर, रत्न ग्रहणकर, स्थापित किया। सुवीर दीर्घतमाने उस रत्नराजि द्वारा प्रजा और आयुकी वृद्धि करके धन लाभ किया।

※ "गुरुकुलमें अध्ययन समाप्त कर रात्रिमें घर आते हुए कक्षीवान् ऋषि मार्गमें सो गये। स्वनय नामके राजा, अनुचरोंके साथ, घूमते हुए आये और कक्षीवान्का सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये। राजा उन्हें घर लाये और अपनी दस कन्याओंके साथ उन्हें ब्याह दिया। राजाने ऋषिको १०० निष्क (तौल) सुवर्ण, १८० घोड़े, १०० वृषभ, १०६० गायें और ११ रथ, दहेजमें, प्रदान किये। इन सबको कक्षीवान्ने अपने पिता दीर्घतमाको अर्पण कर दिया।" —सायणाचार्यने यहाँ यह कथा लिखी है। स्वनय राजाका दान ही इस सूक्तका देवता है अर्थात् उस दानके सम्बन्धमें ही यह सूक्त रचा गया है।

सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्द्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥
उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उपयन्ति विश्वतः ॥ ४ ॥
नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥ ५ ॥
दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः ॥ ६ ॥
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन् मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभिसंयन्तु शोकाः ॥ ७ ॥

---

२ उन राजाके पास बहुत गो धन हो। उनके पास बहुत सुवर्ण और बहुत घोड़े हों। उन्हें इन्द्र बहुत अन्न दें। जैसे लोग रस्सीसे पशु, पक्षी आदिको बाँध देते हैं, उसी तरह उन्होंने भी प्रातःकाल पैदल ही आकर आगमनकारीको धन द्वारा आबद्ध किया।

३ मैं यज्ञके त्राता शोभनकर्माको देखनेकी इच्छा करके, धनसज्जित रथपर चढ़कर, आज उपस्थित हुआ हूँ। दीप्तिशाली मादक सोमके अभिषुत रसका पान करो। प्रभूत-वीर-पुत्रादि-विशिष्टको प्रिय और सत्य वाक्य द्वारा समृद्ध करो।

४ दुग्धवती और कल्याण-दायिनी गायें, यजमान और यज्ञ-संकल्पकारीके पास जाकर, दुग्ध प्रदान करती हैं। समृद्धिके कारणभूत घृतधारा, तर्पणकारी और हितकारी पुरुषोंके पास, चारों ओरसे उपस्थित होती है।

५ जो व्यक्ति देवोंको प्रसन्न करता है, वह स्वर्गके पृष्ठदेशमें अवस्थान करता तथा देवोंके बीच गमन करता है। प्रवहमान जल, उसके पास, तेजोविशिष्ट सार प्रदान करता है। पृथिवी शस्य आदिसे सफल होकर उसे सन्तोष प्रदान करती है।

६ जो व्यक्ति दक्षिणा प्रदान करता है, उसीकी ये सारी मणि-मुक्तादि वस्तुएँ होती हैं। दक्षिणा दाताके लिये स्वर्गलोकमें सूर्य रहते हैं। दक्षिणा-दाता ही जरा-मरण-शून्य स्थान प्राप्त करते हैं। दक्षिणा देनेवाले दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं।

७ जो देवोंको प्रसन्न रखता है, उसे दुःख और पाप नहीं मिलते; शोभन-व्रतशाली स्तोता भी जराग्रस्त नहीं होते। देवोंके प्रीति-प्रदाता और स्तुतिकर्त्तासे भिन्न पुरुषोंको पाप आश्रित करे। जो देवोंको प्रसन्न नहीं करते, उन्हें शोक प्राप्त हो।

---

१२६ सूक्त। १ से ५ मंत्र राजा भावयव्यके लिये हैं और इनके ऋषि कक्षीवान् हैं। ६ठा मंत्र राजाकी स्त्रीके लिये है और इसके ऋषि उक्त राजा हैं। ७ वाँ मंत्र लोमशाके पतिके लिये है और इसके ऋषि लोमशा हैं। १ से ५ तक त्रिष्टुप् और अन्तके दो अनुष्टुप्में हैं।

अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥
शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान् प्रयतान्त्सद्य आदम्।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमाततान ॥ २ ॥
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात् सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥ ३ ॥
चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ ४ ॥
पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन्युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥ ५ ॥
आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥

---

१ सिन्धुनिवासी भावयव्य-पुत्र स्वनयके लिये, अपने बुद्धि-बलसे, बहुसंख्यक स्तोत्र सम्पादन (प्रणयन) करता हूँ। हिंसा-विरहित राजाने कीर्त्ति-प्राप्तिकी इच्छासे मेरे लिये हजार सोम-यज्ञोंका अनुष्ठान किया है।

२ असुर-राजाके ग्रहणके लिये मुझसे याचना करनेपर मैं (कक्षीवान्) ने उनसे १०० निष्क (आभरण या स्वर्णमाप), १०० घोड़े और १०० बैल ले लिये। स्वर्ग-लोकमें राजा नित्य कीर्त्ति-विस्तार करेंगे।

३ स्वनय द्वारा भूरे रंगके अश्ववाले दस रथ मेरे पास आये, जिनपर वधुएँ आरूढ़ थीं। १०६० गायें भी पीछेसे आयीं। मैं (कक्षीवान्) ने ग्रहण करनेके पश्चात् ही सब अपने पिताको दे दिया।

४ हजार गायोंके सामने, दसो रथोंमें चालीस (१-१में ४-४) लोहितवर्ण अश्व पंक्ति-बद्ध होकर चलने लगे। कक्षीवान्के अनुचर उनके लिये घास आदि जुटाकर मदमत्त और स्वर्णाभरण-विशिष्ट एवं सतत गमनशील अश्वोंको मलने लगे।

५ बन्धुगण, पहलेके दानका स्मरण करके तुम्हारे लिये तीन और आठ—सब ग्यारह रथ मैंने ग्रहण किये हैं। बहुमूल्य गायोंको लिया है। प्रजाओंकी तरह परस्पर-अनुराग-सम्पन्न होकर संकटापन्न अङ्गिरा लोग कीर्त्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करें।

६ यह सम्भोग-योग्य रमणी (लोमशा) अच्छी तरह आलिङ्गित होकर, सूतवत्सा नकुलीकी तरह, चिर कालतक रमण करती है। बहुरेतोयुक्ता होकर रमणी मुझे (स्वनय राजाको) बहु बार भोग प्रदान करती है।

उपोप मे परामृश मामे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥



१९ अनुवाक । १२७ सूक्त । अग्नि देवता । यहाँसे १३९ सूक्तोंतकके ऋषि दिवोदासके पुत्र परुच्छेद हैं । छन्द अतिधृति ।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥
स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत् स्थिरम् ।
निःषहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

---

७ (स्वनय राजाके लिये वचन—) मेरे पास आकर मुझे अच्छी तरह स्पर्श करो । यह नहीं जानना कि, मेरे शरीरमें कम लोम हैं । मैं गान्धारी भेंड़ी या गर्भधारिणी रमणीकी तरह लोमपूर्ण और पूर्णावयवा हूँ ।

---

१ विद्वान् विप्र या ब्राह्मणकी तरह प्रज्ञावान्, बलके पुत्र-स्वरूप, सबके निवास-भूमि-रूप और अत्यन्त दानशील अग्निको मैं होता कहकर सम्मान-युक्त करता हूँ । यज्ञ-निर्वाहकारी अग्नि उत्कृष्ट-देव-पूजा-समर्थ होकर चारों ओर फैली हुई घृतकी दीप्तिका अनुसरण करके अपनी शिखा द्वारा इस घृतको स्वीकृत करते हैं ।

२ मेधावी शुभ्रदीप्ति अग्निदेव, हम यजमान हैं । हम मनुष्योंके उपकारके लिये मननशील और अत्यन्त प्रसन्नता-दायक मन्त्र द्वारा अङ्गिरा लोगोंमें महान् तुम्हें बुलाते हैं । सर्वतोगामी सूर्यकी तरह तुम यजमानोंके लिये देवोंको बुलाते हो । केशकी तरह विस्तृत ज्वाला-विशिष्ट और अभीष्टवर्षी हो । यजमान लोग अभिमत फल पानेके लिये तुम्हें प्रसन्न करें ।

३ अग्निदेव अतीव दीप्तिसे संयुक्त ज्वाला द्वारा भली भाँति दीप्यमान हैं । वह विद्रोहियोंके छेदनार्थ परशुकी तरह विनाशमें अमूल्य हैं । उनके साथ मिलनेपर दृढ़ और स्थिर वस्तु भी जलकी तरह शीर्ण हो जाती है । शत्रुओंका विनाश करनेवाला धनुर्धर जैसे नहीं भागता, वैसे ही अग्नि भी शत्रुओंको परास्त करनेसे बाज नहीं आते ।

दृह्लाचिद्र्मा अनुदुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ठ्यवसेऽग्नये दाष्ठ्यवसे।
प्रयः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा।
स्थिरा चिदन्ना निरिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥ ४ ॥
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात्।
आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीलु शर्म न सूनवे।
भक्तमभक्तमवोव्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥
स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः।
आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥
द्विता यदीं कीरतासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः
अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम्।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

---

४ जैसे विद्वान् पुरुषको द्रव्य दान किया जाता है, उसी प्रकार अग्निको सारवान् हव्य, मन्त्रानुक्रमसे, प्रदान किया जाता है। तेजोविशिष्ट यज्ञादि द्वारा अग्नि हमारी रक्षाके लिये स्वर्गादि प्रदान करते हैं। यजमान भी रक्षार्थ, अग्निको हव्य देते हैं। यजमानके द्वारा प्रदत्त हव्यमें प्रवेश करके अग्नि, अपनी ज्योतिःशिखा द्वारा, उसे वनकी तरह जला डालते हैं। अग्निदेव अपनी ज्योति द्वारा अन्नादिका परिपाक करते और तेजके द्वारा दृढ़ द्रव्यको विनष्ट करते हैं।

५ रातमें अग्निदेव दिनसे भी अधिक दर्शनीय हो जाते हैं। दिनमें अग्नि पूरी आयु या तेजस्वितासे शून्य रहते हैं। हम अग्निके उद्देश्यसे वेदीके पास हव्य दान करते हैं। जैसे पिताके पास पुत्र दृढ़ और सुखकर गृह प्राप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि भी अन्न ग्रहण करता है। भक्त और अभक्तको समझकर भी अग्नि दोनोंकी रक्षा करते हैं। हव्य-भक्षण करके अग्नि अजर हो जाते हैं।

६ मरुतके बलकी तरह स्तवनीय अग्नि यथेष्ट ध्वनिसे युक्त हैं। कर्मकारिणी उर्वरा अर्थात् श्रेष्ठ भूमिपर अग्निका यज्ञ करना उचित है। सेना-विजय करनेके लिये अग्निका याग करना उचित है। अग्नि हव्य भक्षण करते हैं। वह सर्वत्र दानशील और यज्ञकी पताका हैं। वह सर्वत्र पूजनीय हैं। यजमानोंके लिये हर्षदाता और प्रसन्न अग्निके मार्गको, निर्भय राजपथकी तरह, सुख-लाभके लिये, सब लोग सेवा करते हैं।

७ श्रौत और स्मार्त—उभय प्रकारके अग्निका गुण कहनेवाले, दीप्तिशाली, नमस्कार-प्रवीण और हव्यदाता भृगुगोत्रज महर्षि लोग, हवि देनेके लिये, अरणि द्वारा अग्निका मन्थन करके स्तुति करते हैं। प्रदीप्त अग्नि सारे धनोंके अधीश्वर हैं। अग्नि यज्ञवाले हैं और भली भाँति प्रिय हव्य भोगनेवाले हैं। अग्नि मेधावी हैं और वह अन्य देवताको भी भाग देते हैं।

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आवयो हव्या देवेष्वावयः ॥ ८ ॥
त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अधस्माते परिचरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९ ॥
प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान्विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥ १० ॥
स नो नेदिष्ठं ददृशान आभराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ ११ ॥



८ सारे यजमानोंके रक्षक, सारे मनुष्योंके एकसे गृह-पालक, सर्व-सम्मत-फल-विशिष्ट, स्तुति-वाहक और मनुष्य आदिके लिये अतिथिकी तरह पूज्य अग्निको, भोगके लिये, हम बुलाते हैं। जैसे पुत्र लोग पिताके पास जाते हैं, वैसे ही हव्यके लिये ये सारे देवता अग्निके पास आते हैं। ऋत्विक् लोग भी देवोंके यज्ञ-कालमें, अग्निको हव्य प्रदान करते हैं।

९ जैसे देवोंके यजनके लिये धन पैदा होता है, उसी प्रकार हे अग्नि, तुम भी देवोंके यज्ञार्थ उत्पन्न होते हो। अपने बलसे तुम शत्रुओंके अभिभवकर्त्ता और अतीव तेजस्वी हो। तुम्हारा आनन्द अत्यन्त बल-दाता है। तुम्हारा यज्ञ अत्यन्त फल-प्रद है। हे अजर और हे भक्तोंके जरा-निवारक अग्नि, इसीलिये यजमान लोग, दूतोंकी तरह, तुम्हारी पूजा करते हैं।

१० हे स्तोता लोग, चूँकि हविवाले यजमान इन अग्निके लिये सारी वेदी-भूमिपर बार-बार गमन करते हैं; इस लिये तुम्हारा स्तोत्र इस पूज्य, शत्रु-पराभवकारी, प्रातःकालमें जागरणशील और पशु-दाता अग्निकी प्रीति उत्पन्न करनेमें समर्थ हो। धनवान्के पास जैसे बन्दी स्तव करता है, वैसे ही होता लोग पहले, देवोंमें श्रेष्ठ, अग्निकी स्तुति करते हैं।

११ हे अग्नि, यद्यपि तुम्हें पासमें ही हम प्रदीप्त देखते हैं; तथापि तुम देवोंके साथ आहार करते हो। तुम अपने प्रसन्न अन्तःकरणसे अपने अधीनके लिये अनुग्रह करके पूजनीय धन लाते हो। बलवान् अग्निदेव, हमारे लिये यथेष्ट अन्न प्रदान करो, जिससे हम पृथिवीको देख और भोग सकें। मघवन् अग्नि, स्तोताओंके लिये वीर्यशाली धन प्रदान करो। यथेष्ट बल-सम्पन्न होकर क्रूर व्यक्ति जैसे शत्रु-विनाश करता है, वैसे ही हमारे शत्रुका विनाश करो।

१२८ सूक्त । अत्यष्टि छन्द ।

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनुव्रतमग्निः स्वमनुव्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता निषददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥ १ ॥
तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥
एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥
स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

---

१ देवोंको बुलानेवाले और अतीव यज्ञशील यह अग्नि फल-प्रार्थियोंके और अपने व्रत या हविर्भोजनके उद्देश्यसे मनुष्योंसे ही उत्पन्न होते हैं। सारे विषयोंके कर्त्ता अग्निदेव बन्धुकामी और अन्नाभिलाषी यजमानके धन-स्थानीय हैं। पृथिवीमें सार-भूत वेदीपर, यज्ञ-स्थानमें, अहिंसित, होम-निष्पादक तथा ऋत्विग्वेष्टित अग्नि बैठे हैं।

२ हम लोग यज्ञानुष्ठान और घृत आदिसे युक्त तथा नम्रतासे सम्पन्न स्तोत्र द्वारा बहु हव्यवाले और देव-यज्ञमें साधक अग्निकी, परितोषके साथ, सेवा करते हैं। वह अग्नि हमारे हव्यरूप अन्नको लेनेमें समर्थ होकर नाशको नहीं प्राप्त होंगे। मनुके लिये मातरिश्वाने अग्निको, दूरसे लाकर, प्रदीप्त किया था। इसी प्रकार, दूरसे, हमारी यज्ञशालामें अग्नि आवें। *

३ सदा गाये या स्तुति किये जानेवाले, हविः-सम्पन्न, अभीष्ट-फलदाता और सामर्थ्यशाली अग्नि शब्द करके जाते हुए तुरत पार्थिव वेदीको चारो ओर शब्द करके आते हैं। अग्निदेव स्तोत्र ग्रहण करके अग्रस्थानीय शिखा द्वारा चारो ओर प्रकाशित हो रहे हैं। उच्च-स्थानीय अग्नि उत्तम यज्ञमें तुरत आते हैं।

४ शोभनकर्मा और पुरोहित अग्नि हर एक यजमानके घरमें नाश-रहित यज्ञको जान सकते हैं। अग्नि कर्म द्वारा यज्ञ जान सकते हैं। वह कर्मोंके विविध फलदाता बनकर यजमानके लिये अन्नकी इच्छा करते हैं। अग्नि हव्य आदिको ग्रहण करते हैं; क्योंकि वह घृत-भक्षी अतिथिके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। अग्निके प्रवृद्ध होनेपर हव्यदाता विविध फल प्राप्त करते हैं।

---

* १ मण्डल, ६० सूक्त, १ मंत्रसे विदित होता है कि, भृगुके लिये भी मातरिश्वा ही अग्निको लाये थे।

क्त्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या ।
सहि ष्मादानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥ ५ ॥
विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥ ६ ॥
स मानुषे वृजने शन्तमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः ।
स हव्या मानुषाणामिळाकृतानि पत्यते ।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥
अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे ।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भिरण्वं वसूयवः ॥ ८ ॥



---

५ जैसे मरुत् लोग भक्षणीय द्रव्यको एकमें मिलाते इन अग्निको जैसे भक्ष्य द्रव्य दिया जाता है, वैसे ही यजमान लोग कर्म द्वारा अग्निकी प्रबल शिखामें, तृप्तिके लिये, भक्षणीय द्रव्य मिलाते हैं। अपने धनके अनुसार यजमान हव्य दान करता है। जो पाप हमारा हरण करता है, उस हरणकारी दुःख और हिंसक पापसे अग्नि हमें बचावें।

६ विश्वात्मक, महान् और विरामरहित अग्नि सूर्यकी तरह दक्षिण हाथमें धन रखते हैं। उनका वह हव्य यज्ञकारीके लिये श्लथ होता है, खुला रहता है। केवल हवि पानेकी आशासे अग्नि उसे नहीं छोड़ते। अग्निदेव, सारे हविःकामी देवोंके लिये तुम हवि वहन करते हो। सब सुकृत पुरुषोंके लिये अग्नि वरणीय धन प्रदान करते और स्वर्गका द्वार उन्मुक्त करते हैं।

७ मनुष्यके पाप-निमित्तक यज्ञमें अग्नि विशेष हितकारी हैं। विजयी राजाकी तरह यज्ञ-स्थलमें अग्नि मनुष्यके पालक और प्रिय हैं। यजमानोंकी यज्ञवेदीमें रखे हव्यके लिये अग्नि आते हैं। हिंसक यज्ञ-बाधकके भयसे और उन महान् पापदेवकी हिंसासे अग्निदेव हमारा उद्धार करें।

८ धनधारक, सर्व-प्रिय, सुबुद्धिदाता और विरामरहित अग्निकी, ऋत्विक् लोग, स्तुति करते और उन्हें भली-भाँति प्राप्त किये हुए हैं। हव्यवाही, प्राणियोंके प्राण-रूप, सर्वप्रज्ञा-समन्वित, देवोंके बुलानेवाले, यजनीय और मेधावी अग्निको ऋत्विकोंने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है। अर्थाभिलाषी होकर ऋत्विक् लोग, अग्निको हव्य-रूप अन्न देनेकी इच्छा करते हुए, आश्रय-प्राप्तिके लिये, रमणीय और शब्दकारी अग्निको प्राप्त हुए हैं।

१२९ सूक्त । इन्द्र देवता ।

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करोवशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥
सः श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासुचिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः ।
यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥
दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कञ्चिद्यावीरररु शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासुचित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥
नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥

---

१ हर्ष-सम्पन्न यज्ञगामी इन्द्र, यज्ञ-लाभके लिये रथपर चढ़कर जिस प्रभूत ज्ञान-युक्त यजमानके पास जाते हो और जिसे धन और विद्यामें उन्नत करते हो, उसे तुरत सफल-मनोरथ और हव्यशाली कर दो । हर्ष-युक्त इन्द्र, हम पुरोहितोंमें भी पुरोहित हैं; हमारे स्तव करनेपर तुम शीघ्रतासे हमारी स्तुति और हव्य ग्रहण करते हो ।

२ इन्द्र, तुम युद्धके नेता हो । तुम मरुतोंके साथ प्रधान-प्रधान युद्धोंमें स्पर्द्धाके साथ शत्रु-संहारमें समर्थ हो । वीरोंके साथ तुम स्वयं संग्राम-सुख अनुभव करते हो । ऋत्विकोंकी स्तुति करनेपर तुम उन्हें अन्न दो । हमारी स्तुति सुनो । प्रार्थनापरायण ऋत्विक् लोग गमनशील अन्नवान् इन्द्रकी, अश्वकी तरह, सेवा करते हैं ।

३ इन्द्र, तुम शत्रुओंका नाश करनेवाले हो । वृष्टिपूर्ण त्वचारूप मेघका भेदन करके जल गिराते हो और मर्त्यकी तरह गमनशील मेघको पकड़कर और उसे वृष्टि-रहित करके छोड़ देते हो । इन्द्र, तुम्हारे इस कार्यको हम तुमसे और रुद्र, यशोयुक्त रुद्र, प्रजाओंके सुखदायी मित्र तथा वरुणसे कहेंगे ।

४ ऋत्विको, अपने यज्ञमें हम इन्द्रको चाहते हैं । इन्द्र हमारे सखा, सर्व-यज्ञगामी, शत्रुओंके अभिभवकारी और हमारे सहायक हैं । वह यज्ञ-विघ्नकारियोंको पराभूत करते और मल्लोंमें सम्मिलित हैं । इन्द्र, तुम हमारे पालनके लिये हमारी रक्षा करो । लड़ाईके क्षेत्रमें तुम्हारे विरुद्ध शत्रु नहीं खड़ा हो सकता । तुम्हीं सारे शत्रुओंका निवारण करते हो ।

५ उग्र इन्द्र, अपने भक्त यजमानके विरुद्धाचारीको, उग्र-रक्षणकार्य-रूप तेजोमय उपायोंसे, अवनत कर देते हो । जैसे तुम पहले हमारे पूर्वजोंको मार्ग दिखाकर ले गये थे, वैसे हो हमें भी ले जाओ । तुम्हें संसार निष्पाप जानता है । इन्द्र, तुम जगत्पालक होकर मनुष्यके सारे पापोंको दूर करते हो । हमारे सामने यज्ञ-फल लाकर अनिष्टोंका विनाश करो ।

प्रतद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्मरेजति रक्षोहा मन्म रेजति।
स्वयं सो अस्मदानिदो वधैरजेत दुर्मतिम्।
अवस्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत्॥ ६॥
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम्।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि।
आसत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः॥ ७॥
प्रप्रावो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम्।
स्वयं सारिषयध्यै यान उपेषे अत्रैः। हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति॥ ८॥
त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा।
सचस्व नः पराक आसचस्वास्तमीक आ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः॥९॥
त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कञ्चिदमर्त्य।
अन्यमस्मद्रिरिषेः कञ्चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः॥ १०॥

६ भवनशील चन्द्रके लिये हम इस स्तोत्रको पढ़ते हैं। चन्द्र, आग्रहके साथ, हमारे कर्मके उद्देशसे, राक्षस-विनाशी और बुलाने योग्य इन्द्रकी तरह आते हैं। वह स्वयं हमारे निन्दक दुर्बुद्धिके वधका उपाय उद्भूत करके उसे दूर कर देंगे। चोर, क्षुद्र जलकी तरह, अतीव निकृष्टतासे, अधःपतित हो।

७ इन्द्र, हम स्तोत्र द्वारा तुम्हारा गुण-कीर्त्तन करके तुम्हें भजते हैं। धनवान् इन्द्र, हम सामर्थ्यवान्, रमणीय, सदा वर्त्तमान और पुत्र-भृत्यादि-विशिष्ट धनका उपभोग करें। इन्द्र, तुम्हारी महिमा अज्ञेय है। हम उत्तम स्तोत्र और अन्न प्राप्त करें। हम यज्ञ-निष्पादक इन्द्रको यज्ञाभिलाष फल देनेवाले और यशोवर्द्धक आह्वान द्वारा प्राप्त हों।

८ ऋत्विको, तुम्हारे और हमारे लिये इन्द्र यशस्कर आश्रयदान द्वारा दुर्बुद्धि लोगोंके विनाशक संग्राममें प्रवृद्ध हों और उन्हें विदीर्ण करें। हमारे भक्षक शत्रुओंने हमारे विरुद्ध, हमारे नाशके लिये, जो वेगवती सेना भेजी थी, वह सेना स्वयं हत हो गयी है; हमारे पास पहुँची भी नहीं; शत्रुओंके पास भी नहीं लौटी।

९ इन्द्र, राक्षस-शून्य और पाप-रहित मार्गसे प्रचुर धन लेकर हमारे पास आओ। इन्द्र, तुम दूर देश और निकटसे आकर हमारे साथ मिलो। तुम दूर और निकट प्रदेशसे, यज्ञ-निर्वाहके लिये, हमरी रक्षा करो। यज्ञ-निर्वाह करके सदा हमें पालित करो।

१० इन्द्र, जिस धनसे हमारी आपदाका उद्धार हो सकता है, उसी धनसे हमारा उद्धार करो। तुम उग्र-रूप हो। जैसी मित्रकी महिमा है, हमारी रक्षाके लिये तुम्हारी भी वैसी ही महिमा हो। हे बलवत्तम, हमारे रक्षक, त्राता और अमर इन्द्र, किसी भी रथपर चढ़कर आओ। शत्रुनाशक इन्द्र, हमें छोड़कर सबको बाधा दो। शत्रु-भक्षक, अतीव कुकर्मी शत्रुको बाधा दो।

पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता सदमिद् दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम्।
हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो॥ ११॥

१३० सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् और अत्यष्टि छन्द।

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये॥ १॥
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम्॥२॥
अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः॥३॥

११ शोभन स्तुतिसे युक्त इन्द्र, दुःखसे हमें बचाओ; क्योंकि तुम सदा दुष्टोंको नीचा दिखाते हो। हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर यज्ञ-विघ्नकारियोंको दमन करो। तुम पाप-राक्षसके हन्ता और हमारे समान बुद्धिमानोंके रक्षक हो। जग-न्निवास इन्द्र, इसीलिये परमेश्वरने तुम्हें उत्पन्न किया है। निवास-प्रद इन्द्र, राक्षसोंके विनाशके लिये तुम्हारी उत्पत्ति हुई है।

१ जैसे यज्ञशालामें ऋत्विकोंके पति यजमान हैं और जैसे नक्षत्रोंके पति चन्द्र अस्ताचल जाते हैं, वैसे ही तुम भी, पुरोवर्त्ती सोमकी तरह, स्वर्गसे हमारे पास आओ। जैसे पुत्र लोग अन्न-भक्षणके लिये पिताको बुलाते हैं, वैसे ही तुम्हें हम सोमाभिषवमें बुलाते हैं। ऋत्विकोंके साथ हव्य ग्रहणके लिये महान् इन्द्रको हम बुलाते हैं।

२ जैसे शोभनगति वृषभ पिपासित होकर कूप-जलका पान करता है, हे रमणीयगति इन्द्र, वैसे ही तृप्ति, पराक्रम, महत्त्व और आनन्दोत्पत्तिके लिये प्रस्तर द्वारा अभिषुत और जल-सिक्त अथवा दशापवित्र द्वारा शोधित सोमरस पान करो। जैसे हरि नामक अश्व सूर्यको लाते हैं, वैसे ही तुम्हारे अश्वगण प्रतिदिन तुम्हें ले आवें।

३ जैसे चिड़ियाँ दुर्गम स्थान में अपने बच्चोंकी रक्षा करके उन्हें प्राप्त करती वा बच्चोंवाली होती हैं, वैसे ही इन्द्रने भी अत्यन्त गोपनीय स्थानमें स्थापित और अनन्त तथा महान् प्रस्तर राशिमें परिवेष्टित सोमरसको स्वर्गसे प्राप्त किया। अङ्गिरा लोगोंमें अग्रगण्य वज्रधारी इन्द्रने जैसे पहले, सोमपानकी इच्छासे, गोशालाको प्राप्त किया था, वैसे ही सोमरसको भी पाया। इन्द्रने चारो ओर मेघावृत और अन्नके कारण जलके द्वारोंको खोलते हुए पृथिवीमें चारो ओर अन्न विस्तार किया।

दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय संश्यदहिहत्याय संश्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो निवृश्चसि परश्वेव निवृश्चसि ॥४॥
त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥५॥
इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वा मतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वाधनानि सातये ॥६॥
भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

४ इन्द्र दोनों हाथोंमें अच्छी तरह वज्र धारण करके, शत्रुके प्रति फेंकनेके लिये, वज्रके तीक्ष्ण होनेपर भी, जैसे मंत्रों द्वारा जलको तीक्ष्ण किया जाता है, वैसे ही उसे और भी तीक्ष्ण करते हैं; वृत्र-विनाशके लिये और भी तीक्ष्ण करते हैं। इन्द्र, जैसे वृक्ष काटनेवाले वृक्षको काटते हैं, वैसे ही तुम अपनी शक्ति, तेज और शरीर-बलसे वर्द्धित होकर हमारे शत्रुओंका छेदन करते हो, मानों फरसेसे काटते हो ।

५ इन्द्र, तुमने, समुद्रकी ओर गमन करनेके लिये, रथकी तरह, नदियोंको अनायास बनाया है। जैसे योद्धा रथको बनाते हैं, वैसे ही तुमने भी बनाया है। जैसे मनुके लिये गायें सर्वार्थदाता हैं और जैसे समर्थ मनुष्यके लिये गायें सर्वसुख-प्रद हैं, वैसे ही हमारी अभिमुखिनी नदियाँ एक ही प्रयोजनसे जल संग्रह करती हैं।

६ जैसे कर्म-कुशल और धीर मनुष्य रथ बनाता है, वैसे ही धनाभिलाषी मनुष्योंने तुम्हारी यह स्तुति की है। उन्होंने अपने कल्याणके लिये तुम्हें प्रसन्न किया है। जैसे संसारमें दिग्विजयीकी प्रशंसा की जाती है, वैसे ही हे मेधावी और दुर्द्धर्ष इन्द्र, उन्होंने तुम्हारी प्रशंसा की है। जैसे संग्राममें अश्वकी प्रशंसा होती है, वैसे ही बल, धनरक्षण और सारे मंगलोंकी प्राप्तिके लिये तुम्हारी प्रशंसा होती है।

७ संग्राम-कालमें नृत्यकर्त्ता इन्द्र, तुमने हविःप्रद और अभीष्ट-दाता दिवोदास राजाके लिये नब्बे नगरोंको नष्ट किया था। नृत्यशील इन्द्र, तुमने वज्र द्वारा नष्ट किया था। उग्र इन्द्र, तुमने अतिथिसेवक दिवोदास राजाके लिये पर्वतसे शम्बर असुरको नीचे पटका था और दिवोदास राजाके लिये अपनी शक्तिसे अगाध धन दिया था—और क्या, सारा धन दिया था।

इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८॥
सूरश्चक्रं प्रवृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आमुषायति
उशनायत् परावतो जगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥९॥
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्रस्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥

१३१ सूक्त । इन्द्र देवता । अत्यष्टि छन्द ।

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१॥

---

८ युद्धमें इन्द्र आर्य यजमानकी रक्षा करते हैं। असंख्य बार रक्षा करनेवाले इन्द्र सारे युद्धोंमें उसकी रक्षा करते हैं। सुखकारी युद्धमें उसकी रक्षा करते हैं। इन्द्र मनुष्यके लिये व्रत-शून्य व्यक्तियोंका शासन करते हैं। इन्द्रने कृष्ण नामके असुरकी काली त्वचा उखाड़कर उसका (अंशुमती नदीके तटपर) वध किया। इन्द्रने उसे जला डाला। इन्द्रने सारे हिंसकोंको जला डाला। उन्होंने समस्त निष्ठुर व्यक्तियोंको भस्मसात् किया।

९ सूर्यका रथ-चक्र ग्रहण करनेपर इन्द्रके शरीरमें बलकी वृद्धि हुई। इन्द्रने उस चक्रको फेंका और अरुणवर्ण-रूप धारण करके, शत्रुओंके पास जाते हुए, उनके वाक्यका हरण कर लिया। तमोनिवारक इन्द्रने उनके वाक्यका हरण कर लिया। वीरकर्मा इन्द्र, उशनाकी रक्षाके लिये, जैसे तुम दूरस्थित स्वर्गसे आये थे, वैसे ही हमारे समस्त सुख-साधन धनके साथ हमारे पास शीघ्र आओ। दूसरोंके पास भी तुम इसी प्रकार आते हो। हमारे पास प्रतिदिन आते हो।

१० जल-वर्षक और नगर-विदारक इन्द्र, हमारे नये मन्त्रसे संतुष्ट होकर विविध प्रकारकी रक्षा और सुख देते हुए हमें प्रतिपालित करो। हम दिवोदासके गोत्रज हैं; तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम दिनमें, सूर्यकी तरह, प्रवृद्ध हो जाओ।

---

१ विशाल द्युलोक स्वयं इन्द्रके पास नत हुआ है। विस्तृता पृथिवी वरणीय या स्वीकरणीय स्तुति द्वारा इन्द्रके पास नत हुई है। अन्नके लिये यजमान लोग वरणीय हव्य द्वारा नत हुए हैं। सारे देवोंने एक मतसे इन्द्रको अग्रणी किया है। मनुष्योंके सारे यज्ञ और मनुष्योंके सारे दान आदि इन्द्रके सुखके निमित्त हों।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं नपर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥२॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥३॥
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥४॥
आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥५॥

---

२ इन्द्र, तुम्हारे पास अभिमत फलकी प्राप्तिकी आशामें प्रत्येक सवनमें यजमान लोग तुम्हें हव्य प्रदान करते हैं। तुम सबके लिये समान हो। स्वर्ग-प्राप्तिके लिये केवल तुम्हें ही हव्य दिया जाता है। जैसे नदी पार होनेके समय नौका खड़ी की जाती है, वैसे ही हम सेनाके आगे तुम्हें खड़ा करते हैं। यज्ञ द्वारा मनुष्य इन्द्रको ही चिन्ता करते हैं। मनुष्य स्तुति द्वारा इन्द्रकी चिन्ता करता है।

३ इन्द्र, तुम्हारे सेवक और निष्पाप यजमान स्त्री-पुरुष, तुम्हारी तृप्तिकी इच्छासे, बहुसंख्यक गोधनकी प्राप्तिके लिये, बहुत हव्य दान करते हुए तुम्हारे उद्देश्यसे यज्ञ-विस्तार करते हैं। वे गोधन चाहते हैं और स्वर्ग-गमनके लिये उत्सुक हैं। तुम उनको अभीष्ट प्रदान करो। इन्द्र, तुम अभीष्ट-वर्धक हो। तुमने अपने सहजन्मा और चिर-सहचर वज्रका आविष्कार किया है।

४ इन्द्र, मनुष्य तुम्हारी महिमा जानते हैं। तुमने जिन शत्रुओंकी संवत्सर पर्यन्त खाई या परिखा आदिसे दृढ़ीकृत नगरियोंको नष्ट किया था, उन्हें पराजित कर विनष्ट किया था—यह कथा मनुष्य जानते हैं। बलपति इन्द्र, तुमने यज्ञ-विघातक मनुष्यका शासन किया था। तुमने विशाल पृथ्वी और जलराशिको जीता था। तुमने आनन्दसे जल निकाल लिया था।

५ इन्द्र, सोमपान कर प्रसन्न होनेपर मनोरथ-दाता बनो। चूँकि तुम यजमानोंकी रक्षा किया करते हो; अपने बन्धुताकामी यजमानोंकी रक्षा किया करते हो; इसलिये वे, तुम्हारी वृद्धिके निमित्त, बार-बार हव्य प्रदान करते हैं। युद्ध-स्थलके भोगके लिये तुमने सिंहनाद किया था। यजमान लोग तुमसे नाना प्रकारकी भोग्य वस्तु पाते हैं; अन्नार्थी होकर तुम्हारे पास प्राप्त होते हैं।

उतो नो अस्या उषसो जुषेतह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूरमर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नपभूतु दुर्मतिर्विश्वापभूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥



१३२ सूक्त । इन्द्र देवता । अत्यष्टि छन्द ।

त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधिवोचानु सुन्वते ।
अस्मिन् यज्ञे विचयेमाभरेकृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥
स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णा शीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्राते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्राभद्रस्य रातयः ॥ २ ॥

---

६ इन्द्र, तुम हमारे प्रातःकालीन यज्ञको आश्रित करोगे क्या? इन्द्र, आह्वान-मंत्र द्वारा प्रदत्त, पूजाके लिये, हव्यको जानो। आह्वान मंत्र द्वारा आहूत होकर सुख-भोगके स्थानपर उपस्थित हो जाओ। वज्रयुक्त इन्द्र, निन्दकोंके विनाशके लिये अभीष्टवर्षी होकर जागो। इन्द्र, मैं मेधावी और नया मनुष्य हूँ; मैं स्तुतिवाला हूँ; मेरा मनोहर स्तोत्र सुनो।

७ अनेक गुण-विशिष्ट इन्द्र, हे शूर, तुमने हमारी स्तुतिसे वृद्धि पायी है और हमारे प्रति सन्तुष्ट हो। जो व्यक्ति हमारे प्रति शत्रुताका आचरण करता है और जो हमें दुःख पहुँचाना चाहता है, उसे वज्र द्वारा विनष्ट करो। हे सुननेके लिये उत्कण्ठित इन्द्र, सुनो। इन्द्र, मार्गमें चोर-जैसे व्यक्तिको जो दुर्बुद्धि मनुष्य पीड़ा पहुँचाते हैं, उस प्रकारके सारे दुर्मति मनुष्य हमारे पाससे दूर हो जायँ।

---

१ हे धन-संयुक्त इन्द्र, तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हम प्रबल वाहिनीसे सम्पन्न शत्रुओंको परास्त करेंगे। प्रहारके लिये प्रस्तुत शत्रुपर प्रहार करेंगे। इन्द्र, पूर्व-धन-संयुक्त यह यज्ञ निकटवर्त्ती है; इसलिये आज हविर्दाता यजमानके उत्साहके लिये कथा कहो। इन्द्र, तुम युद्ध-जयी हो। तुम्हारे उद्देश्यसे हम हव्य लाते हैं। तुम युद्ध-विजेता हो।

२ शत्रुवधके लिये इधर-उधर दौड़नेवाले वीर पुरुषोंके स्वर्ग-साधन तथा कपटादि-रहित मार्ग-स्वरूप संग्रामके आगे इन्द्र, प्रातःकालमें जागे हुए याज्ञिकोंके, शत्रुओंका नाश करते हैं। सर्वज्ञकी तरह इन्द्रकी अवनत-मस्तक होकर स्तुति करना सबका कर्त्तव्य है। इन्द्र, तुम्हारा दिया धन केवल हमारे ही लिये हो। तुम भद्र हो, तुम्हारा दिया धन स्थिर हो।

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन् यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम्।
वितद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः।
सघा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥
नु इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योवृणोरपव्रजमिन्द्र शिक्षन्नपव्रजम्।
एभ्यः समान्यादिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च।
सुन्वद्भ्योरन्धया कञ्चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥
सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्रयक्षन्त श्रवस्यवः
तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥
युवन्तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादपतंतमिद्धतं वज्रेण तं तमिद्धतम्।
दूरे चत्ताय च्छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत्
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥



३ इन्द्र, पूर्वकी तरह इस समय भी अतीव दीप्त और प्रसिद्ध हव्य-रूप अन्न तुम्हारा ही होगा। तुम यज्ञके निवास-स्थान-स्वरूप हो। जिस अन्न द्वारा ऋत्विक् लोग स्थान सुशोभित करते हैं, वह अन्न तुम्हारा ही होगा। तुम यज्ञकी कथा कहो। ऐसा होनेपर संसार आकाश और पृथिवीके बीच सूर्य-किरण द्वारा देख सकेगा। इन्द्र जलकी गवेषणामें तत्पर हैं। वह अपने बन्धु यजमानोंके लिये गौ खोजते हैं। वह उक्त क्रमसे सारी कथाएँ जानते हैं।

४ इन्द्र, पूर्व कालकी तरह तुम्हारा कर्म इस समय भी सबकी प्रशंसाके योग्य है। तुमने अङ्गिरा लोगोंके लिये मेघका उद्घाटन किया था। तुमने अपहृत गो-धनका उद्धार करके उन लोगोंको दिया था। इन्द्र, तुम उक्त ऋषियोंकी तरह आर्योंके लिये युद्ध करते और विजयी बनते हो। जो अभिषव करते हैं, उनके लिये यज्ञ-विघ्नकारियोंको अवनत करते हो। जो यज्ञ-विघ्नकारी रोष प्रकाशित करते हैं, उन्हें अवनत करो।

५ चूँकि शूर इन्द्र, कर्म द्वारा मनुष्योंके विषयमें यथार्थ विचार करते हैं; इसलिये अन्नाभिलाषी यजमानगण अभिमत धन प्राप्त करके शत्रुओंका विनाश करते हैं। वे अन्नाभिलाषी होकर विशेष रूपसे यज्ञ करते हैं। इन्द्रके उद्देश्यसे प्रदत्त अन्न पुत्रादि प्राप्तिका कारण है। अपनी शक्तिसे शत्रुके निवारणके लिये लोग इन्द्रकी पूजा करते हैं। यज्ञकारी लोग इन्द्रके पास वास-स्थान प्राप्त करते हैं, मानों याज्ञिक लोग देवोंके पास ही रहते हैं।

६ हे इन्द्र और पर्वत या मेघके अभिमानी देव, तुम दोनों अग्रगामी होकर, जो शत्रु हमारे विरोधमें सेना-संग्रह करते हैं, उन सबको विनष्ट करो। वज्र-प्रहार द्वारा उन सबको विनष्ट करो। वह वज्र अत्यन्त दूरगामी शत्रुका भी विनाश करनेकी इच्छा करता और अति गहन स्थानपर भी व्याप्त होता है। शूर इन्द्र, तुम हमारे सारे शत्रुओंको त्रिविध उपायों द्वारा विदीर्ण करते हो। शत्रु-विदारक वज्र विविध उपायोंसे विदीर्ण करता है।

१३३ सूक्त । इन्द्र देवता । छन्द त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, गायत्री, धृति और अत्यष्टि ।

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि संमहीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परितृह्ला अशेरन् ॥ १ ॥
अभिव्लग्याचिदद्रिवः शीर्षा यातु मतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥
अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥
यासां तिस्रः पञ्चाशतोभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत् सुते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥ ४ ॥
पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र संमृण । सर्वं रक्षो निवर्हय ॥ ५ ॥
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षानभीषाँ अद्रिवोघृणां न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिवधैरुग्रे भिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसतैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

१ मैं आकाश और पृथिवी, दोनोंको, यज्ञ द्वारा पवित्र करता हूँ । मैं इन्द्र-शून्या और विद्रोहिणी पृथिवीको अच्छी तरह दग्ध करता हूँ । जिस-किसी स्थानपर शत्रुगण एकत्र हुए, वहीं मारे गये । अच्छी तरह विनष्ट होकर वे श्मशानकी चारो ओर पड़ गये ।

२ शत्रु-भक्षक इन्द्र, हिंसावाली सेनाका सिर एकत्र करके तुम उसे विशाल पद द्वारा छेदन करो । तुम्हारा पद महाविस्तीर्ण है ।

३ मघवन् इन्द्र, इस हिंसावती सेनाका बल चूर्ण कर दो और इसे कुत्सित अथवा महान् श्मशानमें फेंक दो ।

४ इन्द्र, इस तरह तुमने त्रिगुणित पचास सेनाओंका नाश किया है । तुम्हारे इस कार्यको लोग बहुत पसन्द करते हैं । तुम्हारे लिये यह कार्य सामान्य है ।

५ इन्द्र, कुछ रक्तवर्ण, अति भयंकर और शब्दकारी पिशाच या अनार्यका विनाश करो और समस्त राक्षसों या अनार्योंको समाप्त करो ।

६ इन्द्र, तुम विशाल मेघको, निम्न मुख करके, विदीर्ण करो । हमारी बात सुनो ! मेघ-युक्त इन्द्र, जैसे धान्य न होनेसे डरके मारे पृथिवी शोक करती है, वैसे ही स्वर्ग भी शोक करता है । मेघ-संपन्न इन्द्र, पृथिवी और स्वर्गका भय दीप्त अग्निकी मूर्तिकी तरह है । इन्द्र, अपने बलसे तुम महाबली हो; इसलिये तुम अत्यन्त क्रूर वधोपायका आश्रय करते आ रहे हो । यजमानोंका विनाश नहीं कर सकते । तुम शूर हो । जीवगण तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकते । तुम इक्कीस अनुचरोंसे युक्त हो । *

* कदाचित् ये इक्कीस अनुचर मरुद्गण हैं ।

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हिष्मा यजत्यवद्विषो देवानामवद्विषः ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥

२० अनुवाक । १३४ सूक्त । वायु देवता ।

आ त्वा जुवो रारहाणा अभिप्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥
मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोस्मत् क्राणासः सुकृता अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उपब्रुवत ईंधियः ॥२॥
वायुर्युंक्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरिवोळ्हवे वहिष्ठा धुरिवोळ्हवे ।
प्रबोधया पुरन्धिं जार आससतीमिव ।
प्रचक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३॥

७ इन्द्र, अभिषव करनेवाला यजमान गृह प्राप्त करता है। सोमयज्ञ करनेवाला चारो ओरके शत्रुओंका विनाश करता है। देव-शत्रुओंका भी विनाश करता है। अन्नवाला और शत्रुके आक्रमणसे शून्य अभिषवकर्ता अपरिमित धन प्राप्त करता है। इन्द्र सोमयाजक यजमान चतुर्दिक् उत्पन्न और अति समृद्ध धन प्रदान करता है।

---

१ वायुदेव, शीघ्रगामी और बलवान् अश्व तुम्हें, अन्नके उद्देश्यसे और देवोंके बीच प्रथम, सोमपानके लिये, इस यज्ञमें ले आवें। हमारी प्रिय, सत्य और उच्च स्तुति अच्छी तरह तुम्हारे गुणकी व्याख्या करती है। वह तुम्हें अभिमत हो। यज्ञके हव्यकी स्वीकृति और हमें अभीष्ट देनेके लिये नियुत् नामक अश्वोंसे युक्त रथपर आओ।

२ वायु, मादकतोत्पादक, हर्षजनक, सम्यक् प्रस्तुत, उज्ज्वल और मन्त्र द्वारा हूयमान सोमबिन्दु तुम्हारे सामने जाकर हर्ष उत्पन्न करें; क्योंकि कर्म-कुशल, प्रीतियुक्त, निरन्तर सहगामी नियुत्, तुम्हारा उत्साह देखकर, हव्य ग्रहणके लिये, तुम्हें यज्ञभूमिमें लानेके लिये मिलते हैं। बुद्धिमान् यजमान लोग तुम्हारे पास आकर मनोगत भाव व्यक्त करते हैं।

३ भारवहनके लिये वायु लोहितवर्ण अश्व योजित करते हैं। वायु अरुणवर्ण अश्व योजित करते हैं। वायु अजिर-वर्ण या गमनशील अश्व योजित करते हैं; क्योंकि, ये भारवहनमें अत्यन्त समर्थ हैं। जैसे थोड़ी निद्रामें आयी स्त्रीको उसका आसक्त जगा देता है, उसी तरह तुम भी बहुयज्ञ-प्रबोधित यजमानको जगाते हो। तुम आकाश और पृथिवीको प्रकाशित करते हो। उषाको स्थापित करते हो। हव्य ग्रहणके लिये उषाको स्थापित करते हो।

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसुरश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आवक्षणाभ्यः ॥४॥
तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वांत्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात् पासि धर्मणा सूर्यात् पासि धर्मणा ॥५॥
त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥६॥



१३५ सूक्त। वायु देवता। अत्यष्टि छन्द।

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

---

४ दीप्तियुक्त उषाएँ, दूर देशमें, तुम्हारे ही लिये, घरोंको ढकनेवाली किरणोंसे कल्याणकर वस्त्रका विस्तार करती हैं; नवी किरणोंसे विचित्र वस्त्रका विस्तार करती हैं। अमृत बरसानेवाली गायें तुम्हारे ही लिये समस्त धन दान करती हैं। तुमने वर्षा और नदियोंके उत्पादनके लिये अन्तरीक्षसे मरुतोंको उत्पादित किया है।

५ दीप्त, शुद्ध, उग्र और प्रवाहशाली सोम, तुम्हारे आनन्दके लिये आहवनीय अग्निके पास जाता है और जलभार-वाहक मेघकी आकांक्षा करता है। वायु, यजमान लोग, अत्यन्त भीत और क्षीणकाय होकर चोरोंके हटनेके लिये तुम्हारी पूजा करते हैं। हमारे धार्मिक होनेसे हमें सारे भूतोंसे रक्षा करो। हमें, धर्म-संयुक्त होनेके कारण, असुरोंसे रक्षा करो।

६ वायु, तुमसे पहले किसीने सोमपान नहीं किया है। तुम्ही पहले हमारे इस सोमपानको करनेके योग्य हो; अभिषुत सोमपान करने योग्य हो। तुम हवनकर्त्ता और निष्पाप लोगोंका हव्य स्वीकार करते हो। सारी गायें तुम्हारे लिये दूध देती हैं और तुम्हारे लिये घी भी देती हैं।

---

१ नियुत् अश्ववाले वायु, तुम कितने ही नियुतोंपर चढ़कर, अपने लिये प्रस्तुत हव्यके भक्षणके लिये, हमारे बिछाये कुशोंपर आओ। असंख्य नियुतोंपर चढ़कर आओ। तुम नियुतवाले हो। तुम्हारे पहले पान करनेके लिये अन्य देवता चुप हैं। अभिषुत मधुर सोम तुम्हारे आनन्दके लिये है; यज्ञ-सिद्धिके लिये है।

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हावसानः परिकोशमर्षति शुक्रावसानो अर्षति ।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुपयाहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अ सत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥
आवां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वांहितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसागतमिन्द्रश्च राधसागतम् ॥ ४ ॥
आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥
इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

---

२ वायु, तुम्हारे लिये, पत्थरसे परिशोधित और आकांक्षणीय तथा तेजः-सम्पन्न सोम अपने पात्रमें जाता है; शुक्र तेजसे संयुक्त होकर तुम्हारे पास जाता है। मनुष्य लोग देवोंके मध्य तुम्हारे लिये यही सुन्दर सोम प्रदान करते हैं। वायु, तुम हमारे लिये नियुत् अश्वोंको जोतो और प्रस्थान करो। हमारे ऊपर अनुग्रह कर और प्रसन्न होकर प्रस्थान करो।

३ वायु, तुम सैकड़ो और हजारो नियुतोंपर सवार होकर अभिमत-सिद्धि और हव्य भक्षणके लिये हमारे यज्ञमें उपस्थित हो। यही तुम्हारा लेने योग्य हिस्सा है; यह सूर्यके तेजसे तेजस्वी है। ऋत्विक्के हाथका सोम तैयार है। वायु, पवित्र सोम तैयार है।

४ हमारी रक्षाके लिये, हमारे सुगृहीत अन्न-भक्षणके निमित्त और हमारे हव्यकी सेवाके लिये, हे वायु, नियुतसे युक्त रथ तुम दोनों (इन्द्र और वायु) को ले आवे। तुम दोनों मधुर सोमरस पान करो। पहले पान करना ही तुम लोगोंके लिये ठीक है। वायु, मनोहर धनके साथ आओ। इन्द्र भी धनके साथ आवें।

५ हे इन्द्र और वायु, हमारे स्तोत्र आदि तुम लोगोंके यज्ञमें आनेके लिये प्रेरित करते हैं। जैसे शीघ्रगामी अश्वको परिमार्जित किया जाता है, वैसे ही कलससे लाये हुए सोमको ऋत्विक् लोग परिमार्जित करते हैं। अध्वर्युओंका सोमपान करो। हमारी रक्षाके लिये यज्ञमें आओ। तुम दोनों अन्नदाता हो; इसलिये हमारे प्रति प्रसन्न होकर, आनन्दके लिये, पत्थरके टुकड़से अभिषुत सोम पान करो।

६ हमारे इस यज्ञ-कार्यमें अभिषुत और अध्वर्युओं द्वारा गृहीत सोम निश्चय ही तुम्हीं दोनोंका है। यह शीघ्र सोम निश्चय ही तुम लोगोंका है। यह यथेष्ट सोम निश्चय ही तुम्हारे लिये टेढ़े सोमाधार कुशमें परिष्कृत हुआ है। तुम्हारा सोम अविच्छिन्न लोगोंको लाँघकर प्रचुर परिमाणमें जाता है।

अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
विसूनृता ददृशे रीयते घृतमापूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥
अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मेते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उपदस्यन्ति धेनवो नापदस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥
इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः ।
धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥

१३६ सूक्त । मित्रावरुण देवता । अत्यष्टि और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रसुज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नूचिदाधृषे ॥ १ ॥

---

७ वायु, तुम निद्रालु यजमानोंको अतिक्रम करके उस गृहमें जाओ, जिस गृहमें प्रस्तरका शब्द होता है। इन्द्र भी उसी गृहमें जायँ। जिस गृहमें प्रिय और सत्य स्तुतिका उच्चारण होता है, जिस घरमें घृत जाता है, उसी यज्ञस्थानमें मोटे नियुत् घोड़ोंके साथ जाओ। इन्द्र, वहीं जाओ।

८ हे इन्द्र और वायु, तुम इस यज्ञमें मधुके समान उस आहुतिको धारण करो, जिसके लिये विजेता यजमान पर्वत आदि प्रदेशोंमें जाते हैं। हमारे विजेता लोग यज्ञके निर्वाहके लिये समर्थ हों। इन्द्र और वायु, गायें एक साथ दूध देती हैं और यवसे बनाया हव्य तैयार होता है। ये गायें न तो कम होंगी, न नष्ट होंगी।

९ वायु, ये जो तुम्हारे बलशाली, नौजवान बैलोंके समान और अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट घोड़े हैं, वे तुम्हें स्वर्ग और पृथिवीमें ले जाते हैं; ये अन्तरीक्षमें भी देर नहीं करते; ये बहुत शीघ्रगामी हैं; काँटसे भी इनकी गति नहीं रुकती। सूर्य-किरणोंकी तरह इनकी गतिका रोकना दुःसाध्य है। हाथोंसे इनकी गतिका रोकना कठिन है।

---

१ ऋत्विक्गण, चिरन्तन मित्रावरुणको लक्ष्य कर प्रशंसनीय और प्रवृद्ध सेवा करो। उन्हें हव्य देनेमें कृत-निश्चय बनो। मित्रावरुण यजमानोंको सुख देनेमें कारण हैं। वे स्वादिष्ट हव्यका भक्षण करते हैं। वे सम्राट् हैं। उनके लिये घृत गृहीत होता है। प्रतियज्ञमें उनकी स्तुति होती है। उनकी किका कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता। उनके देवत्वमें किसीको सन्देह नहीं होता।

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यम् वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २ ॥
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमासचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥
अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥
यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परिपातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः ।
तमर्यमाभिरक्षत्यृजूयन्तमनुव्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुपस्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

---

२ श्रेष्ठ उषा विस्तृत यज्ञकी ओर जाती है—ऐसा देखा गया। शीघ्रगामी सूर्यका पथ व्याप्त हुआ। सूर्य-किरणोंमें मनुष्यकी आँखें खुलीं। मित्र, अर्यमा और वरुणके उज्ज्वल गृह प्रकाशसे परिपूर्ण हुए; इस लिये तुम दोनों प्रशंसनीय और बहुत अन्न धारण करो। प्रशंसनीय और प्रभूत अन्न धारण करो।

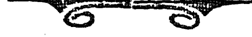
३ यजमानने ज्योतिष्मती, सम्पूर्ण-लक्षणा और स्वर्ग-प्रदायिनी वेदी तैयार की। तुम लोग सदा जागरूक रहकर और प्रतिदिन वहाँ उपस्थित होकर तेज और बल प्राप्त करो। तुम लोग अदितिके पुत्र और सर्व-प्रकार दानके कर्त्ता हो। मित्र और वरुण लोगोंको अच्छे व्यापारमें लगाते हैं। अर्यमा भी ऐसा करते हैं।

४ मित्र और वरुणके लिये यह सोम प्रसन्नता-दायक हो। वे दोनों नीचे मुँह करके इसे पान करें। दीप्यमान सोम देवोंकी सेवाके उपयुक्त हैं। सारे देवगण अतीव प्रसन्न होकर इसे पियें। प्रकाशशाली मित्र और वरुण, हम जैसी प्रार्थना करते हैं; वैसा ही करो। तुम लोग सत्यवादी हो; हम जिसके लिये प्रार्थना करते हैं, उसे करो।

५ जो व्यक्ति मित्र और वरुणकी सेवा करता है, उसे तुम पापसे बचाओ। द्वेष-शून्य और हव्यदाता मनुष्यको सारे पापोंसे बचाओ। उस सरल-स्वभाव व्यक्तिको, उसके व्रतको लक्ष्यकर, अर्यमा रक्षा करते हैं। वह यजमान मंत्र द्वारा मित्रावरुणका व्रत ग्रहण करता और स्तोत्र द्वारा उसकी रक्षा करता है।

६ मैं प्रकाशशाली और महान् सूर्यको नमस्कार करता हूं। पृथिवी, आकाश, मित्र, वरुण और रुद्रको भी नमस्कार करता हूँ। ये सब अभीष्ट फल और सुखके दाता हैं। इन्द्र, अग्नि, दीप्तिमान् अर्यमा और भगकी स्तुति करो। हम बहुत दिनों जीकर निश्चयात्मिका बुद्धिसे चिर रहेंगे। इसी प्रकार सोम द्वारा हम रक्षित होंगे।

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्मयंसन्तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥



७ हमने इन्द्रको प्राप्त किया है। हमारे ऊपर मरुद्गण कृपा करते हैं। देवता लोग हमें बचावें। इन्द्र, अग्नि, मित्र और वरुण हमारे लिये सुखदाता हों। हम अन्नसे संयुक्त होकर उसी सुखका भोग करें।

प्रथम अध्याय समाप्त

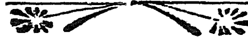


२ अध्याय



१३७ सूक्त। मित्रावरुण देवता। अतिशक्करी छन्द।

सुषुमायातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ १॥
इम आयातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः।
उत वामुषसो बुधिसाकं सूर्यस्य रश्मिभिः।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये॥ २॥
तां वां धेनुं नवासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः।
अस्मत्रा गन्तमुप नोर्वाञ्चा सोमपीतये।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आपीतये सुतः॥ ३॥



१३८ सूक्त। पूषा देवता। अत्यष्टि छन्द।

प्र प्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम्।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः॥ १॥

---

१ हम पत्थरके टुकड़ेसे सोम चुआते हैं। मित्रावरुण, आओ। दूध-मिला और तृप्त करनेवाला सोम यही सामने है। यह सोम तृप्ति देनेवाला है। तुम राजा, स्वर्गवासी और हमारे रक्षक हो। हमारे यज्ञमें आओ। तुम्हारे ही लिये यह सोम दूधके साथ मिलाया गया है। दूध-मिलाया सोम विशुद्ध होता है।

२ मित्रावरुण, आओ। यह तरल सोमरस दहीके साथ मिलाया हुआ है। अभिषुत सोमरस दहीके साथ मिलाया गया है। उषाके उदय-कालमें हो हो अथवा सूर्य-किरणोंके साथ ही हो—तुम्हारे लिये सोम अभिषुत है। यह सुन्दर सोम-रस मित्र और वरुणके पानके लिये है—यज्ञ-स्थलमें उनके पीनेके लिये है।

३ तुम्हारे लिये बहुत रसवाली सोमलताको, दुग्धवती गायको तरह, पत्थरके टुकड़ोंसे वे दूहते हैं। वे प्रस्तर-खण्ड द्वारा सोमको दूहते हैं। तुम हमारे रक्षक हो। सोम पानके लिये हमारे सामने हमारे पास तुम आओ। मित्र और वरुण, नेताओंने तुम्हारे लिये सोम चुआया है—अच्छी तरह पीनेके लिये अभिषव किया है।

---

१ अनेक मनुष्यों द्वारा पूजित पूषा (सूर्य) देवकी शक्तिकी महिमा सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती है। कोई उसे मारना नहीं चाहता। पूषाके स्तोत्रकी विश्रान्ति नहीं है। मैं सुख पानेकी इच्छासे पूषाकी पूजा करता हूं। वह तुरत सहारा देते और उत्पन्न करते हैं। पूषा यज्ञवाले हैं। वह सारे मनुष्योंके मनके साथ मिल जाते हैं।

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमांगूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तोवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेलमान उरुशंस सरीभव वाजेवाजे सरीभव ॥ ३ ॥
अस्या ऊषुण उप सातये भुवोहेलमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओषुत्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥



१३९ सूक्त । विश्वेदेवगण देवता । त्रिष्टुप्, बृहती, अत्यष्टि आदि छन्द ।

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आनुतच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी ।
अध प्रसून उपयन्तु धीतयो देवाँ अच्छान धीतयः ॥ १ ॥

---

२ जैसे शीघ्रगामी घोड़ेकी प्रशंसा होती है, वैसे ही, हे पूषन्, मंत्रों द्वारा मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ । युद्धमें जानेके लिये तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ । ऊँटकी तरह तुम हमें युद्धमें पार करते हो । तुम सुख उत्पन्न करनेवाले देवता हो और मैं मनुष्य हूँ; मैत्री पानेके लिये मैं तुम्हें बुलाता हूँ । मेरे बुलावेको शक्तिमान् करो और संग्राममें मुझे विजयी बनाओ ।

३ पूषन्, तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके विशेष यज्ञ द्वारा तुम्हें प्रसन्न करते हुए स्तोत्र-परायण यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर नाना प्रकारके भोग भोगते हैं । नया सहारा पाकर तुम्हारे पास असंख्य धन चाहते हैं । बहुतोंके द्वारा स्तवनीय पूषा, हमारा अनादर न करके हमारे सामने आओ और युद्ध-कालमें हमारे अग्रगामी बनो ।

४ अज वाहनवाले पूषन्, हमारे लाभके सम्बन्धमें अनादर न कर और दानशील होकर हमारे पास आओ । अजाश्व पूषन्, हम अन्न चाहते हैं । हमारे पास आओ । शत्रु-हन्ता पूषा, मंत्र-पाठ करते हुए हम तुम्हारे चारो ओर रहें । वृष्टिदाता पूषा, हम कभी न तो तुम्हारा अपमान करते और न तुम्हारी मित्रताका कभी अपलाप करते हैं ।

---

१ मैंने, भक्तिके साथ, सामने अग्निकी स्थापना की है । अग्निकी स्वर्गीय शक्तिकी मैं प्रशंसा करता हूँ । इन्द्र और वायुकी प्रशंसा करता हूँ । चूँकि पृथिवीकी दीप्तिमान् नाभि या यज्ञस्थानको लक्ष्य कर नयी अर्थकरी स्तुति बनायी गयी है; इसलिये अग्नि इसे सुनें । पश्चात् जैसे हमारे क्रिया-कर्म अन्यान्य देवोंके पास जाते हैं, वैसे ही इन्द्र और वायुके पास भी जायँ ।

यद्वांस्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥
युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना श्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्ययवः ।
युवोर्विश्वा अधिश्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥
अचेति दस्रा व्यु नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
अधि वां स्थाम बन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुपदसत् कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥
वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आगहि सुमृळीको न आगहि ॥ ६ ॥

---

२ कर्म-कुशल मित्र और वरुण, अपनी शक्ति द्वारा सूर्यके पाससे जो विनाशी जल पाते हो, वह हमें यथेष्ट परिमाणमें देते हो; इसलिये हम क्रिया, कर्म, ज्ञान और सोमरसमें आसक्त इन्द्रियोंकी सहायतासे, यज्ञशालामें, तुम लोगोंका ज्योतिर्मय रूप देखें।

३ अश्विनीकुमारो, स्तुति द्वारा तुम्हें अपना देवता बनानेकी इच्छासे यजमान लोग श्लोक सुनाते तथा हव्य लेकर तुम्हारे सामने जाते हैं। सर्वधन-सम्पन्न अश्विद्वय, वे लोग, तुम्हारी कृपासे, सब तरहके धनधान्य और अन्न प्राप्त करते हैं। तुम्हारे सोनेके रथको नेमियाँ मधु गिराती हैं। उसी रथपर हव्य ग्रहण करो।

४ दस्रद्वय, तुम्हारे मनकी बात सब जानते हैं। तुम स्वर्गमें जाना चाहते हो। तुम्हारे सारथि लोग स्वर्ग-पथमें रथ योजित करते हैं। निरालम्ब होते हुए भी अश्वगण रथको नष्ट नहीं करते। अश्विद्वय, बन्धुर या बन्धनाधारभूत वस्तुसे युक्त हिरण्मय रथपर हम तुम्हें बैठाते हैं। तुम लोग सरल मार्गसे स्वर्गको जाते हो। तुम लोग शत्रुओंको परास्त करते और विशेष रूपसे वृष्टिकी व्यवस्था करते हो।

५ हमारे क्रिया-कर्म ही तुम्हारा धन हैं। हमारे क्रिया-कर्मके लिये दिन-रात अभीष्ट प्रदान करो। न तो तुम्हारा दान बन्द हो और न हमारा।

६ अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्ट-वर्षीके पानके लिये यह सोम अभिषुत हुआ है। यह प्रस्तर-खण्ड द्वारा अभिषुत हुआ है। सोम पर्वतपर उत्पन्न हुआ है। वह तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है। विविध विचित्र लाभोंके लिये यथास्थान प्रवृत्त सोम तुम्हारी तृप्तिका साधन करे। स्तुति-योग्य, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। आओ, हमारे ऊपर प्रसन्न होकर आओ।

ओषूणो अग्ने शृणुहि त्वमीड़ितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।
यद्धत्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
वितां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एषतां वेद मे सचा ॥ ७ ॥
मो षु वो अस्मदभितानि पौंस्यासना भुवं द्युम्नानि मोतजारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः ।
यद्वश्चित्रं युगे युगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासुतन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥
दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः ।
तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्यानमे गिरेन्द्राग्नी आनमे गिरा ॥ ९ ॥
होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।
जगृभ्मादूर आदिशं श्लोकमद्रेरधत्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरूसद्मानि सुक्रतुः ॥ १० ॥
ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ ११ ॥



---

७ अग्नि, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। हमारी स्तुति सुनो। दीप्यमान और यज्ञ-योग्य देवोंके पास यजमानकी बात कहना; क्योंकि देवोंने अङ्गिरा लोगोंको प्रसिद्ध धेनु दी थी। अर्यमा देवोंके साथ, सर्वोत्पादक अग्निके लिये, उस धेनुका दोहन करते हैं और वह जानते हैं कि, वह धेनु हमारे साथ समवेत है।

८ हे मरुतो, तुम्हारा नित्य और प्रसिद्ध बल हमें पराभूत नहीं करे। हमारा धन कम न हो। हमारा नगर क्षीण न हो। तुम्हारा जो कुछ नूतन, विचित्र, मनुष्य-दुर्लभ और शब्द करनेवाला है, वह युग-युगमें हमारा हो। जो धन शत्रु लोग नष्ट नहीं कर सकते, वह हमारा हो। तुम जो दुर्लभ धनको धारण करते हो, वह हमारा हो। जिस धनको शत्रु नहीं नष्ट कर पाते, वह हमारा ही हो।

९ प्राचीन दधीचि, अङ्गिरा, प्रियमेध कण्व, अत्रि और मनु मेरे जन्मकी बात जानते हैं। ये पूर्व कालके ऋषि और मनु मेरे पूर्व-पुरुषोंको जानते हैं; क्योंकि, महर्षियोंमें यह दीर्घायु हैं और मेरे जीवनके साथ उनका सम्बन्ध है। वे महान् हैं; इसलिये उनकी स्तुति तथा नमस्कार करता हूँ।

१० होता लोग यज्ञ करें, हव्यकी इच्छा करनेवाले देवता रमणीय सोम ग्रहण करें। स्वयं इच्छा करके बृहस्पति प्रभूत और रमणीय सोम द्वारा याग करते हैं। हमने सुदूर देशमें प्रस्तर-खण्डकी ध्वनि सुनी। सुक्रतु यजमान स्वयं जल-धारण करते हैं। वह बहु निवास-योग्य घर धारण करते हैं।

११ जो देवता स्वर्गमें ११ हैं, पृथिवीके ऊपर ११ हैं—जब अन्तरीक्षमें रहते हैं, तब भी ११ रहते हैं, वे अपनी महिमासे, यज्ञकी सेवा करते हैं।

---

२१ अनुवाक । १४० सूक्त । अग्नि देवता । यहाँसे १२४ सूक्ततक उकथ्यके पुत्र दीर्घतमा ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्रभरायोनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥
अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषान्यन्येन वनिनो मृष्टवारणः ॥ २ ॥
कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभिमातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमासाच्यं कुपयं वर्द्धनं पितुः ॥ ३ ॥
मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊजुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उपयुज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥
आदस्यते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महिवर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन् स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥
भूषन्न योऽधिबभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥

---

१ अध्वर्यु, वेदीपर बैठे हुए, अपने प्रिय धाम उत्तर वेदीपर, प्रीति-सम्पन्न और प्रकाशशील अग्निके लिये तुम अन्नवान् स्थान या वेदी तैयार करो । उस पवित्र ज्योतिसे संयुक्त, दीप्त वर्ण और अन्धकार-विनाशी स्थानके ऊपर, वस्त्रकी तरह, मनोहर कुशको बिछाओ ।

२ द्विजन्मा या दो काष्ठोंके मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि आज्य, पुरोडाश और सोम नामके तीन अन्नोंको सम्मुख लाकर खाते हैं । अग्निके द्वारा भक्षित धन-धान्यादि, संवत्सरके बीच, फिर बढ़ जाते हैं । अभीष्टवर्षी अग्नि, एक ही रूप धारण कर, मुख और जिह्वाकी सहायतासे, बढ़ते हैं । अग्नि दूसरे प्रकारका रूप धारण करके, सबको दूर करके, वन-वृक्षोंको जलाते हैं ।

३ अग्निके दोनों काष्ठ चलते हैं । कृष्णवर्ण होकर दोनों ही एक ही कार्य करते हैं और शिशु अग्निको प्राप्त होते हैं । शिशुको शिखारूपिणी जिह्वा पूर्वाभिमुखिनी है । यह अन्धकारको दूर करते हैं । शीघ्र उत्पन्न होते हैं । धीरे-धीरे काष्ठ-चूर्णोंमें मिलते हैं । बहुत प्रयत्नसे इनको रक्षा करनी होती है । यह रक्षकको समृद्धि देते हैं ।

४ अग्निकी शिखाएँ लघुगति, कृष्णमार्गी या शीघ्रकारिणी, अस्थिरचित्ता, गमनशीला, कम्पन-शीला, वायुचालिता, व्याप्ति-संयुक्ता, मोक्षप्रदा और मनस्वी यजमानकी उपयोगिनी हैं ।

५ जिस समय अग्नि गर्जन करके श्वास फेंककर बार-बार विस्तीर्ण, पृथिवीको छूकर, शब्द करते हैं, उस समय अग्निके सारे स्फुलिङ्ग, एक साथ, चारो ओर जाते हैं । वे अन्धकारका विनाश कर चारो ओर जाते और कृष्णवर्ण मार्गमें उज्ज्वल रूप प्रकाशित करते हैं ।

६ अग्नि, पीले औषधोंको भूषित करके, उनके बीच, उतरते हैं । जैसे वृषभ गायोंकी ओर दौड़ता है, वैसे ही, शब्द करते हुए, अग्नि दौड़ते हैं । क्रमशः अधिक तेजस्वी होकर अपने शरीरको प्रकाशित करते हैं । दुर्द्धर्ष रूप धारण करके भयंकर पशुकी तरह सींग घुमाते हैं ।

स संस्तिरो विष्टिरः सङ्गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आशये ।
पुनर्वर्द्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥
तमग्रुवः केशिनीः संहिरेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुम्परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥
अधीवासं परिमातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति विज्रयः ।
वयो दधत् पद्वते रेरिहत् सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ९ ॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥
इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत्ते शुक्रं तन्वो रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥ ११ ॥
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ ॥ १२ ॥

---

७ अग्नि कभी छिपकर, कभी विराट् होकर ओषधियोंको व्याप्त करते हैं, मानों यजमानका अभिप्राय जानकर ही अपनी अभिप्राय जाननेवाली शिखाको आश्रित करते हैं। शिखाएँ, फिर बढ़कर, याग-योग्य अग्निको व्याप्त करती हैं एवं सब मिलकर पृथिवी और स्वर्गका अपूर्व रूप विस्तृत करती हैं ।

८ पार्श्वस्थानीय और आगे स्थित शिखाएँ अग्निका आलिङ्गन करती हैं; मृतप्राय होनेपर भी अग्निका आगमन जानकर ऊर्ध्वमुख होकर, ऊपर उठती हैं । अग्नि, शिखाओंका बुढ़ापा छुड़ाकर उन्हें उत्कृष्ट सामर्थ्य और अखण्ड जीवन प्रदान करते हुए, गर्जन करते आते हैं ।

९ पृथिवी माताके ऊपरके ढक्कन या तृण-गुल्म आदिको चाटते-चाटते अग्नि प्रभूत शब्द-कर्त्ता प्राणियोंके साथ वेगसे गमन करते हैं। पाद-विशिष्ट पशुओंको आहार देते हैं। अग्नि सदा चाटते हैं और क्रमशः जिस मार्गसे जाते हैं, उसे काला करते जाते हैं।

१० अग्नि, तुम अभीष्टवर्षी और दानशील होकर श्वास फेंकते हुए हमारे धनाढ्य गृहमें दीप्त हो । शिशु-बुद्धि छोड़कर, युद्ध-समयमें वर्मकी तरह, बार-बार शत्रुओंको दूर करके जल उठो ।

११ अग्नि, यह जो काठके ऊपर सावधानीसे हव्य रखा गया है, वह तुम्हारी मनोनुकूल प्रिय वस्तुसे भी प्रिय हो । तुम्हारे शरीरकी शिखासे जो निर्मल और दीप्त तेज निकलता है, उसके साथ तुम हमें रत्न प्रदान करो ।

१२ अग्नि, हमारे घर या यजमान और रथके लिये सुदृढ़ डाँड़ या ऋत्विक् और पाद या मंत्रसे संयुक्त नौका या यज्ञ प्रदान करो । वह हमारे वीरों, धनवाइकों और अन्य लोगोंकी रक्षा करेगा और हमें सुखसे रखेगा ।

अभीनो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥



१४१ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुपह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥
पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आशये द्वितीयमासप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥
निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्तसूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहासन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥
प्र यत् पितुः परमान्नीयते पर्यापृक्षुधो वीरुधो दंसुरोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥ ४ ॥

१३ अग्नि, हमारे ऋक्मंत्रोंके लिये उत्साह बढ़ाओ । द्यावापृथिवी और स्वयं गामिनी नदियाँ हमें गौ और हव्य प्रदान करके उत्साह वर्द्धित करें । अरुणवर्ण अश्वाएँ सदा पाने योग्य सुन्दर अन्न आदि दें ।

---

१ प्रकाशमान अग्निका दर्शनीय तेज, सचमुच, इसी प्रकार लोग, शरीरके लिये, धारण करते हैं । वह तेज शारीर बल या अरणि-मन्थनसे उत्पन्न हुआ है । अग्निके तेजका आश्रय करके मेरा ज्ञान अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर सकता है; इसलिये अग्निके लिये स्तुति और हव्य अर्पण किया जाता है ।

२ प्रथम अन्न-साधक शरीरो और नित्य अग्नि रहते हैं, द्वितीय कल्याणवाहिनी सप्त-मातृकाओंमें रहते हैं, तृतीय इस अभीष्टवर्षीके दोहनके लिये रहते हैं । परस्पर संश्लिष्ट दसदिशाएँ दसो दिशाओंमें पूजनीय अग्निको उत्पन्न करती हैं ।×

३ चूँकि महायज्ञके मूलसे सिद्धि करनेवाले ऋत्विक् बल-प्रयोग या अरणि-मन्थन द्वारा अग्निको उत्पन्न करते हैं, अनादि कालसे अच्छी तरह फैलानेके लिये गुहास्थित अग्निको वायु चालन करते हैं,—

४ अग्निकी उत्कृष्टताकी प्राप्तिके लिये अग्निका निर्माण किया जाता है, आहारके लिये वाञ्छित लताएँ अग्निकी शिखाओं (दाँतों) पर चढ़ जाती हैं और अध्वर्यु तथा यजमान दोनों ही अग्निकी उत्पत्तिके लिये चेष्टा करते हैं; इसलिये पवित्र अग्निदेव, यजमानोंके लिये अनुग्रह करते हुए, युवा हुए ।

×प्रथम अग्निका स्थान पृथिवी और द्वितीयका अन्तरीक्ष है, जहाँ मातृस्थानीय वृष्टि होती है । यही विद्युदग्नि और अभीष्टवर्षी है । इन्हें दूहनेके लिये सूर्यकिरणरूप स्थानमें जो अग्नि रहते हैं, वह तृतीयाग्नि हैं—इस मंत्रका यही तात्पर्य है ।

आ दिद्मातराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया विवावृधे ।
अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥
आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान् यत् क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्त्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥
वियदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आव्यध्वनः ॥ ७ ॥
रथो न यातः शिकभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्यते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥८॥
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्ननेमिः परिभूरजायथाः ॥९॥
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं नकारे महिरत्न धीमहि ॥ १०॥

---

५ मातृरूपिणी दिशाओंके बीच अग्नि, हिंसा-रहित होकर, बढ़े हैं; इस समय प्रदीप्त होकर उन्हींके मध्य बैठते हैं। स्थापन-समयमें, पहले, जो सब औषध प्रक्षिप्त हुए थे, उनके ऊपर अग्नि चढ़ गये थे। इस समय अभिनव और निकृष्ट औषधोंके प्रति दौड़ते हैं।

६ हविका सम्पर्क करनेवाले यजमान, द्युलोक-निवासियोंकी प्रसन्नताके लिये, होम-सम्पादक अग्निका वरण करते और राजाकी तरह उनका आराधन करते हैं। अग्नि बहुतोंसे स्तुति-योग्य और विश्व-रूप हैं। वह यज्ञ-सम्पन्न और बलशाली हैं। वह देवों और स्तुति-योग्य मर्त्य यजमानों—दोनोंके लिये अन्नकी कामना करते हैं।

७ जैसे बकवादी विदूषक आदि बड़ी सरलतासे हँसा देते हैं, वैसे ही वायु द्वारा परिचालित यजनीय अग्नि चारों ओर व्याप्त होते हैं। अग्नि दहन-कर्ता हैं, उनका जन्म पवित्र है, उनका मार्ग कृष्णवर्ण है और उनके मार्गमें कुछ भी स्थिरता नहीं है। इसीलिये उनके मार्गमें अन्तरीक्ष स्थित है।

८ रस्सीमें बँधे रथकी तरह अपने चञ्चल अंगकी सहायतासे अग्नि स्वर्गको जाते हैं। उनका मार्ग एकबारगी ही कृष्णवर्ण है, वह काठ जलाते हैं। वीरकी तरह अग्निके उद्दीप्त तेजके सामनेसे चिड़ियाँ भाग जाती हैं।

९ अग्निदेव तुम्हारी सहायतासे वरुण अपना व्रत धारण करते, मित्र अन्धकार नाश करते और अर्यमा दानशील होते हैं। जैसे रथका पहिया डाँड़ोंको व्याप्त करके रहता है, उसी प्रकार अग्निने यज्ञ-कार्य द्वारा विश्वात्म, सर्वव्यापी और सबके पराभवकारी होकर जन्म ग्रहण किया है।

१० युवा अग्नि, जो तुम्हारी स्तुति करते और तुम्हारे लिये अभिषव करते हैं, तुम उनका रमणीय हव्य लेकर देवोंके पास विस्तार करते हो। हे तरुण, महाधन और बल-पुत्र, तुम स्तवनीय और हविर्भोक्ता हो। स्तुति-कालमें हम राजाकी तरह तुम्हें स्थापित करते हैं।

अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥११॥
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥१२॥
अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अतिनिष्टतन्युः ॥१३॥



१४२ सूक्त । आप्री देवता ।* त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

समिद्धो अग्न आवह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥१॥
घृतवन्तमुपमासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥२॥

---

११ अग्नि, तुम जैसे हमें अत्यन्त प्रयोजनीय और उपास्य धन देते हो, वैसे ही उत्साही, जन-प्रिय और विद्याध्ययनमें चतुर पुत्र दो। जैसे अग्नि अपनी किरणोंको विस्तृत करते हैं, वैसे ही आप जन्माधार (आकाश और पृथिवी) का विस्तार करते हैं। हमारे यज्ञमें यज्ञ-कर्त्ता अग्नि देवोंको स्तुतिका विस्तार करते हैं।

१२ अग्निदेव प्रकाशशील, द्रुतगामी अश्वसे संयुक्त, होता, आनन्दमय, सोनेके रथवाले, अप्रतिहतशक्ति और प्रसन्न-स्वभाव हैं। क्या वह हमारा बुलाना सुनेंगे? वह क्या हमें सिद्धिदाता कर्मद्वारा अनायासलभ्य और अभिवांछित स्वर्गकी ओर ले जायँगे?

१३ हव्य-प्रदान आदि कर्म और पूजा-साधक मन्त्र द्वारा हमने अग्निकी स्तुति की है। अग्नि अच्छी तरह दीप्तिसे युक्त हुए हैं। सारे उपस्थित लोग और हम, जैसे सूर्य मेघका शब्द उत्पन्न करते हैं, वैसे ही अग्निको लक्ष्य कर स्तुति करते हैं।



१ हे समिद्ध नामके अग्नि, जो यजमान स्रुक् ऊँचा किये हुए है, उसके लिये आज तुम देवोंको बुलाओ। जिस हव्यदाता यजमानने होमका अभिषव किया है, उसकी भलाईके लिये पूर्वकालीन यज्ञ विस्तार करो।

२ तनूनपात् नामके अग्नि, मेरे समान जो हव्यदाता और मेधावी यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, उसके घृत और मधुसे संयुक्त यज्ञमें आकर यज्ञ-समाप्ति पर्यन्त रहो।

---

* आप्री शब्दका अर्थ अग्निका रूप है; इसलिये एक तरहसे इस सूक्तके देवता भी अग्नि ही हैं।

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वायज्ञं मिमिक्षति।
नराशंसस्त्रिरादिवा देवो देवेषु यज्ञियः ॥३॥
ईळितो अग्न आवहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम्।
इयं हित्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥४॥
स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे।
वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥५॥
विश्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवी रसश्चतः ॥ ६ ॥
आमन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरासुमत् ॥ ७ ॥
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारादैव्या कवी।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती।
इला सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

३ देवोंमें स्वच्छ, पवित्र, अद्भुत, द्युतिमान् और यज्ञ-सम्पादक नाराशंस नामक अग्नि द्युलोकसे आकर हमारे यज्ञको मधुसे मिश्रित करें।

४ अग्नि, तुम्हारा नाम इलित है। तुम विचित्र और प्रिय इन्द्रको यहाँ ले आओ। सुजिह्व, तुम्हारे लिये मैं स्तोत्र-पाठ करता हूँ।

५ स्रुक् धारण करनेवाले ऋत्विक् लोग इस यज्ञमें अग्नि-रूप कुशको फैलाते हुए इन्द्रके लिये विस्तीर्ण और सुख-साधक गृह बनाते हैं। इस घरमें देवता लोग सदा गमनागमन करेंगे।

६ अग्निरूप यज्ञका दरवाजा खोल दो। देवोंके आनेके लिये यज्ञ-द्वार खोल दो। ये दरवाजे यज्ञ-वर्द्धक, यज्ञ-शोधक बहुत लोगोंके लिये श्लाघ्य और परस्पर असंलग्न हैं।

७ सबके स्तुति-पात्र, परस्पर संनिहित, सुन्दर, महान्, यज्ञ-निर्माता और अग्निरूप रात और उषा स्वयं आकर विस्तृत कुशोंके ऊपर बैठें।

८ देवोंकी उन्मादक शिक्षासे युक्त, सदा स्तुतिशील यजमानोंके मित्र, अग्निरूप दिव्य दोनों होता हमारे इस सिद्धि-प्रद और स्वर्गस्पर्शी यज्ञका अनुष्ठान करें।

९ शुद्ध, देवोंकी मध्यस्था, होम-सम्पादिका भारती (स्वर्गस्थ वाक्), इला (पृथिवीस्थ वाक्) और सरस्वती (अन्तरीक्षस्थ वाक्)—ये अग्निकी तीनों मूर्त्तियाँ यज्ञके उपयुक्त होकर कुशोंपर बैठें।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुवारं पुरुत्मना। त्वष्टा पोषाय विष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥
अवसृजन्नुपत्मना देवान् यक्षि वनस्पते। अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे। स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२॥
स्वाहाकृतान्यागह्युप हव्यानि वीतये। इन्द्रागहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥

१४३ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द।

प्रतव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे।
अपान्नपाद्यो वसुभिः सहप्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदृत्वियः ॥ १ ॥
सजायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥
अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥ ३ ॥

---

१० त्वष्टा हमारे मित्र हैं। वह स्वयं, अच्छी तरह, हमारी पुष्टि और समृद्धिके लिये, मेघके नाभिस्थित, व्याप्त अद्भुत और असंख्य प्राणियोंकी भलाई करनेवाला जल बरसावें।

११ हे अग्निरूप वनस्पति, इच्छानुसार ऋत्विकोंको भेजकर, स्वयं देवोंका यज्ञ करो। द्युतिमान् और मेधावान् अग्नि देवोंके बीच हव्य भेजें।

१२ पूषा और मरुतोंसे युक्त विश्वदेवगण, वायु और गायत्री-शरीर इन्द्रको लक्ष्यकर, हव्य देनेके लिये, अग्निरूप स्वाहा शब्दका उच्चारण करो।

१३ इन्द्र, हमारा स्वाहाकार-युक्त हव्य खानेके लिये आओ। ऋत्विक् लोग यज्ञमें तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ अग्नि बलके पुत्र, जलके नप्ता, यजमानके प्रियतम और होमके सम्पादक हैं। वह, यथासमय, धनके साथ वेदीपर बैठते हैं। उनके लिये मैं यह नया और शुभफल वर्द्धक यज्ञ आरम्भ करता और स्तुति-पाठ करता हूँ।

२ परम आकाश-देशमें उत्पन्न होकर अग्नि सबसे पहले मातरिश्वा या वायुके पास प्रकट हुए। अनन्तर इन्धन द्वारा अग्नि बढ़े और प्रबल कर्म द्वारा उनकी दीप्तिसे द्यावापृथिवी प्रदीप्त हुई।

३ अग्निकी दीप्तिसे सबका नाश नहीं होता। सुदृश्य अग्निके सारे स्फुलिङ्ग चारों ओर प्रकाशमान और विलक्षण चमकवाले हैं। रात्रिका अन्धकार नष्ट करके सदा जाग्रत् और अजर अग्नि-शिखाएँ कभी नहीं काँपतीं।

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आदमे य एकोवस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥
न यो वराय मरुतामिवस्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वनान्यृञ्जते ॥ ५ ॥
कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित्तुतुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णा मुदुनो यंसते धियम् ॥ ७ ॥
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेनिमिषद्भिः परिपाहि नोजाः ॥ ८ ॥



१४४ सूक्त । अग्नि देवता । जगती छन्द ।

एति प्रहोता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभिस्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥ १ ॥

४ भृगुवंशोत्पन्न यजमानोंने, अपने सामने, जीवोंके बलके लिये, उत्तर वेदीपर जिन सवधनशाली अग्निको स्थापित किया है, उन्हें अपने घरमें ले जाकर स्तुति करो । अग्नि प्रधान हैं और वरुणकी तरह सारे धनोंके ईश्वर हैं ।

५ जैसे वायुके शब्द, पराक्रमी राजाकी सेना और द्युलोकमें उत्पन्न वज्रका कोई निवारण नहीं कर सकता, उसी प्रकार जिन अग्निका कोई निवारण नहीं कर सकता, वही अग्नि, वीरोंकी तरह, तीखे दाँतोंसे शत्रुओंका भक्षण और विनाश तथा वनोंका दहन करते हैं ।

६ अग्निदेव बार-बार हमारे उक्त स्तोत्रको सुननेकी इच्छा करें । धनशाली अग्नि, धन द्वारा बार-बार हमारी इच्छा पूरी करें । यज्ञ-प्रवर्त्तक अग्नि, यज्ञ-लाभके लिये, हमें बार-बार प्रेरित करें—मैं ऐसी स्तुति द्वारा सुदृश्य अग्निकी स्तुति करता हूँ ।

तुम्हारे यज्ञ-निर्वाहक और प्रदीप्त अग्निको, मित्रकी तरह, जलाकर विभूषित किया जाता है । अच्छी तरह चमकती ज्वालावाले अग्नि, यज्ञ स्थलमें, प्रदीप्त होकर हमारी विशुद्ध यज्ञ-विषयक बुद्धिको प्रबुद्ध करते हैं ।

८ अग्निदेव, हमारे ऊपर अनुग्रह करके सदा अवहित, माङ्गलिक और सुखकर आश्रय देकर, हमारी रक्षा करो । सबजलवाञ्छनीय अग्नि, उत्पन्न होकर तुम हिंसा-रहित अजेय और एकनिष्ठ भावसे हमारी रक्षा, भली भाँति, करो ।

---

१ बहुदर्शी होता, अपनी उच्च और शोभन बुद्धिके बल, अग्निकी सेवा करनेके लिये, जा रहे हैं और प्रदक्षिणा करके स्रुक् धारण कर रहे हैं । ये स्रुक् अग्निमें प्रथम आहुति देते हैं ।

अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥
युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥
तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥ ६ ॥
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥ ७ ॥



२ सूर्यकिरणोंमें चारो ओर फैली जल-धारा, उनको उत्पत्तिके स्थान सूर्य-लोकमें, फिर नयी होकर, उत्पन्न होती है। जिस समय जिसकी गोदमें, आदरके साथ, अग्नि रहते हैं, उसी समय लोग अमृतमय जल पीते एवं अग्नि, विद्युत् अग्निके रूपमें, मिलते हैं

३ समान अवस्थावाले होता और अध्वर्यु, एक ही प्रयोजनकी सिद्धिके लिये, परस्परको सहायता देकर अग्निके शरीरमें अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं। अनन्तर जैसे सूर्य अपनी किरणें फैलाते हैं अथवा सारथि लगाम ग्रहण करता है, वैसे ही आहवनीय अग्नि हमारी दी हुई घृत-धारा ग्रहण करते हैं।

४ समान अवस्थावाले, एक यज्ञमें वर्त्तमान और एक कार्यमें नियुक्त दोनों मनुष्य जिस अग्निकी, दिन-रात, पूजा करते हैं, वह अग्नि चाहे बूढ़े हों, चाहे युवा, उन दोनों मनुष्योंका हव्य भक्षण करते हुए, अजर हुए हैं।

५ दसो अँगुलियाँ, आपसमें अलग होकर, उन प्रकाशशाली अग्निको प्रसन्न करती हैं। हम मनुष्य हैं; अपनी रक्षाके लिये अग्निको बुलाते हैं। जसे धनुषसे वाण निकलता है, वैसे ही अग्नि भी स्फुलिङ्ग भेजते हैं। चारो ओर अवस्थित यजमानोंको नयी स्तुतिको अग्निदेव धारण करते हैं।

६ अग्नि, पशु-रक्षकोंकी तरह, तुम, अपनी शक्तिसे, स्वर्गीय और पृथिवीस्थ लोगोंके ईश्वर हो; इसलिये महती ऐश्वर्यवती, हिरण्मयी मंगल-शब्द-कारिणी शुभ्रवर्णा और प्रसन्ना द्यावापृथिवी तुम्हारे यज्ञमें आती हैं।

७ अग्नि, तुम हव्यका उपभोग करो; अपना स्तोत्र सुननेकी इच्छा करो। हे स्तुत्य, अन्नवान् और यज्ञके लिये उत्पन्न तथा यज्ञशाली अग्नि, तुम सारे जगत्के अनुकूल, सबके दर्शनीय, आनन्दोत्पादक और यथेष्ट-अन्न-शाली व्यक्तिकी तरह सबके आश्रय-स्थान हो।

१४५ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सान्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥
तमित्पृच्छन्ति न सिमो विपृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥
तमिद्गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त संरभः ॥ ३ ॥
उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभिश्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥
स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां निधायि ।
व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ ॥



१ अग्निसे पूछो । वही ज्ञाता हैं, वही गये हैं, उन्हींको चैतन्य है, वही यान हैं, वही शीघ्रगन्ता हैं, उन्हींके पास शासन-योग्यता है, अभीष्ट वस्तु भी उन्हींके पास है । वही अन्न, बल और बलवान्‌के पालक हैं ।

२ अग्निको ही सारा संसार जानना चाहता है; यह जिज्ञासा अन्याय-पूर्ण नहीं है । अपने मनमें धीर व्यक्ति जो स्थिर करता है, उसके पूर्व और परकी बात नहीं सह सकता । इसीलिये दम्भ-विहीन मनुष्य अग्निका आश्रय प्राप्त करता है ।

३ सब जुहू अग्निको लक्ष्य कर जाते हैं । स्तुतियाँ भी अग्निके लिये ही हैं । एक अग्नि मेरी समस्त स्तुतियाँ सुनते हैं । वह बहुतोंके प्रवर्त्तक, तारयिता और यज्ञके साधन हैं । उनकी रक्षा-शक्ति छिद्रशून्य है । वह शिशुकी तरह शान्त और यज्ञके अनुष्ठाता हैं ।

४ जभी यजमान अग्निको उत्पन्न करनेकी चेष्टा करता है, तभी अग्नि प्रकट होते हैं । उत्पन्न होकर ही तुरत योजनीय वस्तुके साथ मिल जाते हैं । अग्निका आनन्द-वर्द्धक कर्म श्रान्त यजमानके सन्तोषके लिये अभीष्ट फल देता है ।

५ अन्वेषण-परायण और प्राप्तव्य वनके गामी अग्नि, त्वचाकी तरह, इन्धनके बीच स्थापित हुए हैं । विद्वान्, यज्ञ-ज्ञाता और यथार्थवादी अग्निने मनुष्योंको, विशेष करके, यज्ञानुष्ठानके समय, ज्ञान प्रदान किया है ।



१४७ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः॥ १॥
बोधामे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने॥ २॥
ये पायवो मामतेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः॥ ३॥
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः॥ ४॥
उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः॥ ५॥



१ अग्नि, तुम्हारी उज्ज्वल और शोषक शिखाएँ कैसे अन्नके साथ आयु प्रदान करती हैं, जिससे पुत्र, पौत्र आदिके लिये अन्न और आयु प्राप्त कर यजमान लोग याज्ञिक साम-गायन कर सकते हैं ?

२ हे युवा और अन्नवान् अग्नि, मेरी अत्यन्त पूज्य और अच्छी तरह सम्पादित स्तुति ग्रहण करो। कोई तुम्हारा हिंसा करता और कोई तुम्हारी पूजा करता है। मैं तो तुम्हारा उपासक हूँ। मैं तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करता हूँ।

३ अग्नि, तुम्हारी जिन प्रसिद्ध और पालक रश्मियोंने ममताके पुत्र और अन्धे दीर्घतमाको अन्धत्वसे बचाया था, उन सुखकर शिखाओंकी सर्वप्रज्ञायुक्त तुम रक्षा करो। विनाशेच्छु शत्रुगण हिंसा न करने पावें ×

४ अग्निदेव, जो हमारे लिये पाप चाहते हैं, स्वयं दान नहीं करते, मानसिक और वाचनिक, दो प्रकारके मंत्रों द्वारा हमारी निन्दा करते हैं, उन्हें एक मानस मंत्र गुरुभार हो और वे दुर्वाक्य द्वारा अपना ही शरीर नष्ट करें।

५ बलके पुत्र अग्नि, जो मनुष्य जान-बूझकर दोनों तरहके मंत्रोंसे मनुष्यकी निन्दा करता है, मैं विनय करता हूं, हे स्तूयमान अग्नि, उसके हाथसे मेरी रक्षा करो। हमें पापमें मत फेंको।

× सायणके मतसे दीर्घतमाकी माता ममताके साथ बृहस्पतिने उस समय रमण किया, जिस समय दीर्घतमा गर्भमें थे। दीर्घतमाने बृहस्पतिको, वर्ण-संकरताके भयसे, मना किया। बृहस्पतिने दीर्घतमाको अन्धा होनेका शाप दिया और अग्निने स्तुति करनेपर दीर्घतमाका अन्धत्व दूर किया।

१४८ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

मथीयदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम्।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षुस्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम्॥ १॥
ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन्।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः॥ २॥
नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः।
प्रसूनयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः॥ ३॥
पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून्॥ ४॥
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन्॥ ५॥



१४९ सूक्त। अग्नि देवता। विराट् छन्द।

महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ। उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित्॥ १॥

---

१ वायुने, काठके भीतर घुसकर, विविधरूपधारी, सारे देवोंके कार्यमें निपुण और देवोंको बुलानेवाले अग्निको बढ़ाया। पहले देवोंने अग्निको, विलक्षण प्रकाशवाले सूर्यकी तरह, मनुष्यों और ऋत्विकोंकी यज्ञ-सिद्धिके लिये, स्थापित किया था।

२ अग्निको सन्तोषदायक हव्य देनेसे ही शत्रु लोग मुझे नष्ट नहीं कर सकेंगे। अग्नि मेरे द्वारा प्रदत्त स्तोत्र आदिके अभिलाषी हैं। जिस समय स्तोता अग्निकी स्तुति करते हैं, उस समय सारे देवता उनके दिये हुए हव्यको ग्रहण करते हैं।

३ याज्ञिक लोग जिन अग्निको नित्य अग्नि-गृहमें ले जाते और स्तुतिके साथ स्थापित करते हैं, उन्हीं अग्निको ऋत्विकोंने, शीघ्रगामी और रथ-निबद्ध अश्वकी तरह, यज्ञके लिये बनाया।

४ विनाशक अग्नि सब प्रकारके वृक्षोंको अपनी शिखाओं या दाँतोंसे नष्ट करके विपिनमें चित्र-विचित्र शोभा प्राप्त करते हैं। इसके अनन्तर जैसे धनुर्द्धारीके पाससे, वेगके साथ, तीर जाता है, वैसे ही प्रतिदिन वायु शिखाके अनुकूल होकर बहते हैं।

५ अरणिके गर्भमें अवस्थित जिन अग्निको शत्रु या अन्य हिंसक दुःख नहीं दे सकते, अन्धा भी जिनका माहात्म्य नहीं नष्ट कर सकता, उन्हींकी, अविचल भक्तिवाले यजमान, विशेष रूपसे तृप्ति दे करके, रक्षा करते हैं

---

१ महाधनके स्वामी अग्नि अभीष्ट प्रदान करते हुए, हमारे देव-पूजनके सामने जा रहे हैं। प्रभुओंके भी प्रभु अग्नि वेदका आश्रय करते हैं। प्रस्तर-हस्त यजमान लोग आगत अग्निकी सेवा करते हैं।

स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः । प्रयः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥
आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्योनार्वा । सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥
अभि द्विजन्मा त्रीरोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् । होता यजिष्ठो अपांसधस्थे ॥४॥
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वादधे वार्याणि श्रवस्या । मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥५॥

१५० सूक्त । अग्नि देवता । उष्णिक् छन्द ।

पुरुत्वा दाश्वान्वोचेरिरग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः । कदाचन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि । प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥

२ मनुष्योंकी तरह, जो अग्नि, द्यावापृथिवीके भी उत्पादक हैं, वह यशःशाली होकर वर्त्तमान हैं एवं उन्हींसे जीव लोग सृष्टिका आस्वादन प्राप्त करते हैं। उन्होंने गर्भाशयमें पैठकर सारे जीवोंकी सृष्टि की है।

३ अग्निदेव मेघावी हैं; वह अन्तरीक्ष-विहारी वायुकी तरह विभिन्न स्थानोंमें आते हैं। उन्होंने दस सुन्दर वेदियोंको प्रदीप्त किया है। नानारूप अग्नि, सूर्यकी तरह, सुशोभित होते हैं।

४ द्विजन्मा अग्नि दीप्यमान लोकत्रयका प्रकाश करते और सारे रञ्जनात्मक संसारका भी प्रकाश करते हैं। वह देवोंके आह्वान-कर्त्ता हैं। जहाँ जल संगृहीत होता है, वहाँ अग्नि वर्त्तमान हैं।

५ जो अग्नि द्विजन्मा हैं, वही होता हैं; वही हव्य-प्राप्तिकी अभिलाषासे सारा वरणीय धन धारण करते हैं। जो मनुष्य अग्निको हव्य देता है, वह उत्तम पुत्र प्राप्त करता है।

---

१ हे अग्निदेव, मैं हव्य दान करता हूँ; इसलिये तुम्हारे पास बहुविध प्रार्थनाएँ करता हूँ। अग्निदेव, मैं तुम्हारा ही सेवक हूँ। अग्निदेव, महान् स्वामीके घरमें जैसे सेवक हैं, वैसे ही तुम्हारे पास मैं हूँ।

२ अग्निदेव, जो धनी मनुष्य तुम्हें स्वामी नहीं मानता वा उत्तमरूप हवनके लिये दक्षिणा नहीं देता एवं जो व्यक्ति देवोंकी स्तुति नहीं करता, उन देवशून्य दोनों व्यक्तियोंका धन नहीं देना।

३ हे मेघावी अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है, वह स्वर्गमें चन्द्रमाकी तरह सबका आनन्ददाता होता है; प्रधानोंमें भी प्रधान होता है। इस लिये हम विशेषतः तुम्हारे ही सेवक होंगे।

१५१ सूक्त । मित्रावरुण देवता । जगती छन्द ।

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रतिप्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥
यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्रमित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥
आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्रहोत्रया शिम्यावीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥
प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥
मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥
आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥

१ गोधनाभिलाषी और स्वाध्याय-सम्पन्न यजमानोंने गोधनकी प्राप्ति और मनुष्योंकी रक्षाके लिये, मित्रकी तरह, प्रिय और यजनीय जिन अग्निको अन्तरीक्ष-भव जलके मध्यमें कर्म द्वारा उत्पन्न किया है, उनके बल और शब्दसे द्यावा-पृथिवी कम्पित होती है ।

२ चूँकि मित्रवत् ऋत्विकोंने तुम्हारे लिये अभीष्टदायी और अपने कर्ममें समर्थ सोमरस धारण किया है, इसलिये पूजकके घर आओ । तुम अभीष्टवर्षी हो । तुम गृहपतिका आह्वान सुनो ।

३ अभीष्ट-वर्षक मित्रावरुण, मनुष्य लोग, महाबलकी प्राप्तिके लिये, द्यावा-पृथिवीसे तुम्हारे प्रशंसनीय जन्मका कीर्त्तन करते हैं; क्योंकि तुम यजमानके यज्ञफलरूप मनोरथको देते हो तथा स्तुति और हव्ययुक्त यज्ञ ग्रहण करते हो ।

४ हे पर्याप्त-बलशाली मित्रावरुण, जो यज्ञभूमि तुम्हारे लिये प्रियतर है, वह उत्तम रूपसे सजायी गयी है । हे सत्यवादी मित्रावरुण, तुम हमारे महान् यज्ञकी प्रशंसा करो । दुग्ध आदिके द्वारा शरीरमें बल-दानके लिये, समर्थ धेनुकी तरह, तुम दोनों विशाल द्युलोकके अग्रभागमें देवोंके आनन्दोत्पादनमें समर्थ हो और विविध स्थानोंमें आरम्भ किये कर्मका उपभोग करते हो ।

५ मित्रावरुण, तुम अपनी महिमासे जिन गायोंको वरणीय प्रदेशमें ले जाते हो, उन्हें कोई नष्ट नहीं कर सकता । वह दूध देती और गोशालामें लौट आती हैं । चौरधारी मनुष्योंकी तरह वह गायें प्रातःकाल और सायंकालको उपरिस्थित सूर्यको ओर देखकर चीत्कार करती हैं ।

६ मित्रावरुण, तुम जिस यज्ञमें यज्ञभूमिको सम्मान-युक्त करते हो, उसमें केशकी तरह अग्निकी शिखा, यज्ञके लिये, तुम्हारी पूजा करती है । तुम निम्न मुखसे वृष्टि प्रदान करो और हमारे कर्मको सम्पन्न करो । तुम्हीं मेधावी यजमानकी मनोहर स्तुतिके स्वामी हो ।

यो वां यज्ञैः शशमानोह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाहतं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छागिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥
युवां यज्ञैः प्रथमागोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥
रेवद्वयो दधाथे रेवदाशा थे नरा मायाभिरित ऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वम्पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥



१५२ सूक्त । मित्रावरुण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवोह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्वऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥
एतच्चनत्वो विचिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदोह प्रथमा ऽअजूर्यन् ॥ २ ॥

---

७ जो मेधावी, होमनिष्पादक और मनोहर यज्ञोंके साधनसे संयुक्त यजमान, यज्ञके लिये, तुम्हारे उद्देश्यसे, स्तुति करते हुए, हव्य प्रदान करता है, उसी बुद्धिशाली यजमानके लिये गमन करो। यज्ञको कामना करो। हमारे ऊपर अनुग्रह करनेकी अभिलाषासे हमारी स्तुति स्वीकार करो।

८ हे सत्यवादी मित्रावरुण, जैसे इन्द्रियका प्रयोग करनेके लिये पहले मनका प्रयोग करना होता है, वैसे ही तुम्हें यजमानलोग अन्य देवोंके पहले गव्य द्वारा पूजन करते हैं। आसक्त चित्तसे यजमानलोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम मनमें दर्प न करके हमारे समृद्ध कार्यमें उपस्थित होओ।

९ मित्रावरुण, तुम धन-विशिष्ट अन्न धारण करो, हमें धनयुक्त अन्न प्रदान करो। वह बहुत है और तुम्हारे बुद्धि-बलसे रक्षित है। दिन वा रात्रिको तुम्हारा देवत्व नहीं मिला है। नदियोंने भी तुम्हारा देवत्व नहीं प्राप्त किया, और न पणियोंने ही। पणियोंने तुम्हारा दान भी नहीं पाया।

---

१ हे स्थूल मित्र और वरुण, तुम तेजोरूप वस्त्र धारण करो। तुम्हारी सृष्टि सुन्दर और दोषशून्य है। तुम सारे असत्यका विनाश करो और सत्यके साथ युक्त होओ।

२ मित्र और वरुण—दोनों ही कर्मका अनुष्ठान करते हैं। दोनों सत्यवादी मंत्रित्व-निपुण, कवियोंके स्तवनीय और शत्रु-हिंसक हैं। वह प्रचण्ड रूपसे, चतुर्गुण अस्त्रोंसे संयुक्त होकर, त्रिगुण अस्त्रोंसे युक्तोंका विनाश करते हैं। उनके प्रभावसे देव-निन्दक पहले ही जीर्ण हो जाते हैं।

अपादेति प्रथमापद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणाचिकेत ।
गर्भोभारं भरत्याचिदस्य ऋतंपिपर्त्य नृतं नितारीत् ॥ ३ ॥
प्रयन्तमित् परिजारङ्कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्मजुजुषु र्युवानः प्रमित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥५॥
आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥६॥
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्यां ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७॥

१५३ सूक्त । मित्रावरुण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अधयद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥१॥

---

३ मित्रावरुण, पद-संयुक्त मनुष्योंके आगे पदशून्या उषा आती हैं—यह जो तुम्हारा ही कर्म है, वह कौन जानता है ? तुम्हारे या दिवारात्रिके पुत्र सूर्य सत्यकी पूर्त्ति और असत्यका विनाश करके सारे संसारका भार वहन करते हैं।

४ हम देखते हैं कि, कन्या या उषाके जार सूर्य क्रमागत चलते ही हैं— कभी भी बैठते नहीं। विस्तृत तेजसे आच्छादित सूर्य मित्रावरुणके प्रियपात्र हैं।

५ आदित्यके न तो अश्व हैं, न लगाम; परन्तु वह शीघ्र-गमन-शील और अतीव-शब्दकर्त्ता हैं। वह क्रमशः ही ऊपर चढ़ते हैं। संसार इन सब अचिन्तनीय और विशाल कर्मोंको मित्र और वरुणके मानकर इनकी स्तुति और सेवा करता है।

६ प्रीति-प्रदायक गायें विशाल कर्म-प्रिय ममताके पुत्रको (मुझे) अपने स्तनसे उत्पन्न दूधसे प्रसन्न करें। वह यज्ञानुष्ठानो जानकर यज्ञमें बचे अन्नको, मुख द्वारा खानेके लिये, माँगें और मित्रावरुणकी सेवा करके यज्ञको अखण्डित रूपसे सम्पूर्ण करें।

७ देव मित्रावरुण, मैं, रक्षाके लिये, नमस्कार और स्तोत्र करते हुए, तुम्हारे हव्य-सेवनके लिये उद्योग करूँगा। हमारा महान् कर्म, युद्धके समय, शत्रुओंको परास्त कर सके। स्वर्गीय वृष्टि हमारा उद्धार करे।

---

१ हे घृतस्रावी और महान् मित्रावरुण, चूँकि हमारे अध्वर्यु लोग अपने कार्यसे तुम्हारा पोषण करते हैं; इसलिये हम समान-प्रीति-युक्त होकर हव्य, घृत और नमस्कार द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं।

प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥२॥
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥
उत वां विक्षुमद्यास्वंधो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥४॥

१५४ सूक्त। विष्णु देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियंति भुवनानि विश्वा ॥२॥

२ हे मित्रावरुण, तुम्हारे उद्देश्यसे केवल यज्ञका प्रस्ताव या यज्ञ ही नहीं है; किन्तु उसके द्वारा मैं तुम्हारा तेज प्राप्त करता हूं। जिस समय सुधीहोता तुम्हारे उद्देश्यसे यज्ञ करनेके लिये आते हैं, उस समय, हे अभीष्टवर्षक, वह सुख प्राप्त करते हैं।

३ मित्रावरुण, रातहव्य नामके राजाके मनुष्य यजमानके होताकी तरह, यज्ञमें सेवा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करनेपर राजाकी धेनु जैसे दुग्धवती हुई थी, वैसे ही, तुम्हारे यज्ञमें जो यजमान हव्य देता है, उसकी गायें भी बहुत दूधवाली होकर आनन्द बढ़ावें।

४ मित्र और वरुण, दिव्य धेनुएँ, अन्न और जल तुम्हारे भक्त यजमानोंके लिये तुम्हें प्रसन्न करें। हमारे यजमानके पूर्व-पालक अग्नि दानशील हों और तुम क्षीरवर्षिणी धेनुका दूध पीओ।

---

१ मैं विष्णुके वीर-कार्यका शीघ्र ही कीर्त्तन करूँगा। उन्होंने वामनावतारमें तीनों लोकोंको मापा था। उन्होंने ऊपरके सत्यलोकको स्तम्भित किया था। उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया था। संसार उनकी बहुत स्तुति करता है।

२ चूं कि विष्णुके तीन पाद-क्षेपमें सारा संसार रहता है; इसलिये भयंकर, हिंस्र, गिरिशायी और वन्य जानवरकी तरह, संसार विष्णुके विक्रमकी प्रशंसा करता है।

प्रविष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित अ उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः॥३॥
यस्य त्रीपूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणाः स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुतद्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४॥
तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बंधुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ॥६॥



१५५ सूक्त । इन्द्र और विष्णु देवता । जगती छन्द ।

प्रवः पान्तमंधसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चता ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्यामहस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥१॥

३ उन्मत्त प्रदेशमें रहनेवाले, अभीष्टवर्षक और सब लोकोंमें प्रशंसित विष्णुको महाबल और स्तोत्र आश्रित करें। इन्होंने अकेले ही एकत्र अवस्थित और अति विस्तीर्ण नियत लोक-त्रयको तीन बारके पद-क्रमण द्वारा मापा था ।

४ (जिन) विष्णुका ह्रास-हीन, अमृतपूर्ण और त्रिसंख्यक पद-क्षेप अन्न द्वारा मनुष्योंको हर्ष देता है, (जिन्होंने) विष्णुने अकेले ही धातु-त्रय, पृथिवी, द्युलोक और समस्त भुवनोंको धारण कर रखा है । ×

५ देवाकांक्षी मनुष्य जिस प्रिय मार्गको प्राप्त करके हृष्ट होते हैं, मैं भी उसीको प्राप्त करूँ । उस पराक्रमी विष्णुके परम पदमें मधुर (अमृत आदिका) क्षरण है। विष्णु वस्तुतः बन्धु हैं ।

६ जिन सब स्थानोंमें उन्मत्त शृङ्गवाली और शीघ्रगामी गायें हैं, उन्हीं सब स्थानोंमें तुम दोनोंके जानेके लिये मैं विष्णुकी प्रार्थना करता हूँ । इन सब स्थानोंमें बहुत लोगोंके स्तवनीय और अभीष्टवर्षक विष्णुका परम पद यथेष्ट स्फूर्ति प्राप्त करता है ।

---

१ अध्वर्युगण, तुम स्तुतिप्रिय और महावीर इन्द्र और विष्णुके लिये पीने योग्य सोमरस तैयार करो । वे दोनों दुर्द्धर्ष और महिमावाले हैं । वे मेघके ऊपर इस तरह भ्रमण करते हैं, मानों सुशिक्षित अश्वके ऊपर भ्रमण करते हैं ।

× धातुत्रयसे कालत्रय अथवा गुण-त्रयका भी ग्रहण किया जा सकता है ।

स्त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपावामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित् कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥२॥
ता ईं वर्धंति मह्यस्य पौंस्यं निमातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधिरोचने दिवः ॥३॥
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीढ्रुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरुक्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४॥
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरादधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥५॥
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यती रवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवं ॥६॥



२ इन्द्र और विष्णु, तुमलोग हृष्ट-पद हो; इसलिये यज्ञमें बचे हुए सोम पीनेवाले यजमान तुम्हारे दीप्तिपूर्ण आगमनकी प्रशंसा करते हैं। तुम लोग मनुष्योंके लिये, शत्रु-विमर्दक अग्निसे प्रशस्त अन्न सदा प्रेरित करते हो।

३ सारी प्रसिद्ध आहुतियाँ इन्द्रके महान् पौरुषको बढ़ाती हैं। इन्द्र, सबकी मातृभूता द्यावापृथिवीके रेत और तेज और उपभोगके लिये, वही शक्ति प्रदान करते हैं। पुत्रका नाम निकृष्ट या निम्न है और पिताका नाम उत्कृष्ट या उच्च है। द्युलोकके दीप्तिमान प्रदेशमें तृतीय नाम या पौत्रका नाम है अथवा वह द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र और विष्णुके अधीन है।

४ हम सबके स्वामी, पालक, शत्रु-रहित और तरुण विष्णुके पौरुषकी स्तुति करते हैं। विष्णुने, प्रशंसनीय लोककी रक्षाके लिये, तीन बार पाद-विक्षेप द्वारा सारे पार्थिव लोकोंकी, विस्तृत रूपसे, प्रदक्षिणा की है।

५ मनुष्यगण, कीर्त्तन करते हुए स्वर्गदर्शी विष्णुके दो पाद-क्षेप प्राप्त करते हैं। उनके तीसरे पाद-क्षेपको मनुष्य नहीं पा सकते; आकाशमें उड़नेवाले पक्षी या मरुत् भी नहीं प्राप्त कर सकते।

६ विष्णुने, गति-विशेष द्वारा, विविध स्वभावशाली कालके ९४ अंशोंको, चक्रकी तरह वृत्ताकार, परिचालित कर रखा है। विष्णु विशाल स्तुतिसे युक्त और स्तुति द्वारा जानने योग्य हैं। वह नित्य, तरुण और अकुमार हैं। वह युद्धमें या आह्वानपर आते हैं।

१५६ सूक्त । विष्णु देवता । जगती छन्द ।

भवामित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उसप्रथाः ।
अधाते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महिब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नामचिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥



२२ अनुवाक । १५७ सूक्त । अश्विद्वय देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रामह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

---

१ विष्णुदेव, मित्रकी तरह तुम हमारे सुखदाता, घृताहुति-भाजन, प्रकृत अन्नवान्, रक्षाशील और पृथुव्यापी बनो। विद्वान् यजमान द्वारा तुम्हारा स्तोत्र बार-बार कहने योग्य है; और, तुम्हारा यज्ञ हविवाले यजमानका आराधनीय है।

२ जो व्यक्ति प्रचीन, मेधावी, नित्य नवीन और स्वयं उत्पन्न या जगन्मादनशीला स्त्रीवाले विष्णुको द्रव्य प्रदान करता है; जो महानुभाव विष्णुकी पूजनीय आदि कथा कहते हैं; वही समीप स्थान पाते हैं।

३ स्तोताओ, प्राचीन यज्ञके गर्भभूत विष्णुको जैसा जानते हो, वैसे ही स्तोत्र आदिके द्वारा उनको प्रसन्न करो। विष्णुका नाम जानकर कीर्त्तन करो। विष्णु, तुम महानुभाव हो, तुम्हारी बुद्धिकी हम उपासना करते हैं।

४ राजा वरुण और अश्विनीकुमार ऋत्विक्युक्त यजमानके यज्ञरूप विष्णुकी सेवा करते हैं। अश्विनीकुमार और विष्णु, मित्र होकर, उत्तम और दिनप्रद बल धारण करते और मेघका आच्छादन हटाते हैं।

५ जो स्वर्गीय और अतिशय शोभनकर्मा विष्णु शोभनकर्मा इन्द्रके साथ मिलकर आते हैं, उन्हीं मेधावी तीनों लोकोंमें पराक्रमशाली विष्णुने आनेवाले यजमानको प्रसन्न किया है और यजमानको यज्ञ-भाग दिया है।

---

१ भूमिके ऊपर अग्नि जागे, सूर्य उगे। विराट् उषा तेज द्वारा सबको आह्लादित करके अन्धकारको दूर करती हैं। हे अश्विनीकुमारो, आनेके लिये अपना रथ तैयार करो। सारे संसारको अपने-अपने कर्मोंमें सविता देवता नियुक्त करें।

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतं ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौ भगः शं न आवक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतं ।
प्रायुस्तारिष्टं नीरपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वंतः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पती रश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥
युवं ह स्थो भिषजाभेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधिधत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥

२ अश्विद्वय, जिस समय तुमलोग वृष्टिदाता रथको तैयार करते हो, उस समय मधुर जल द्वारा हमारा बल बढ़ाओ। हमारे आदमियोंको अन्न द्वारा प्रसन्न करो। हम वीर संग्राममें धन प्राप्त करें।

३ अश्विनीकुमारोंका तीन पहियोंवाला, मधुयुक्त, तेज घोड़ोंसे संयुक्त, प्रशंसित, तीन बन्धनोंवाला धन-पूर्ण और सर्व-सौभाग्य-सम्पन्न रथ हमारे सामने आवे और हमारे द्विपद (पुत्र आदि) तथा चतुष्पद (गौ आदि) को सुख दे।

४ अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हमें बल प्रदान करो। अपनी मधुमती कशा द्वारा हमें प्रसन्न करो। हमारी आयु बढ़ाओ, पाप दूर करो, द्वेषियोंका विनाश करो और सारे कर्मोंमें हमारे साथी बनो।

५ अश्विद्वय, तुम दोनों गमनशील गौओं और सारे संसारके प्राणियोंमें अन्तःस्थित गर्भोंकी रक्षा करो। अभीष्टवर्षकद्वय, अग्नि, जल और वनस्पतियोंको प्रवर्त्तित करो।

६ अश्विद्वय, तुम दोनों औषध-ज्ञान द्वारा वैद्य और रथवाहक अश्वों द्वारा रथवान् हुए हो। तुम्हारा बल बहुत अधिक है; इसलिये हे उग्र अश्विद्वय, तुम्हें जो, आसक्त चित्तसे, हव्य प्रदान करता है, उसकी रक्षा करो।

द्वितीय अध्याय समाप्त

तृतीय अध्याय।



१५८ सूक्त। अश्विद्वय देवता। त्रिष्टप् और अनुष्टप् छन्द।

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥१॥
को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२॥
युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥३॥
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४॥
न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५॥

---

१ हे अभीष्टवर्षक, निवासदाता, पापहन्ता, बहुज्ञानी, स्तुति द्वारा वर्द्धमान और पूजित अश्विनीकुमारो, हमें अभीष्ट फल दो; क्योंकि उचथपुत्र दीर्घतमा तुम्हारी प्रार्थना करता है और तुम प्रशंसनीय रीतिसे आश्रय प्रदान करते हो।

२ निवासप्रद अश्विनीकुमारो, तुम्हारे इस अनुग्रहके सामने कौन तुम्हें हव्य प्रदान कर सकता है? अपने यज्ञीय स्थानपर हमारी स्तुति सुनकर, अन्नके साथ, तुम लोग बहुत धन देना चाहते हो। शरीरपुष्टिकरी, शब्दायमाना और बहुत दूधवाली गायें प्रदान करो। यजमानोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये तुम लोग कृत-संकल्प होकर विचरण करते हो।

३ अश्विनीकुमारो, तुम्हारे उद्धार-कुशल और अश्वयुक्त रथके, तुग्रपुत्र भुज्युके लिये, बल-प्रयोग द्वारा उत्तीर्ण होनेपर वह समुद्रमें स्थित हुआ था। अतएव जैसे युद्ध-जेता वीर द्रुतगामी अश्व द्वारा अपने घरमें आता है, वैसे ही हम तुम्हारे आश्रयके लिये शरणागत हुए हैं।

४ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी स्तुति दीर्घतमाकी रक्षा करे। प्रतिदिन घूमनेवाले अहोरात्र हमें जीर्ण न करें। दस बार प्रज्वलित अग्नि मुझे जला न सके; क्योंकि तुम्हारे आश्रित वह व्यक्ति, पाशबद्ध होकर, पृथिवीपर लेट रहा है।

५ मातृरूप नदी-जल मुझे डुबो न दे। दासों या अनार्योंने इस संकुलिताङ्ग वृद्धको नीचे मुँह कर फेंक दिया है। त्रैतनने इनका सिर काटा था। दासने स्वयं हृदय-देश और अंस-द्वयपर आघात किया था।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६॥

१५६ सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । जगती छन्द ।

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा महीस्तुषे विदथेषु प्रचेतसा।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥१॥
उतमन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महिस्वतवस्तद्धवीमभीः।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२॥
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥३॥
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामीसयोनी मिथुना समोकसा।
नव्य नव्यं तन्तुमातन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवय सुदीतयः ॥४॥

६ ममताके पुत्र दीर्घतमा, दसवें कालके बीतने पर, जीर्ण हुए थे। जो सब लोग कर्म-फल पानेकी इच्छा करते हैं; वे अपने नेता और सारथि हैं।

---

१ यज्ञ-वर्द्धक, महान् और यज्ञकार्यमें चैतन्यकारी द्यावापृथिवीकी, मैं, विशेष रूपसे, स्तुति करता हूँ। यजमान उनके पुत्र-स्वरूप हैं। उनके कर्म सुन्दर हैं। अनुग्रह करते हुए वे यजमानोंको वरणीय धन प्रदान करते हैं।

२ मैंने, आह्वान-मंत्र द्वारा, निर्द्रोह और पितृस्थानीय द्युलोकके उदार और सदय मनको जाना है। मातृ-स्थानीय पृथिवीके मनको भी जाना है। पिता-माता (द्यावापृथिवी) अपनी शक्तिसे, पुत्रोंकी, भली भाँति, रक्षा करते हुए बहुत और विस्तीर्ण अमृत देते हैं। †

३ तुम्हारी सन्तान, सुकर्मा और सुदर्शन प्रजाएँ, तुम्हारे पहलेके अनुग्रहको स्मरण करके, तुम्हें महान् और माता कहकर जानते हैं। पुत्र-स्वरूप स्थावर और जंगम पदार्थ द्यावा-पृथिवीके अतिरिक्त और किसीको नहीं जानते। तुम उनकी रक्षाका अबाध स्थान प्रदान करते हो।

४ द्यावापृथिवी सहोदरा भगिनी और एक स्थान रहनेवाले जोड़े हैं। वे प्रज्ञा-युक्त और चैतन्यकारी हैं। किरणें उनका विभाग करती हैं। अपने कार्यमें निरत और सुप्रकाशित रश्मियाँ द्योतमान अन्तरीक्षके बीच नये-नये सूत फैलाती हैं।

---

† जराजीर्ण और जन्मान्ध दीर्घतमाके विनाशमें असमर्थ होकर अनार्यों या गर्भदासोंने उन्हें आगमें फेंक दिया था दीर्घतमाने स्तुति की और अश्विद्वयने उन्हें बचाया। फिर गर्भदासोंने उन्हें जलमें फेंका और कुमारोंने रक्षा की। अनन्तर त्रैतन नामके दासने उनका मस्तक और सिर छेद दिया। तो भी कुमारोंने उनकी रक्षा की।

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम्॥ ५॥



१६० सूक्त। द्यावापृथिवी देवता। जगती छन्द।

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः॥ १॥
उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत्॥ २॥
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत॥ ३॥
अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कंभनेभिः समानृचे॥ ४॥
ते नो गृणाने महिनी महिश्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम्॥ ५॥

---

५ आज हम सविता देवताकी अनुमतिके अनुसार इस वरणीय धनको चाहते हैं। हमारे ऊपर द्यावापृथिवी, अनुग्रह करके, गृह आदि और शत-शत गौओंसे युक्त धन दें।



१ द्यावापृथिवी संसारके लिये सुखदायिनी, यज्ञवती, जल उत्पन्न करनेके लिये चेष्टा-सम्पन्ना, सुजाता और अपने कार्यमें निपुणा हैं। द्योतमान और शुचि सूर्य द्यावापृथिवीके बीच, अपने कार्यसे, सदा गमन करते हैं।

२ विशाल, विस्तीर्ण और परस्पर-वियुक्त माता-पिता (द्यावापृथिवी) प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। शरीरियोंके मंगलके लिये ही द्यावापृथिवी मानों सचेष्ट हैं; क्योंकि पिता सारे पदार्थोंको रूप प्रदान करते हैं।

३ पिता-माता (द्यावापृथिवी) के पुत्र सूर्य हैं। वह धीर और फलदाता हैं। अपनी बुद्धिसे वह सारे भूतोंको प्रकाशित करते हैं। वह शुक्लवर्ण धेनु (पृथिवी) और सेचन-कार्यमें समर्थ वृष (द्युलोक) को भी प्रकाशित करते हैं। वह द्युलोकसे निर्मल दूध दूहते हैं।

४ वह देवोंमें देवतम और कर्मियोंमें कर्मश्रेष्ठ हैं। उन्होंने सर्व-सुखदाता द्यावापृथिवीको प्रकट किया है और प्राणियोंके सुखके लिये द्यावापृथिवीको विभक्त करते हैं। उन्होंने सुदृढ़ शङ्कु या खूँटेमें इन्हें स्थिर कर रखा है।

५ द्यावापृथिवी, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम महान् हो, हमें प्रभूत अन्न और बल प्रदान करो, जिससे हम सदा पुत्र आदि प्रजाका विस्तार करें। हमारे शरीरमें प्रशंसनीय बलकी वृद्धि कर दो।

१६ सूक्त । ऋभु देवता । जगती छन्द ।

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥
एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥
चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

१ जो हमारे पास आये हैं, वह क्या हमसे जेठ हैं या छोटे ? ये क्या देवोंके दूत-कार्यके लिये आये हैं ? इन्हें क्या कहना होगा ? इन्हें कैसे पहचानेंगे ? भ्राता अग्नि, हम चमसकी निन्दा नहीं करेंगे; क्योंकि वह महाकुलमें उत्पन्न है। उस काष्ठमय चमसकी स्मृतिको हम व्याख्या करेंगे *

२ (अग्निने कहा)—सुधन्वाके पुत्र, एक चमसको चार बनाओ—देवोंने यह बात कहकर मुझे भेजा है। मैं तुम्हें कहने आया हूं। तुम लोग यह कार्य कर सकते हो और ऐसा करनेपर तुम लोग देवोंके साथ यज्ञभागी बनोगे।

३ अग्निदेव, देवोंने अपने दूत अग्निके प्रति जो-जो कार्य बताये हैं, उनमेंसे अश्व बनाना होगा, रथका निर्माण करना होगा, गौका सृजन करना होगा अथवा माता-पिताको फिर तरुण करना होगा ? भ्रातृवर, तुम्हारे उन सब कार्योंको करके अन्तको, कर्मफलके लिये, तुम्हारे पास आवेंगे।

४ ऋभुगण, वह कार्य करके तुमने पूछा कि, जो दूत हमारे पास आया था, वह कहाँ गया ? जिस समय त्वष्टा या ब्रह्माने चमसके चार टुकड़े देखे, उसी समय वह स्त्रियोंमें छिप गया।

५ जिस समय त्वष्टाने कहा कि, जिन्होंने देवोंके पानपात्र चमसका अपमान किया है, उनका वध करना होगा, उस समयसे ऋभुगणने, सोम तैयार होनेपर, दूसरा नाम ग्रहण किया और कन्या या उनकी माताने उसी नामसे पुकारकर उन्हें प्रसन्न किया।

* सुधन्वाके तीन पुत्रोंने देवत्वप्राप्त किया था। एक बार वे सोम पी रहे थे कि, देवोंने वहाँ अग्निको भेज दिया। अग्नि उन तीनोंके समान रूपोंको देखकर स्वयं भी वैसा ही रूप धारण करके सोम पीने लगे। अपने समान ही एक नये रूपको देखकर इस मंत्रमें ऋभु लोग पूछ रहे हैं।

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ता कृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥७॥
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वाघा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥८॥
आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥९॥
श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आनिम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१०॥
उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥११॥

६ इन्द्रने अपने अश्वोंको सजाया, अश्विनीकुमारोंने रथ तैयार किया, बृहस्पतिने विश्वरूपा गौको स्वीकार किया। इसलिये हे ऋभु, विभु और वाज, तुम देवोंके पास गमन करो। हे पुण्यकर्त्ता लोग, तुम यज्ञ-भाग ग्रहण करो।

७ हे सुधन्वाके पुत्रो, तुमने आश्चर्यजनक कौशलसे मृत धेनुके शरीरसे चमड़ा लेकर उससे धेनु उत्पन्न की, जो पिता-माता बूढ़े थे, उन्हें फिर युवा किया, एक अश्वसे अन्य अश्व उत्पन्न किया; इस लिये रथ तैयार करके देवोंके सामने जाओ।

८ देवो, तुमने कहा था, "हे सुधन्वाके पुत्रो, तुम लोग यही सोमरस पान करो अथवा मुञ्ज-तृणसे शोधित सोमरस पान करो। यदि इन दोनोंमें तुम्हारी इच्छा न हो, तो तीसरे (सायं) सवनमें सोमरस पीकर अत्यन्त तृप्त हो जाओ।"

९ ऋभुओंमेंसे एकने कहा, "जल ही सबसे श्रेष्ठ है", एकने अग्निको श्रेष्ठ बताया और तीसरेने पृथ्वीको। सच्ची बात कहकर ही उन्होंने चारो चमसोंको तैयार किया।

१० एक लोहितवर्ण जल या रक्त, बाहर, भूमिपर रखते हैं, दूसरे छुरेसे कटे मांसको रखते हैं, तीसरे मांससे मल आदि अलग करते हैं। किस प्रकार पिता-माता (यजमान-दम्पती) पुत्रों (ऋभुओं) का उपकार कर सकते हैं?

११ प्रभूत दीप्तिशाली ऋभुओ, तुम नेता हो। प्राणियोंके भलेके लिये तुम ऊँचे स्थानपर व्रीहि, यव आदि तृण उत्पन्न करते और सत्कर्म करनेकी इच्छासे नीचेके प्रदेशमें जल उत्पन्न करते हो। सूर्यमण्डलमें अबतक तुम निहित थे; इस समय वैसा नहीं करना। अपना कार्य सिद्ध करो।

संमील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२॥
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्याव्यख्यत ॥१३॥
दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥



१६२ सूक्त । अश्व देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णः प्रियमप्येति पाथः ॥२॥
एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोलाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥

---

१२ ऋभुओ, जिस समय तुम जलधरमें भूतोंको मिलाकर चारो ओर जाते हो, उस समय संसारके पिता-माता कहाँ रहते हैं? जो लोग तुम्हारा हाथ पकड़ कर रोकते हैं, उन्हें नीचा दिखाओ। जो वचन द्वारा तुम्हें रोकता है, उसकी भर्त्सना करो।

१३ ऋभुओ, तुम सूर्य-मण्डलमें सोकर सूर्यसे पूछते हो कि, "हे सूर्य, किसने हमारे कर्मको जगाया।" सूर्य कहते हैं, "वायुने तुम्हें जगाया।" वर्ष बीत चला, इस समय फिर तुम लोग संसारको प्रकाशित करो।

१४ बलके नप्ता ऋभुओ, तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे मरुत् द्युलोकसे आ रहे हैं; अग्नि, पृथ्वीसे, आते हैं; वायु, आकाशसे, आते हैं; और, वरुण, समुद्र-जलके साथ, आते हैं।

---

१ चूँकि हम यज्ञमें देवजात और द्रुतगति अश्वके वीर कर्मका कीर्त्तन करते हैं; इसलिये मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा और वायु हमारी निन्दा न करें।

२ सुन्दर स्वर्णाभरणसे विभूषित अश्वके सामने ऋत्विक् लोग, उत्सर्गके लिये, छाग पकड़कर ले आते हैं। विविध वर्णके छाग, शब्द करते हुए, सामने जाते हैं। वह इन्द्र और पूषाका प्रिय अन्न हो।

३ सब देवोंके लिये उपयुक्त छाग पूषाके ही अंशमें पड़ता है। उसे शीघ्रगामी अश्वके साथ सामने लाया जाता है। अतएव त्वष्टा देवताके सुन्दर भोजनके लिये, अश्वके साथ, इस छागसे सुस्वाद पुरोडाश तैयार किया जाय।

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः॥४॥
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उतशंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरं कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्वं ॥५॥
यूपव्रस्का उतये यूपवाहाश्चषालं ये अश्व यूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं सं भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६॥
उप प्रागात्सुमन्मेधायि मन्म देवा नामाशा उपवीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७॥
यद्वाजिनो दामसन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वाघास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ॥९॥
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृतातच्छमितारः कृण्वंतूत मेघं श्रृतपाकं पचन्तु ॥१०॥

४ जब ऋत्विक् लोग देवोंके लिये प्राप्त करने योग्य अश्वको, समय-समयपर, तीन बार अग्निके पास ले जाते हैं, तब पूषाके प्रथम भागका छाग देवोंके यज्ञकी बातका प्रचार करके आगे जाता है।

५ होता (देवोंका बुलानेवाले), अध्वर्यु (यज्ञ-नेता), आवया (हव्यदाता), अग्निसिद्ध (अग्नि-प्रज्वलन-कर्त्ता), ग्रावग्राभ (प्रस्तरद्वारा सोमरस निकालनेवाले), शंस्ता (नियमानुसार कर्मका अनुष्ठान करनेवाले) और ब्रह्मा (सब यज्ञ-कार्योंके प्रधान सम्पादक) प्रसिद्ध, अलंकृत और सुन्दर यज्ञ द्वारा नदियोंको पूर्ण करें।

६ जो यूपके योग्य वृक्ष काटते हैं, जो यूप वृक्ष ढोते हैं, जो अश्वको बांधनेके यूपके लिये काष्ठ-मण्डप आदि तैयार करते हैं, जो अश्वके लिये पाक-पात्रका संग्रह करते हैं, हमारा संकल्प भी उन्हींका हो।

७ हमारा मनोरथ स्वयं सिद्ध हो। मनोहर-पृष्ठ-विशिष्ट अश्व, देवोंकी आशा-पूर्तिके लिये, आवे। देवोंको पुष्टिके लिये हम उसे अच्छी तरह बाँधेंगे। मेधावी ऋत्विक् लोग आनन्दित हों।

८ जिस रस्सीसे घोड़ेकी गर्दन बांधी जाती है, जिससे उसके पैर बाँधे जाते हैं, जिस रस्सीसे उसका सिर बाँधा जाता है, वह सब रस्सियाँ और अश्वके मुखमें डाली जानेवाली घासें देवोंके पास आवें।

९ अश्वका जो कच्चा ही मांस मक्खी खाती है, काटने या साफ करनेके समय हथियारमें जो लग जाता है और छेदकके हाथों तथा नखोंमें जो लग जाता है, वह सब देवोंके पास जाय।

१० उदरका जो अजीर्ण अंश बाहर हो जाता है और अपक्व मांसका जो लेशमात्र रहता है, उसे छेदक निर्दोष करे और पवित्र मांस, देवोंके लिये, उपयोगी करके पकावे।

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११॥
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥
यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥१३॥
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ॥
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥
यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥
यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

---

११ अश्व, आगमें पकाते समय तुम्हारे शरीरसे जो रस निकलता और जो अंश शूलमें आबद्ध रहता है, वह मट्टीमें गिरकर तिनकोंमें मिल न जाय । देवता लोग लालायित हुए हैं, उन्हें सारा हवि प्रदान किया जाय ।

१२ जो लोग चारो ओरसे अश्वका पकना देखते हैं, जो कहते हैं कि, गन्ध मनोहर, है, देवोंको दो; तथा, जो मांस-भिक्षाकी अपेक्षा करते हैं, उनका संकल्प हमारा ही हो ।

१३ मांस-पाचनकी परीक्षाके लिये जो काष्ठभाण्ड लगाया जाता है, जिन पात्रोंमें रस रक्षित होता है, जिन आच्छादनोंसे गर्मी रहती है, जिस वेतस-शाखासे अश्वका अवयव पहले चिन्हित किया जाता है और जिस छुरिकासे, चिह्नानुसार, अवयव काटे जाते हैं, सो सब अश्वका मांस प्रस्तुत करते हैं ।

१४ जहाँ अश्व गया था, जहाँ बैठा था, जहाँ लेटा था, जिससे उसके पैर बाँधे गये थे, जो उसने पिया था तथा जो घास उसने खायी थी, सो सब देवोंके पास जाय ।

१५ अश्वगण, धूमगन्ध अग्नि तुमसे शब्द न करा सकें, अतीव अग्नि-संयोगसे प्रशस्त सुगन्धि भाँड़ कम्पित न हो । यज्ञके लिये अभिप्रेत और हवनके लिये लाया हुआ, सम्मुखमें प्रवृत्त और वषट्कार द्वारा शोभित अश्व देवता ग्रहण करें ।

१६ जिस आच्छादन योग्य वस्त्रसे अश्वको आच्छादित किया जाता है, उसको जो सोनेके गहने दिये जाते हैं, जिससे उसका सिर और पैर बाँधे जाते हैं, सो सब देवोंके लिये प्रिय है । ऋत्विक् लोग देवोंको यह सब प्रदान करते हैं ।

१७ अश्व जोरसे नासाध्वनि करते हुए गमन करनेपर चाबुकके आघात अथवा बालकके आघातसे जो व्यथा उत्पन्न हुई थी, सो सब व्यथाको, मैं, उसी प्रकार मन्त्र द्वारा आहुतिमें देता हूँ, जैसे स्रुक् द्वारा हव्य दिया जाता है ।

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥ १८ ॥
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथा ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥
मा त्वा तपत्प्रिय आत्माऽपियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

१६३ सूक्त। अश्व देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥

१८ देवोंके बन्धु-स्वरूप अश्वकी जो बगलकी टेढ़ी चौंतीस हड्डियाँ हैं, उन्हें काटनेके लिये खड्ग जाता है। हे अश्वच्छेदक, ऐसा करना, जिससे अंग विच्छिन्न न हो जायँ। शब्द करके और देख-देखकर एक-एक हिस्सा काटो।

१९ ऋतु ही तेजःपुञ्ज अश्वका एक मात्र विकाशक हैं। उन्हें दो, दिन-रात, धारण करते हैं। अश्व, तुम्हारे शरीरके जिन अवयवोंको, यथासमय, काटता हूँ, उनका पिण्ड बनाकर अग्निको प्रदान करता हूँ।

२० अश्व, तुम जिस समय देवोंके पास जाते हो, उस समय तुम्हारी प्रिय देह तुम्हें क्लेश न दे। तुम्हारे शरीरमें खड्ग अधिक क्षत न करे। मांस-लोलुप और अनभिज्ञ छेदक, अस्त्र द्वारा, विभिन्न अंगोंको छोड़कर तुम्हारा गात्र वृथा न काटे।

२१ अश्व, तुम न तो मरते हो और न संसार तुम्हारी हिंसा करता है। तुम उत्तम मार्गसे, देवोंके पास, जाते हो। इन्द्रके हरि नामके दोनो घोड़े और मरुतोंके पृषती नामके दोनो वाहन तुम्हारे रथमें जोते जायँगे। अश्विनी-कुमारोंके वाहन रासभके बदले, तुम्हारे रथमें, कोई शीघ्रगामी अश्व जोता जायगा।

२२ यह अश्व, हमें, गौ और अश्वसे युक्त तथा संसार-रक्षक धन प्रदान करे; हमें पुत्र प्रदान करे। तेजस्वी अश्व, हमें पापसे बचाओ। हविर्भूत अश्व, हमें शारीरिक बल प्रदान करो।

---

१ अश्व, तुम्हारा महान् जन्म सबकी स्तुतिके योग्य है। अन्तरीक्ष या जलसे प्रथम उत्पन्न होकर, यजमानके अनुग्रहके लिये, महान् शब्द करते हो। श्येन पक्षीके पक्षकी तरह तुम्हें पक्ष हैं तथा हरिणके पदकी तरह तुम्हें पैर हैं।

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥
असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिविबन्धनानि ॥ ३ ॥
त्रीणित आहुर्दिविबन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रात आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥
आत्मानं ते मनसाराज्जानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः।
यदा ते मर्तो अनुभोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥
अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोनु भगः कनीनाम्।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥

---

२ यम या अग्निने अश्व दिया था, त्रित या वायुने इसे रथमें जोड़ा। रथपर पहले इन्द्र चढ़े और गन्धर्वों या सोमोंने इसकी लगामको धारण किया। वसुओंने सूर्यसे अश्वको बनाया।

३ अश्व, तुम यम, आदित्य और गोपनीय व्रतधारी त्रित हो। तुम सोमके साथ मिलित हो। पुरोहित लोग कहते हैं कि, द्युलोकमें तुम्हारे तीन बन्धन-स्थान हैं।

४ अश्व, द्युलोकमें तुम्हारे तीन बन्धन (वसुगण, सूर्य और द्युस्थान) हैं। जल या पृथिवीमें तुम्हारे तीन बन्धन (अन्न, स्थान और बीज) हैं। अन्तरीक्षमें तुम्हारे तीन बन्धन (मेघ, विद्युत् और स्तनित) हैं। तुम्हीं वरुण हो। पुरातत्त्वविदोंने जिन सब स्थानोंमें तुम्हारे परम जन्मका निर्देश किया है, वह तुम हमें बताते हो।

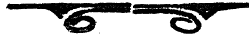
५ अश्व, मैंने देखा है, ये सब स्थान तुम्हारे अंग-शोधक हैं। जिस समय तुम यज्ञांशका भोजन करते हो, उस समय तुम्हारा पद-चिह्न यहाँ पड़ता है। तुम्हारी जो फलप्रद वल्गा (लगाम) सत्यभूत यज्ञकी रक्षा करती है, उसे भी यहाँ देखा है।

६ अश्व, दूरसे ही, मनके द्वारा, मैंने तुम्हारे शरीरको पहचाना है। तुम नीचेसे, अन्तरीक्ष-मार्गमें, सूर्यमें जाते हो। मैंने देखा है, तुम्हारा सिर धूलि-शून्य, सुलकर, मार्गसे शीघ्र गतिसे, क्रमशः ऊपर उठता है।

७ मैं देखता हूँ, तुम्हारा उत्कृष्ट रूप पृथिवीपर, चारों ओर, अन्नके लिये आता है। अश्व, जिस समय मनुष्य भोग लेकर तुम्हारे पास जाता है, उस समय तुम ग्रास-योग्य तृण आदिका भक्षण करते हो।

८ अश्व, तुम्हारे पीछे-पीछे अश्व जाता है, मनुष्य तुम्हारे पीछे जाता है, स्त्रियोंका सौभाग्य तुम्हारे पीछे जाता है। दूसरे अश्वोंने तुम्हारा अनुगमन करके मैत्री प्राप्त की है। देव लोग तुम्हारे वीर-कर्मकी प्रशंसा करते हैं।

हिरण्यशृङ्गो यो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत्।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥
तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान्।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥
उपप्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात् कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥
उपप्रागात् परमं यत् सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १४ ॥



१६४ सूक्त। १ से ४१ तकके विश्वदेवगण, ४२ के प्रथमार्द्धके वाक् और द्वितीयार्द्धके अप्, ४३के प्रथमार्द्धके शकरूप और द्वितीयार्द्धके सोम, ४४के अग्नि, सूर्य और वायु, ४५के वाक्, ४६से ४७ तकके सूर्य, ४८ के संवत्सररूप काल, ४९ के सरस्वती, ५० के साध्याय, ५१ के अग्नि और ५२ के सूर्य देवता हैं।

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रा पश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

---

९ अश्वका सिर सोनेका है और उसके पैर लोहेके तथा वेगशाली हैं। वेगके सम्बन्धमें तो इन्द्र भी निकृष्ट हैं। देवगण अश्वके हव्य-भक्षणके लिये आते हैं। पहले इन्द्र ही यहाँ बैठे हैं।

१० जिस समय अश्व स्वर्गीय पथसे जाता है, उस समय वह निविड़-जघन-विशिष्ट होता है। पतली कमरवाले, विक्रमशाली और स्वर्गीय अश्वगण, हलके-दल, हंसोंकी तरह, पंक्ति-बद्ध होकर, उसके साथ जाते हैं।

११ अश्व, तुम्हारा शरीर शीघ्रगामी है, तुम्हारा चित्त भी, वायुकी तरह, शीघ्रगन्ता है। तुम्हारे केसर नाना स्थानोंमें, नाना भावोंमें, अवस्थित तथा जंगलमें, विविध स्थानोंमें, भ्रमण करते हैं।

१२ वह द्रुतगामी अश्व, आसक्त चित्तसे, देवोंका ध्यान करते हुए, वध-स्थानमें जाता है। उसके मित्र छागको उसके आगे-आगे ले जाया जाता है। कवि स्तोता पीछे-पीछे जाते हैं।

१३ द्रुतगामी अश्व, पिता और माताको प्राप्त करनेके लिये, उत्कृष्ट और एक निवास-योग्य स्थानपर गमन करता है। अश्व, आज खूब प्रसन्न होकर देवोंके पास जाओ, ताकि हव्यदाता वरणीय धन प्राप्त करे।

---

१ सबके सेवनीय और जगत्पालक होता या सूर्यके मध्यम भ्राता या वायु सर्वत्र व्याप्त हैं। उनके तीसरे भ्राता या अग्नि आहुति धारण करते हैं। भाइयोंके बीच सात किरणोंसे युक्त विश्पतिको देखा गया।

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वाभुवनाधितस्थुः ॥ २ ॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभिसन्नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्तनाम ॥ ३ ॥
को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुपगात् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥
पाकः पृच्छामिम नसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेधि सप्ततन्तून्वितत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वियस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा संहि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

---

२ सूर्यके एकचक्र रथमें सात घोड़े जोते गये हैं। एक ही अश्व, सात नामोंसे, रथ ढोता है। चक्रकी तीन नाभियाँ हैं। वे न तो कभी शिथिल होतीं, न जीर्ण होतीं। सारा संसार उनका आश्रय करता है।

३ जो सात, सप्त-चक्र रथका, अधिष्ठान करते हैं, वे ही सात अश्व हैं; वे ही इस रथको ढोते हैं। सात भगिनियाँ (किरणें) इस रथके सामने आती हैं। इसमें सात गायें (किरणें या स्वर) हैं।

४ प्रथम उत्पन्नको किसने देखा था—जिस समय अस्थि-रहिता (प्रकृति) ने अस्थि-युक्त (संसार) को धारण किया ? पृथिवीसे प्राण और रक्त उत्पन्न हुए; परन्तु आत्मा कहाँसे उत्पन्न हुई ? विद्वान्के पास कौन इस विषयकी जिज्ञासा करने जायगा ?

५ मैं अनाड़ी हूँ; कुछ समझमें न आनेसे पूछ रहा हूँ। ये सब संदिग्ध बातें, देवोंके पास भी, रहस्यमयी हैं। एक वर्षके गोवत्स या सूर्यके वेष्टनके लिये मेधावियोंने जो सात सूत्र या सात सोम-यज्ञ प्रस्तुत किये, वह क्या है ?

६ मैं अज्ञानी हूँ। कुछ न जानकर ही ज्ञानियोंके पास जाननेकी इच्छासे पूछता हूँ। जिन्होंने इन छः लोकोंको रोक रखा है, जो जन्म-रहित रूपसे निवास करते हैं, वह क्या एक हैं ?

७ गमनशील और सुन्दर आदित्यका स्वरूप अतीव निगूढ़ है। वह सबके मस्तक-स्वरूप हैं। उनकी किरणें दूध दुहतीं तथा अति विशाल तेजसे युक्त होकर उसी प्रकार पुनः जलपान करती हैं। जो यह सब कथाएँ जानते हैं, वे कहें।

८ माता (पृथिवी), वृष्टिके लिये, पिता या द्युलोकमें स्थित आदित्यको अनुष्ठान द्वारा, पूजती हैं। इसके पहले ही पिता, भीतर-ही-भीतर, उसके साथ संगत हुए थे। गर्भ-धारणकी इच्छासे माता गर्भरससे विविद्ध हुई थी। अनेक प्रकारके शस्य उत्पन्न करनेके लिये आपसमें बातचीत भी की थी।

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥
तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥
द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥
सनेमिचक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

---

९ पिता (द्युलोक) अभिलाष-पूरणमें समर्थ पृथिवीका भार वहन करनेमें नियुक्त थे। गर्भभूत जलराशि मेघमालाके बीच थी। वत्स या वृष्टिजलने शब्द किया और तीन (मेघ, वायु और किरण) के योगसे विश्व-रूपिणी गौ (पृथिवी) हुई अर्थात् पृथिवी शस्याच्छादिता हुई।

१० एक मात्र आदित्य तीन माता (पृथिवी, अन्तरीक्ष और आकाश) और तीन पिता (अग्नि, वायु और सूर्य) को धारण करते हुए ऊपर अवस्थित हैं, उन्हें थकावट नहीं आती। द्युलोकको पीठपर देवता लोग सूर्यके सम्बन्धमें बातचीत करते हैं। इस बातचीतको कोई नहीं जानता; परन्तु उसमें सबकी बातें रहती हैं।

११ सत्यात्मक आदित्यका, बारह अरों खूँटों (राशियों) से युक्त, चक्र स्वर्गके चारो ओर बार-बार भ्रमण करता और कभी भी पुराना नहीं होता है। अग्नि, इस चक्रमें पुत्र-स्वरूप सात सौ बीस (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं।

१२ पाँच पैरों (ऋतुओं) और बारह रूपों (महीनों) से संयुक्त आदित्य जिस समय द्युलोकके पूर्वार्द्धमें रहते हैं, उस समय उन्हें कोई-कोई पुरीषी या जलदाता कहते हैं। दूसरे कोई-कोई छ अरों (ऋतुओं) और सात चक्रों (रश्मियों) से संयुक्त रथपर द्योतमान सूर्यको 'अर्पित' कहते हैं—जब कि, वह द्युलोकके दूसरे आधेमें रहते हैं। *

१३ नियत परिवर्त्तमान पाँच ऋतुओं या अरों (खूँटों) से युक्त चक्रपर सारे भुवन विलीन हैं। उसका अक्ष प्रभूत भार-वहनमें नहीं थकता। उसकी नाभि सदा समान रहती है—कभी शीर्ण नहीं होती।

१४ समान नेमिसे संयुक्त और अजीर्ण काल-चक्र निरन्तर घूम रहा है। एक साथ दस (पंच लोक-पाल और निषाद, ब्राह्मण आदि पंच वर्ण) ऊपर मिलकर पृथिवीको धारण करते हैं। सूर्यका नेत्र-रूप मण्डल, वृष्टिजलसे, छिप गया—सारे प्राणी और जगत् भी उसमें विलीन हुए।

---

* यद्यपि ऋतु छ हैं; परन्तु हेमन्त और शिशिरको एक करके, उन दिनों, "पञ्चर्तु" भी कहनेकी परिपाटी थी। किसी-किसीके मतसे यहाँ 'पूर्वार्द्ध' और 'दूसरे आधे'का मतलब सूर्यके दक्षिणायन और उत्तरायणसे है।

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥
स्त्रियः सतीस्ताँ उमे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥ १६ ॥
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः ॥१७॥
अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधिप्रजातम् ॥ १८ ॥
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥

१५ आदित्यकी सहजात ऋतुओंमें सातवीं (अधिक मासवाली) ऋतु अकेली है। अन्य छ ऋतुएँ जोड़ी हैं, गमनशील हैं और देवोंसे उत्पन्न हैं। ये ऋतुएँ सबकी इष्ट, स्थान-भेदसे पृथक्-पृथक् स्थापित और रूप-भेदसे विविध आकृतियोंसे संयुक्त हैं। वे अपने अधिष्ठाताके लिये बारबार घूमती हैं।

१६ किरणें स्त्री होकर भी पुरुष हैं। जिन्हें आँखें हैं, वे ही यह देख सकते हैं; जिनकी दृष्टि मोटी है, वे नहीं। जो पुत्र मेधावी हैं, वही यह समझ सकते हैं। जो यह सब बातें समझ सकते हैं; वे ही पिताके पिता हैं। ‡

१७ वत्स, यजमान या अग्निका पिछला भाग सामनेके पैरसे और सम्मुख-भाग पीछेके पैरसे धारण करते हुए गौ, आदित्य-रश्मि या आहुति ऊपरकी ओर जाती है। वह कहाँ जाती है? किसके लिये आधे रास्तेसे लौट आवे? कहाँ प्रसव करती है? दलके बीच प्रसव नहीं करती।

१८ जो अधःस्थित (अग्नि) लोक-पालककी ऊर्द्ध्वस्थित (सूर्य) के साथ और ऊर्द्ध्वस्थितकी अधःस्थितके साथ उपासना करते हैं, वे ही मेधावीकी तरह आचरण करते हैं। किसने यह सब बातें कही हैं? कहाँसे यह अलौकिक मन उत्पन्न हुआ है?

१९ जिन्हें विद्वान् लोग अधोमुख कहते हैं, उन्हींको ऊर्द्ध्वमुख भी कहते हैं और जिन्हें ऊर्द्ध्वमुख कहते हैं, उन्हें अधोमुख भी कहते हैं। सोम, तुमने और इन्द्रने जो मण्डलद्वय बनाया है, वह युग-युक्त अश्व आदिकी तरह विश्वका भार वहन करता है। ×

२० दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा), मित्रताके साथ, एक वृक्ष या शरीरमें रहते हैं। इनमें एक (जीवात्मा) स्वादु पिप्पलका भक्षण करता और दूसरा (परमात्मा) कुछ भी भक्षण (भोग) नहीं करता, केवल द्रष्टा है।

‡ सूर्य-किरणें, उदक-रूप गर्भ धारण करनेसे, स्त्री और वृष्टि-जलका सेचन करनेसे पुरुष, कहाती हैं। वृष्टि-दानके कारण किरणें संसारके पिता हैं और सूर्य किरणोंके पिता हैं।

× दोनों मण्डल सूर्य और चन्द्र हैं। इनकी किरणें ऊर्द्ध्वमुख और अधोमुख होती हैं।

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः समाधीरः पाकमत्राविवेश ॥ २१ ॥
यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥
यद्गायत्रे अधिगायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ २३ ॥
गायत्रेण प्रतिमिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्तवाणीः ॥ २४ ॥
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्ररिरिचे महित्वा ॥ २५ ॥
उपह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोभीद्धो घर्मस्तदुषु प्रवोचम ॥ २६ ॥

---

२१ जिनमें (सूर्यरूप मण्डलमें) सुन्दरगति रश्मियाँ, कर्त्तव्य-ज्ञानसे, अमृतका अंश लेकर सदा जाती हैं और जो धीर भावसे, सारे भुवनोंकी रक्षा करते हैं, मेरी अपरिपक्व बुद्धि होनेपर भी मुझे, उन्होंने, स्थापित किया । ❀

२२ जिस (आदित्य)-वृक्षपर जलग्राही किरणें, रातको, बैठतीं और संसारके ऊपर, प्रातःकालमें, दीप्ति प्रकट करती हैं, विद्वान् लोग उनका फल प्रापणीय बताते हैं । जो व्यक्ति पिता (सूर्य या परमात्मा) को नहीं जानता, वह इस फलको नहीं प्राप्त करता ।

२३ जो पृथिवीपर अग्निका स्थान जानते हैं, जो जानते हैं कि, देवोंने, अन्तरीक्षसे, वायुको उत्पन्न किया है तथा जो ऊर्ध्ववर्त्तन प्रदेशमें आदित्यका स्थान जानते हैं, वे अमृतत्व पाते हैं ।

२४ उन्होंने गायत्री छन्द द्वारा पूजन-मंत्रकी सृष्टि की, अर्चना-मंत्र द्वारा सामको बनाया, त्रिष्टुप् द्वारा द्वृच-तृच-रूप वाकका निर्माण किया, द्विपाद और चतुष्पाद वचनके द्वारा अनुवाक-रचना की तथा अक्षर-योजना द्वारा सातों छन्दोंकी रचना की ।

२५ जगती छन्द द्वारा उन्होंने द्युलोकमें वृष्टिको स्तम्भित कर रखा है, रथन्तर साम या सूर्य-सम्बन्धीय मंत्रमें सूर्यको देखा है । पण्डित लोग कहते हैं कि, गायत्रीके तीन चरण हैं; इसलिये गायत्री, माहात्म्य और ओजस्वितामें, अन्य सबको लाँघ जाती है ।

२६ मैं इस दुग्धवती गौको बुलाता हूं । दूध दूहनेमें निपुण व्यक्ति उसे दूहता है । हमारे सोमके श्रेष्ठ भागको सविता ग्रहण करें; क्योंकि उससे उनका तेज प्रवृद्ध होगा । इसलिये मैं उन्हें बुलाता हूँ ❁

❀ मतलब यह कि, आदित्यने मुझे अपने मण्डलमें स्थान दिया ।

❁ सायणने इस ऋचाका एक अन्य प्रकारका अर्थ किया है, जिसमें धेनुका अर्थ मेघ और गोधुकका वायु या आदित्य कहा गया है ।

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सावर्धतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्द्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ।
सृक्वाणं घर्ममभिवावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधिश्रिता।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश ॥ ३२ ॥
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

२७ धनशाली धेनु, वत्सके लिये, मन ही मन, व्यग्र होकर "हम्बा" करती हुई, आती है। यह अश्विनीकुमारोंके लिये दूध दे और महासौभाग्य-लाभके लिये प्रवृद्ध हो।

२८ धेनु, नेत्र बन्द किये बछड़ेके लिये, "हम्बा" शब्द करती है। बछड़ेका मस्तक चाटनेके लिये "हम्बा" रव करती है। बछड़ेके ओठोंपर गाज या फेन देखकर धेनु "हम्बा" रव करती तथा यथेष्ट दूध पिलाकर उसे परिपुष्ट करती है।

२९ बछड़ा, धेनुके चारो ओर घूमकर, अव्यक्त शब्द करता है और गोचर-भूमिपर गाय "हम्बा" करती है। धेनु, पशु-ज्ञान द्वारा, मनुष्योंको लज्जित करती है और द्योतमान होकर अपना रूप प्रकट करती है।

३० चञ्चल, श्वास-प्रश्वास शील और अपनी कार्य-सिद्धिमें व्यग्र जीव सोकर घरमें, अविचल भावसे, अवस्थित हुआ। मर्त्यके साथ उत्पन्न मर्त्यका अमर जीव स्वधा भक्षण करता हुआ सदा विहरण करता है।

३१ मैं इन रक्षक और प्रसन्न आदित्यको अन्तरीक्षमें आते-जाते देखता हूँ। सर्वत्रगामिनी और सहगामिनी किरण-मालासे आच्छादित होकर भुवनोंमें बार-बार आते-जाते हैं।

३२ जिसने गर्भ किया है, वह भी उसका तत्त्व नहीं जानता। जिसने उसको देखा है, वह उसके पास भी लुप्त है। मातृ-योनिके बीच वेष्टित होकर वह गर्भ बहुत सन्तानवान् होता और पाप-लिप्त होता है।

३३ स्वर्ग मेरा पालक और जनक है, पृथिवीकी नाभि मेरा मित्र है और यह विस्तृत पृथिवी मेरी माता है। उच्च पात्र-द्वय (आकाश और पृथिवी) के बीच योनि (अन्तरीक्ष) है। वहाँ पिता (द्यु) दुःस्थिता (पृथिवी) का गर्भ उत्पादन करता है।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिभवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८॥
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥३९॥

---

३४ मैं तुमसे पूछता हूँ, पृथिवीका अन्त कहाँ है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, संसारकी नाभि (उत्पत्ति-स्थान) कहाँ है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, सेचन-समर्थ अश्वका रेत क्या है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, समस्त वाक्योंका परम स्थान कहाँ है ?

३५ यह वेद ही पृथिवीका अन्त है, यह यज्ञ ही संसारकी नाभि है, यह सोम ही सेचन-समर्थ अश्वका रेत है और यह ब्रह्मा या ऋत्विक् वाक्यका परम स्थान है ।

३६ सात किरणें आधे वर्षतक गर्भ धारण या वृष्टिको उत्पन्न करके तथा संसारमें रेतः-स्वरूप या वृष्टि-दान द्वारा जगत्का सारभूत होकर विष्णु या आदित्यके कार्यमें नियुक्त हैं । वह ज्ञाता और सर्वतोगामी हैं । वह प्रज्ञा द्वारा, भीतर-ही-भीतर, सारे जगत्को व्याप्त किये हुए हैं ।

३७ मैं यह हूँ कि, नहीं— मैं नहीं जानता; क्योंकि मैं मूढ़-चित्त हूँ, अच्छी तरह आवद्ध होकर विक्षिप्तचित्त रहता हूँ । जिस समय ज्ञानका प्रथम उन्मेष होता है, उसी समय मैं वाक्यका अर्थ समझ सकता हूँ ।

३८ नित्य, अनित्यके साथ, एक स्थानपर, रहता है; अन्नमय शरीर प्राप्त कर वह कभी अधोदेश और कभी ऊर्ध्वदेशमें जाता है । वह सदा एक साथ रहते हैं, इस संसारमें सर्वत्र एक साथ जाते हैं; परलोकमें भी, सब स्थानोंपर, एक साथ जाते हैं । संसार इनमें एकको (अनित्यको) पहचान सकता है—दूसरे (आत्मा) को नहीं ।

३९ सारे देवता महाकाशके समान मन्त्राक्षरोंपर उपवेशन किये हुए हैं—इस बातको जो नहीं जानता, वह ऋचासे क्या करेगा ? इस बातको जो जानता है, वह सुखसे रहता है ।

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१॥
तस्याः समुद्रा अधिविक्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।
ततः क्षरत्यक्षरन्तद्विश्वमुपजीवति ॥४२॥
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एना वरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥
त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥
चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५॥

---

४० अहननीया गौ! शोभन शस्य, तृण आदिका भक्षण करो और यथेष्ट दुग्धवती बनो। ऐसा करनेपर हम भी प्रभूत धनवाले हो जायँगे। सदा तृण चरो और सर्वत्र घूमते हुए निर्मल जलका पान करो।

४१ मेघ-निनाद-रूपिणी और अन्तरीक्ष-विहारिणी वाक्, वृष्टि-जलकी सृष्टि करते हुए, शब्द करती है। वह कभी एकपदी, कभी द्विपदी, कभी चतुष्पदी, कभी अष्टपदी और कभी नवपदा होती है। कभी-कभी तो सहस्राक्षर-परिमिता होकर, अन्तरीक्षके ऊपर स्थित होकर, शब्द करती है। *

४२ इसके पाससे सारे मेघ वर्षा करते हैं, इसीसे चारों दिशाओंमें आश्रित भूतोंकी रक्षा होती है। इसीसे जल उत्पन्न होता और जलसे सारे जीव प्राण धारण करते हैं।

४३ मैंने पास ही सूखे गोबरसे उत्पन्न धूमको देखा। चारों दिशाओंमें व्याप्त निकृष्ट धूमके बाद अग्निको देखा। वीर या ऋत्विक् लोग शुक्ल-वर्ण वृष या फलदाता सोमका पाक करते हैं। उनका यही प्रथम अनुष्ठान है।

४४ केश-युक्त तीन व्यक्ति (अग्नि, आदित्य, वायु) वर्षके बीच, यथासमय, भूमिका परिदर्शन करते हैं। इनमें एक जन पृथ्वीका क्षौरकर्म करते हैं, दूसरे अपने कार्य द्वारा पारदर्शन करते हैं और तीसरेका रूप नहीं देखा जाता, केवल गति देखी जाती है।

४५ वाक् चार प्रकारकी है। मेधावी योगी उसे जानते हैं। उसमें तीन गुहामें निहित हैं, प्रकट नहीं हैं। चौथे प्रकार की वाक् मनुष्य बोलते हैं। ×

* केवल मेघमें रहनेपर एकपदा, मेघ और अन्तरीक्षमें द्विपदी, चारों दिशाओंमें चतुष्पदी और चतुर्दिक् तथा चतुष्कोणमें रहनेपर अष्टपदी एवं इनके साथ ऊर्ध्व दिशाको मिलानेपर नवपदी नाम पड़ता है।

× मंत्र, कल्प, ब्राह्मण, लौकिक या परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी आदि चार वाक् हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥४९॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥५०॥
समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥५१॥

---

४६ मेधावी लोग इन आदित्यको इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहा करते हैं। यह स्वर्गीय, पक्षवाले (गरुड़) और सुन्दर गमनवाले हैं। यह एक हैं, तो भी इन्हें अनेक कहा गया है। इन्हें अग्नि, यम और मातरिश्वा कहा जाता है।

४७ सुन्दर गतिवाली और जल-धारिणी सूर्य-किरणें कृष्णवर्ण और नियत-गति मेघको जलपूर्ण करते हुए द्युलोकमें गमन करती हैं। वह वृष्टिके स्थानसे नीचे आती हैं और पृथिवीको जलसे, अच्छी तरह, भिगोती हैं।

४८ बारह परिधियाँ (राशियाँ), एक चक्र (वर्ष) और तीन नाभियाँ हैं। यह बात कौन जानता है? इस चक्र (वर्ष) में तीन सौ साठ शङ्कु या खूँटे हैं।

४९ सरस्वती, तुम्हारे शरीरमें रहनेवाला जो गुण संसारके सुखका कारण है, जिससे सारे वरणीय धनोंकी रक्षा करती हो, जो गुण वसुओंका आधार है, जो समस्त धन प्राप्त किये हुए है और जो कल्याणकारी है, इस समय हमारे पानके लिये उसे प्रकट करो।

५० देवों वा यजमानोंने यज्ञ या अग्नि द्वारा यज्ञ किया है; क्योंकि वही प्रथम धर्म है। वह माहात्म्य आकाशमें एकत्र है, जहाँ पहलेसे ही साधनीय देवता हैं।

५१ जल एक ही तरहका है; कभी ऊपर और कभी नीचे आता-जाता है। प्रसन्नता-दाता मेघ भूमिको प्रसन्न करते हैं। अग्नि द्युलोकको प्रसन्न करते हैं।

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२॥

२३ अनुवाक । १६५ सूक्त । इन्द्र देवता । यहाँसे १९१ सूक्तोंतकके ऋषि अगस्त्य हैं। त्रिष्टुप् छन्द ।
इस सूक्तमें इन्द्र, मरुत् और अगस्त्यकी बातचीत है । इसके तीसरे पाँचवें, सातवें और नवें मंत्र मरुतोंके वचन हैं; इसलिये उनके ऋषि मरुत् हैं । तीनके ऋषि अगस्त्य हैं । अवशिष्टके ऋषि इन्द्र हैं ।

कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः संमिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥१॥
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥२॥
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥३॥
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥४॥

५२ सूर्यदेव स्वर्गीय सुन्दर गतिवाले, गमनशील, प्रकाण्ड, जलके गर्भोत्पादक और ओषधियोंके प्रकाशक हैं। वह वृष्टि द्वारा जलाशयको तृप्त और नदीको पालित करते हैं। रक्षाके लिये उन्हें बुलाता हूँ। ‡

१ (इन्द्र) समानवयस्क और एक स्थान-निवासी मरुत् लोग सर्व-साधारणकी दुर्जेय शोभासे युक्त होकर पृथिवीपर सिञ्चन करते हैं। मनमें क्या सोचकर वे, किस देशसे, आये हैं? आकर जलवर्षी-गण, धन-लाभकी इच्छासे, क्या बलकी अर्चना करते हैं?

२ तरुणवयस्क मरुद्गण किसका हव्य ग्रहण करते हैं? वे अन्तरीक्षचारी श्येन पक्षीकी तरह हैं। यज्ञमें उन्हें कौन हटा सकता है? कैसे महास्तोत्र द्वारा हम उन्हें आनन्दित करें?

३ (मरुद्गण) हे साधुपालक और पूज्य इन्द्र, तुम अकेले कहाँ जा रहे हो? तुम क्या ऐसे ही हो? हमारे साथ मिलकर तुमने ठीक ही पूछा है। हरि-वाहन, हमारे लिये जो वक्तव्य है, वह मीठे वचनोंसे कहो।

४ (इन्द्र) सारा हव्य मेरा है; सारी स्तुतियाँ मेरे लिये सुखकर हैं; प्रस्तुत सोम मेरा है। मेरा मजबूत वज्र, फेंके जानेपर, अव्यर्थ होता है। यजमान लोग मेरी ही प्रार्थना करते हैं, ऋक्-मंत्र मुझे ही चाहते हैं। ये हरि नामके दोनों घोड़े, हव्य-लाभके लिये, मुझे ढोते हैं।

‡ इस सूक्तके सारे मंत्र अथर्वमें भी पाये जाते हैं; इसलिये बहुतोंका मत है कि, यह सूक्त ऋग्वेदके बननेके अनन्तर रचा गया है।

अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥५॥
क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥६॥
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥७॥
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥८॥
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥९॥
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१०॥
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥

---

५ (मरुद्गण) इसीलिये हम महातेजसे अपने शरीरको अलंकृत करके, निकटवर्त्ती और बली अश्वोंसे युक्त होकर, यज्ञस्थानमें जानेके लिये शीघ्र ही तयार हुए हैं। तुम रेत या बलके साथ हमारे साथ ही रहो।

६ (इन्द्र) मरुतो, अहि या वृत्रासुरके बधके समय मेरे साथ रहनेका तुम्हारा ढंग कहाँ था ? मैं उग्र बलिष्ठ माहात्म्यवाला हूँ, इसलिये मैंने सारे शत्रुओंको, बध द्वारा, परास्त किया है।

७ (मरुद्गण) अभीष्ट-वर्षी इन्द्र, हम समान पौरुषवाले हैं। हमारे साथ मिलकर तुमने बहुत कुछ किया है। बलवत्तम इन्द्र, हमने भी बहुत काम किया है। हम मरुत् हैं; इसलिये कार्य द्वारा हम वृष्टि आदिकी कामना करते हैं।

८ (इन्द्र) मरुतो, क्रोधके समय विशाल-पराक्रमी बनकर, अपने बाहुबलसे, वृत्रको पराजित किया है। मैं वज्र-बाहु हूँ। मैं मनुष्यके लिये सबकी प्रसन्नता-दायक सुन्दर वृष्टि किया करता हू।

९ (मरुद्गण) इन्द्र, तुम्हारा सभी कुछ उत्तम है। तुम्हारे समान कोई देवता विद्वान् नहीं है। अतीव बलशाली इन्द्र, तुमने जो कर्त्तव्य कर्मोंको किया है, उन्हें न तो कोई पहले कर सका, न आगे कर सकता है।

१० (इन्द्र) मैं अकेला हूँ। मेरा ही बल सर्वत्र व्याप्त हो; मैं जो चाहूँ, तुरत कर डालूँ; क्योंकि, मरुतो, मैं उग्र और विद्वान् हूँ एवं जिन धनोंका मुझे पता है, उनका मैं ही अधीश्वर हूँ।

११ मरुतो, इस सम्बन्धमें तुमने मेरा जो प्रसिद्ध स्तोत्र किया है, वह मुझे आनन्दित करता है। मैं अभीष्टफल-दाता, ऐश्वर्यशाली, विभिन्न रूपोंवाला और तुम्हारा योग्य मित्र हूँ।

एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥
कोन्वत्र मरुतो मामहे वः प्रायातन सखीँरच्छा सखायः।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदाम ऋतानाम् ॥१३॥
आ यद्दुवस्याद् वसे न कारुरस्मांश्चक्रे मान्यस्य मेधा।
ओषुवर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥
एषः वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्टः तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥

१२ मरुतो, तुम सोनेके रंगके हो। मेरे लिये प्रसन्न होकर दूरस्थ कीर्ति और अन्न धारण करते हुए मुझे अच्छी तरहसे प्रकाश और तेज द्वारा आच्छादित किया है। मुझे आच्छादित करो।

१३ (अगस्त्य) मरुतो, कौन मनुष्य तुम्हारी पूजा करता है? तुम सबके मित्र हो। तुम यजमानके सामने आओ। मरुतो, तुम मनोहर धनकी प्राप्तिके उपाय-भूत बनो और सत्य कर्मको जानो।

१४ मरुतो, स्तोत्र द्वारा परिचरण-समर्थ, स्तुति-कुशल और मान्य ऋत्विक्की बुद्धि, तुम्हारी सेवाके लिये, हमारे सामने, आती है। मरुतो, मैं मेधावी हूँ। मेरे सामने आओ। तुम्हारे प्रसिद्ध कर्मको लक्ष्य कर स्तोता तुम्हारा पूजन करता है।

१५ मरुतो, यह स्तोत्र और यह स्तुति मान्दार्य और प्रसन्नतादायक है अथवा मान्य मान्दार्य कविकी है। यह शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास जाती है। हम अन्न, बल और दीर्घ आयु अथवा जय, शोक और दान पावें।

तृतीय अध्याय समाप्त



चतुर्थ अध्याय



१६६ सूक्त । मरुद्गण देवता । अगस्त्य ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥१॥
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीड़न्ति क्रीड़ा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥२॥
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥३॥
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥४॥
यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥५॥

---

१ फल-वर्षक यज्ञके सुसम्पादनके लिये, मरुतोंके शीघ्र आकर उपस्थित होनेके लिये, उनके प्रसिद्ध पूर्वतन माहात्म्यको कहता हूँ । हे विशाल ध्वनिसे युक्त और सब कार्योंमें समर्थ मरुद्गण, तुम्हारे यज्ञ-स्थलमें जानेके लिये प्रस्तुत होनेपर जैसे समिधा तेजसे आवृत होती है, वैसे ही तुम लोग युद्धमें जानेके लिये प्रभूत बल धारण करो ।

२ औरस पुत्रकी तरह प्रिय-मधुर हव्य धारण करके घर्षणकारी मरुद्गण, प्रसन्न चित्तसे, यज्ञमें क्रीड़ा करते हैं । विनीत यजमानकी रक्षाके लिये रुद्रगण मिलते हैं । उनके बल उनके अधीन हैं; वे कभी यजमानको क्लेश नहीं देते ।

३ जिस हविर्दाता यजमानकी आहुतिसे प्रसन्न होकर सर्व-रक्षक, अमर और सुखोत्पादक मरुद्गण यथेष्ट धन देते हैं, उसी यजमानके हितकारी सखाकी तरह तुम लोग समस्त संसारको अच्छी तरह सींचते हो ।

४ मरुतो, तुम्हारे अश्वगण, अपने बलसे, सारे संसारका भ्रमण करते हैं; वे अपने ही रथसे युक्त होकर जाते हैं । तुम्हारी यात्रा अत्यन्त आश्चर्यमयी है । हथियार उठानेपर जैसे लोग संहारसे डरते हैं, वैसे ही सारे भुवन और अट्टालिकाएँ, तुम्हारे यात्रा-कालमें, डरती हैं ।

५ मरुतोंका गमन अत्यन्त प्रदीप्त है । वे जिस समय गिरि-गह्वरोंको ध्वनित करते हैं अथवा मनुष्योंके हितके लिये अन्तरीक्षके ऊपरी भागमें चढ़ते हैं, उस समय उनके पथके सारे वनस्पति, डरके मारे, व्याकुल हो जाते और रथारूढ़ा स्त्रीकी तरह ओषधियाँ एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चली जाती हैं ।

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥६॥
प्रस्कम्भदेष्णा अनवभ्र राधसोलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥७॥
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् पूर्भीरक्षता मरुतो यमावत ,
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वावः प्रपथेषु खादयोक्षोवश्चक्रा समया विवावृते ॥९॥
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधिवयो न पक्षान्व्यनुश्रियो धिरे ॥१०॥
महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥११॥
तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा विह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२॥

६ उग्र मरुतो, सुबुद्धिके साथ, तुम लोग अहिंसक होकर, हमें सुबुद्धि प्रदान करो। जिस समय तुम्हारी क्षेपणशील और दन्त-विशिष्ट विद्युत् दशन करती है, उस समय, सुलक्षित हेति (अस्त्र-विशेष) की तरह, पशुओंको नष्ट करती है।

७ जिनका दान अविरत है, जिनका धन अंश-रहित है, जिनका शत्रु-वध पर्याप्त है और जिनकी स्तुति सुगीत है, वे मरुद्गण, सोमके पानके लिये, स्तुति गाते हैं; क्योंकि वे ही लोग इन्द्रकी प्रथम वीर-कीर्ति जानते हैं।

८ मरुतो, तुमने जिस व्यक्तिको कुटिल-स्वभाव पापसे बचाया है, हे उग्र और बलवान् मरुद्गण, तुमने जिस मनुष्यको पुत्रादि-पुष्टि-साधन द्वारा, निन्दासे, बचाया है, उसे असंख्य भोग्य वस्तुओं द्वारा प्रतिपालित करो।

९ मरुतो, सारे कल्याणवाही पदार्थ तुम्हारे रथपर स्थापित हैं। तुम्हारे स्कन्धदेशमें परस्पर स्पर्द्धावाले आयुध हैं। तुम्हारे लिये, विश्राम-स्थानपर, खाद्य तैयार है। तुम्हारे सारे चक्र अक्षके पास घूमते हैं।

१० मनुष्योंकी हितकारिणी भुजाओंपर मरुद्गण अनन्त कल्याण-साधक द्रव्य धारण करते हैं, वक्षःस्थलमें कान्ति-युक्त और सुन्दर-रूप-संयुक्त सोनेका भूषण धारण करते हैं। स्कन्ध-देशमें श्वेत वर्णकी माला धारण करते हैं। वज्र-सदृश आयुधपर क्षुर धारण करते हैं। जैसे पक्षियाँ पक्ष धारण करती हैं, वैसे ही मरुत् लोग श्री धारण करते हैं।

११ जो मरुद्गण महान्, महिमान्वित, विभूतिमान् और आकाशस्थ नक्षत्रोंकी तरह दूरमें प्रकाशित हैं, जो प्रसन्न हैं, जिनकी जीभ सुन्दर है, जिनके मुखसे शब्द होता है, जो इन्द्रके सहायक हैं और जो स्तुति-युक्त हैं, वे हमारे यज्ञ-स्थलमें आवें।

१२ सुजात मरुद्गण, तुम्हारा माहात्म्य प्रसिद्ध है और तुम्हारा दान अदितिके व्रतकी तरह अविच्छिन्न है। तुम जिस पुण्यात्मा यजमानको दान देते हो, उसके प्रति इन्द्र कुटिलता नहीं करते।

तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३॥
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः।
आयत्ततनन् वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥१४॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥

१६७ सूक्त। १ म मंत्रके देवता इन्द्र; अवशिष्टके मरुत्। त्रिष्टुप् छन्द।

सहस्रन्त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥१॥
आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥२॥
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।
गुहाचरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥३॥

१३ मरुद्गण, तुम्हारी मित्रता प्रसिद्ध और चिरस्थायिनी है। अमर होकर तुम लोग हमारी स्तुतिकी भली भाँति रक्षा करते हो। अनुग्रह-पूर्वक, मनुष्योंकी स्तुतिकी रक्षा करते हुए, उनके साथ मिलकर तथा उनका नेतृत्व स्वीकार कर, कर्म द्वारा सब जान जाते हो।

१४ वेगवान् मरुतो, तुम्हारे महान् आगमनपर हम दीर्घ कर्म-यज्ञको वर्द्धित करते हैं। उसके द्वारा युद्धमें मनुष्य विजयी होता है। इन सब यज्ञों द्वारा मैं तुम्हारा शुभागमन प्राप्त कर सकूँ।

१५ मरुतो, कवि मान्य मान्दर्यका यह स्तोम तुम्हारे लिये है, यह स्तुति तुम्हारे लिये है; इच्छानुसार उसकी शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आती है। हम भी अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

---

१ इन्द्र, तुम हजारों तरहसे रक्षा करो। तुम्हारी रक्षाएँ हमारे पास आवें। हरि नामक अश्ववाले इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहके प्रशंसनीय अन्न हैं; वह हमारे पास आवें। इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहका धन है। हमारी तृप्तिके लिये वह हमारे पास आवें। हजार चौपाये हमारे पास आवें।

२ आश्रय देनेके लिये मरुद्गण हमारे पास आवें। प्रबुद्ध मरुद्गण प्रशस्यतम और महादीप्ति-संयुक्त धनके साथ हमारे पास आवें; क्योंकि उनके नियुत् नामके उत्कृष्ट अश्व समुद्रके उस पार भी धन धारण करते हैं।

३ सुव्यवस्थित, जल-वर्षक और सुवर्ण-वर्ण विद्युत् मेघमालाकी तरह अथवा निगूढ़ स्थानमें अवस्थित मनुष्यकी भार्याकी तरह अथवा कही गयी यज्ञीय वाणीकी तरह इन मरुतोंके साथ मिलती है।

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥४॥
जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥५॥
आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥६॥
प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥७॥
पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥८॥
नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥९॥
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥१०॥

४ साधारण स्त्रीकी तरह आलिङ्गन-परायण बिजलीके साथ शुभ्रवर्ण, अतिगमनशील और उत्कृष्ट मरुद्गण मिलते हैं। भयङ्कर मरुद्गण द्याव पृथिवीको नहीं हटाते। देवता लोग, मैत्रीके कारण, उनकी समृद्धिका साधन करते हैं।

५ असुर (मरुतों) की अपनी पत्नी रोदसी या बिजली आलुलायित केश और अनुरक्त मनसे मरुतोंके संगमके लिये इनकी सेवा करती है। जैसे सूर्या अश्विनीकुमारोंके रथपर चढ़ी, वैसे ही प्रदीप्तावयवा रोदसी चञ्चल मरुतोंके रथपर चढ़कर शीघ्र आती है।

६ यज्ञ आरम्भ होनेपर, वृष्टिदानके लिये, तरुण वयस्क मरुत् रोदसीको रथपर बैठाते हैं। बलवती रोदसी नियमानुरूप, इनके साथ मिलती है। उसी समय अर्चन-मन्त्र युक्त, हव्यदाता और सोमाभिषवकारी यजमान मरुतोंकी सेवा करते हुए स्तव-पाठ करता है।

७ मरुतोंकी महिमा सबकी प्रशंसनीय और अमोघ है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। उनकी रोदसी वर्षणाभिला-षिणी, अहंकारिणी और अविनश्वरा है। यह सौभाग्यशालिनी और उत्पत्तिशील प्रजाको धारण करती है।

८ मित्र, वरुण और अर्यमा इस यज्ञको निन्दासे बचाते और इसके अयोग्य पदार्थका विनाश करते हैं। मरुतो, तुम्हारे जल देनेका समय जब आता है, तब वह मेघोंके बीच संचित जलकी वर्षा करते हैं।

९ मरुतो, हमारे बीच किसीने भी, अत्यन्त दूरसे भी, तुम्हारे बलका अन्त नहीं पाया है। दूसरोंको परास्त करने-वाले बलके द्वारा बढ़कर, जलराशिकी तरह, अपनी शक्तिसे शत्रुओंको विजित करते हैं।

१० आज हम इन्द्रके प्रियतम होंगे, यज्ञमें उनकी महिमा गायेंगे। हमने पहले इन्द्रका माहात्म्य गाया था और प्रतिदिन गाते हैं। इसलिये महान् इन्द्र मनुष्योंमें हमारे लिये अनुकूल हों।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

---

१६८ सूक्त। मरुद्गण देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द।

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियन्धियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सन्दधे ॥ ३ ॥
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः ॥ ५ ॥

११ मरुतो, कवि मान्दर्यकी यह स्तुति तुम्हारे लिये है। इच्छानुसार उसकी शरीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आती है। हम भी अन्न, बल और दीर्घायु पावें।

---

१ मरुतो, सारे यज्ञोंमें ही तुम्हारा समान आग्रह है। अपने सारे कर्मोंको, देवोंके पास ले जानेके लिये, धारण करते हो, इसलिये द्यावापृथिवीकी भली भाँति, रक्षा करनेके लिये, उत्कृष्ट स्तोत्र द्वारा, तुम्हें, अपनी ओर आनेके लिये, बुलाता हूँ।

२ स्वयं उत्पन्न, स्वाधीनबल और कम्पनशील मरुद्गण मानों मूर्तिमान् होकर, अन्न और स्वर्गके लिये, प्रकट होते हैं। असंख्य और प्रशंसनीय धेनु जैसे दूध देती है, वैसे ही, जल-तरङ्गके समान, वे उपस्थित होकर जल-दान करते हैं।

३ सुसंस्कृत शाखावाली सोमलता, अभिषुत और पीत होकर, जैसे हृदयके बीच परिचारिकाकी तरह कार्य करती है, वैसे ही ध्यान किये जानेपर मरुद्गण भी करते हैं। उनके अंस-देशमें, स्त्रीकी तरह, आयुध-विशेष आलिङ्गन करता है। मरुतोंके हाथमें हस्तत्राण और कर्त्तन है।

४ परस्पर मिले हुए मरुद्गण, अनायास, स्वर्गसे आते हैं। अमर मरुतो, अपने ही वाक्योंसे हमारा उत्साह बढ़ाओ। निष्पाप, अनेक यज्ञोंमें प्रादुर्भूत और प्रदीप्त मरुद्गण दृढ़ पर्वतोंको भी कम्पित कर देते हैं।

५ आयुध-विशेष या भुज-लक्ष्मीसे सुशोभित मरुद्गण, जैसे जीभ दोनों जबड़ोंको चालित करती है, वैसे ही तुम्हारे बीच रहकर कौन तुम्हें परिचालित करता है। तुम लोग स्वयं परिचालित होते हो। जैसे जलवर्षी मेघ परिचालित होता है, जैसे दिनमें मेघ चालित होता है, वैसे ही बहुफलेच्छु यजमान, अन्न-प्राप्तिके लिये, तुम्हें परिचालित करता है।

क स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥
सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७ ॥
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥
असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम्।
ते सप्सरासो जनयन्ताभ्वमादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

---

१६९ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् और विराट् छन्द।

महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥

---

६ मरुतो, जिस जलके लिये तुम आते हो, उस विशाल वृष्टि-जलका आदि और अन्त कहाँ है? शिथिल तृणकी तरह जिस समय तुम जलराशिको गिराते हो, उस समय वज्र द्वारा दीप्तिमान् मेघको विदीर्ण करते हो।

७ मरुतो, जैसा तुम्हारा धन है, वैसा ही दान भी है। दानके सम्बन्धमें तुम्हारे सहायक इन्द्र हैं। उसमें सुख और दीप्ति है। उसका फल परिपक्व है। उससे कृषि-कार्यका भी मंगल होता है। वह दाताकी दक्षिणाकी तरह शीघ्र फल-दाता है। वह असुर्यकी जयशील शक्तिकी तरह है।

८ जिस समय वज्र मेघ-सम्भूत शब्द उच्चारित करते हैं, उस समय उनसे क्षरणशील जल परिचालित होता है। जिस समय मरुद्गण पृथिवीपर जल सेचन करते हैं, उस समय विद्युत् स्मितमुख पृथिवीपर प्रकट होती है।

९ पृश्निने महासंग्रामके लिये प्रदीप्त गमन-युक्त मरुद्गणको प्रसव किया है। समान रूपवाले मरुतोंने जल उत्पन्न किया है। इसके अनन्तर संसारने अभिलषित अन्न आदि प्राप्त किया है।

१० मरुतो, कवि मान्य मान्दर्यका यह स्तोत्र तुम्हारे लिये है; यह स्तुति तुम्हारे लिये है। अपने शरीरकी पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आता है। हम भी अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

---

१ इन्द्र, तुम निश्चय ही महान् हो, क्योंकि तुम रक्षक और महान् मरुतोंका परित्याग नहीं करते। हे मरुतोंके विधाता, तुम हमारे प्रति कृपा करके हमें सुख प्रदान करो। वह सुख प्रियतम है।

अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥
अम्यक्सात इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्माऽतसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥
त्वन्तू इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥
त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्यचिदृतायोः ।
तेषुणो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥
प्रतिप्रयाहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥
प्रतिघोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥

---

२ इन्द्र, सब मनुष्योंवाले, मनुष्योंके लिये जल सिचन करनेवाले और विद्वान् मरुद्गण तुम्हारे साथ मिलें मरुतोंको सेना, सुखके उपायभूत युद्धमें, जय-प्राप्तिके लिये, सदा प्रसन्न हुई है ।

३ इन्द्र, तुम्हारा प्रसिद्ध वज्रायुध-विशेष (ऋष्टि) हमारे लिये, मेघके पास जाता है। मरुद्गण चिर-सञ्चित जल गिरा रहे हैं। विस्तृत यज्ञके लिये अग्नि प्रदीप्त हुए हैं। जैसे जल द्वीपको धारण करता है, वैसे ही अग्नि हव्य धारण करते हैं।

४ इन्द्र, तुम अपने दान-योग्य धनका दान करो। तुम दाता हो। हम लोग प्रचुर दक्षिणा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे। तुम वायु या शीघ्र वर-दाता हो। स्तोता लोग तुम्हारी स्तुति करना चाहते हैं। मधुर दूधके लिये जैसे लोग गोके स्तनको पुष्ट करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हें अन्न आदिके द्वारा पुष्ट करते हैं।

५ इन्द्र, तुम्हारा धन अत्यन्त प्रीति-दाता और यजमानका यज्ञ-निर्वाहकारी है। जो मरुद्गण पहले ही यज्ञमें जानेके लिये तैयार हो जाते हैं, वे ही हमें सुखी करें।

६ इन्द्र, जल-सेचक हो। पुरुषार्थी और विशाल मेघके सामने जाओ। अन्तरीक्ष-प्रदेशमें रहकर चेष्टा करो। युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुओंके पराक्रमकी तरह मरुतोंके विस्तीर्ण पद—अश्वगण—मेघोंपर आक्रमण करते हैं।

७ इन्द्र, भयंकर, कृष्णवर्ण और गमनशील मरुतोंके आनेका शब्द सुनाई देता है। जैसे अधम शत्रुका विनाश किया जाता है, वैसे ही मनुष्योंकी रक्षाके लिये मरुद्गण प्रहरण द्वारा सेना-बल-संयुक्त शत्रुओंका विनाश करते हैं

त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गो अग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देवदेवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

१७० सूक्त । इन्द्र देवता । प्रथम, तृतीय और चतुर्थ ऋचाओंके ऋषि इन्द्र हैं और शेषके अगस्त्य । त्रिष्टुप् और बृहती छन्द ।

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥१ ॥
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥

---

८ इन्द्र, सारे प्राणी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। मरुतोंके साथ, अपने सम्मानके लिये, तुम दुःख-नाशिका और जल-धारिणी मेघ-पंक्तिको विदीर्ण करो। देव, स्तूयमान देवगण तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें अन्न, बल और दीर्घायु प्रदान करो।

१ (इन्द्र) अद्यतन या कल्यतन कुछ नहीं है। अद्भुत कार्यको बात कौन कह सकता है? अन्य मनुष्योंका मन अत्यन्त चञ्चल होता है—जो अच्छी तरह पढ़ा जाता है, वह भी भूल जाता है।

२ (अगस्त्य) इन्द्र, तुम क्या मुझे मारना चाहते हो? मरुद्गण तुम्हारे भ्राता हैं। इनके साथ अच्छी तरह यज्ञ-भाग भोगो। युद्ध-कालमें हमें न हीं विनष्ट करना।

३ (इन्द्र) भ्राता अगस्त्य, मित्र होकर तुम क्यों हमें अनादृत कर रहे हो? हम निश्चय ही तुम्हारे मनकी बात जानते हैं। तुम हमें नहीं देना चाहते।

४ ऋत्विक्गण, तुम वेदीको सजाओ और सामने अग्निको प्रज्वलित करो। अनन्तर उसमें तुम और हम अमृतके सूचक यज्ञको करेंगे।

५ (अगस्त्य) हे धनके अधिपति, हे मित्रोंके मित्रपति, तुम ईश्वर हो, तुम सबके आश्रय-स्वरूप हो। तुम मरुतोंसे कहो कि, हमारा यज्ञ सम्पन्न हुआ है। तुम यथासमय अर्पित हव्य भक्षण करो।

१७१ सूक्त । मरुद्गण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेलो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ २ ॥
स्तुतासो नो मरुतो मृड़यन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥
अस्मादहन्तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृड़ता नः ॥ ४ ॥
येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेलाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

---

१ मरुतो, मैं नमस्कार और स्तुति करता हुआ तुम्हारे पास आता हूँ । हे वेगवान् मरुतो, तुम्हारी दया चाहता हूँ । मरुतो, स्तुति द्वारा आनन्दित चित्तसे क्रोध छोड़ो और रथसे अश्व छोड़ो अर्थात् ठहरनेकी कृपा करो ।

२ मरुतो, तुम्हारे इस स्तोममें अन्न है । देवगण, यह स्तोम, तुम्हारे उद्देश्यसे, हृदयसे सम्पादित हुआ है; कृपा करके इसे मनमें रखिये । सादर इसे स्वीकार करते हुए आओ । तुम हव्य-रूप अन्नके वर्द्धयिता हो ।

३ मरुद्गण, स्तुत होकर हमें सुखी करो । इन्द्र, स्तुत होकर हमें सर्वापेक्षा सुखी करें । मरुतो, हम लोग जितने दिन जीयें, वे सब दिन उत्कृष्ट, स्पृहणीय और जय-योग्य हों ।

४ मरुतो, हम इस बलवान् इन्द्रके पाससे डरके मारे भागते हुए काँपने लगे । तुम्हारे लिये जिस हव्यको संस्कृत किया था, उसे दूर कर दिया । हमें सुखी करो ।

५ इन्द्र, तुम बल-स्वरूप हो । तुम्हारे माननीय अनुग्रहसे किरणें, प्रतिदिन, उषाके उदय-कालमें प्राणियोंको चैतन्य देती हैं । अभीष्टवर्षी, उग्र बल-प्रदायी और पुरातन इन्द्र, तुम उग्र मरुतोंके साथ अन्न धारण करो ।

६ इन्द्र, प्रभूत बलशाली मरुतोंकी रक्षा करो । उनके प्रति निष्क्रोध बनो । मरुद्गण उत्तम प्रज्ञावाले हैं । इनके साथ शत्रुओंके विनाशक बनो और हमारी रक्षा करो । हम अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१७२ सूक्त। इन्द्र देवता। गायत्री छन्द।

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः। मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥
आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः। आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥
तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः। ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥

१७३ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

गायत्साम नभन्यं यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत्।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥
अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात्।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥
नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३ ॥

---

१ मरुतो, यज्ञमें तुम्हारा आगमन विचित्र हो। दानशील और उत्कृष्ट दीप्तिवाले मरुतो, तुम्हारा आगमन हमारी रक्षा करे।

२ दानशील मरुतो, तुम्हारे दीप्यमान और प्राणिवधकुशल अस्त्र हमारे पाससे दूर हों। तुम जिस अश्म नामके रथको फेंकते हो, वह भी हमारे पाससे दूर हो।

३ दाता मरुओ, तिनकेके समान नीच होनेपर भी मेरी प्रजाओंको बचाना। हमें उन्नत करो, ताकि हम बच जायँ।

---

१ इन्द्र, उद्गाता सामवेदका इस प्रकार आकाशव्यापी गान गाता है कि, तुम समझ सको। हम उस वर्द्धमान और स्वर्ग-प्रदाता स्तोत्रकी पूजा करते हैं। स्वर्गीय इन्द्र, दुग्धवती और हिंसा-शून्या गायें जैसे कुशासनपर बैठनेके समय तुम्हारी सेवा करती हैं, वैसे ही मैं भी पूजा करता हूँ।

२ हव्यदाता यजमान, हव्यदाता अध्वर्यु आदिके साथ अपने दिये हव्य द्वारा इन्द्रकी पूजा करते हैं। पिपासित मृगकी तरह, इन्द्र, द्रुत वेगसे यज्ञ-स्थलमें उपस्थित होंगे। उग्र इन्द्र, स्तोत्राभिलाषी देवोंकी स्तुति करते हुए मर्त्य होता, स्त्री-पुरुष, यज्ञ-सम्पादन करते हैं।

३ होम-सम्पादक अग्नि, परिमित गार्हपत्यादि स्थानमें, चारो ओर, व्याप्त हैं तथा शरत्कालका और पृथिवीके गर्भस्थानीय अन्नको ग्रहण करते हैं। अश्वकी तरह शब्द करके, वृषभकी तरह शब्द करके, अन्न लेकर, आकाश और पृथिवीके बीच, दूत-स्वरूप, बातचीत करते हैं।

ताकर्मोषतरास्मै प्रच्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥
तमुष्टुहीन्द्रं योह सत्वायः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद्योधीयान् वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥
प्रयदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसीकक्ष्ये नास्मै ।
संविव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥
समत्सु त्वा शूरसतामुराणं प्रपथिन्तमं परितं सयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदेक्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥
एवाहितेशं सवना समुद्र आपो यत्त आसुमदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनुजोष्याभूद्गौः सूरीँश्चिद्यदि धिषावेषि जनान् ॥ ८ ॥
असाम यथा सुसखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥

---

४ हम, इन्द्रके उद्देश्यसे, अत्यन्त व्यापक हव्य प्रदान करेंगे। देवाभिलाषी यजमान इद्ध स्तोत्र करते हैं। दर्शनीय तेजवाले अश्विनीकुमारोंकी तरह जानने योग्य और रथपर अवस्थित इन्द्र हमारे स्तोत्रका सेवन करें।

५ हे होता, जो इन्द्र अनन्त बलवाले, शौर्य्यवान्, बलवान् रथपर स्थित, सामनेके योद्धाओंमें श्रेष्ठ योद्धा, वज्र आदिवाले और मेघ आदिके विनाशक हैं, उनकी स्तुति करो।

६ इन्द्र, अपनी महिमासे, कर्म-निष्ठ यजमानोंको स्वर्ग आदि फल देनेमें समर्थ हैं। द्यावापृथिवी उनकी कक्षाकी पूर्त्तिके लिये पर्याप्त नहीं हैं। जैसे अन्तरीक्ष पृथिवीको वेष्टित कर रहता है, वैसे ही वे भी अपनी प्रतिभासे तीनों लोकोंको व्याप्त करते हैं। जैसे वृषभ अनायास शृङ्ग धारण करता है, वैसे ही अन्नवान् इन्द्र भी स्वर्गको अनायास धारण करते हैं।

७ शूर इन्द्र, युद्ध-भूमिमें साधुओंके बलप्रद और उत्तम-मार्ग-रूप हो। मरुद्गण तुम्हें स्वामी कहकर आनन्दित होते हैं। वे तुम्हारे परिजन हैं। तुम्हारे आनन्दके लिये सब लोग समान आनन्दित होकर तुम्हें अलंकृत करनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

८ यदि अन्तरीक्ष-स्थित और प्रकाशमान जल प्रजाओंके लिये तुम्हें सुखी करे, यदि सारे स्तोत्र आदि तुम्हें प्रसन्न करें और यदि तुम वृष्टि-प्रदान आदि कर्म द्वारा स्तोताओंकी कामना करो, तो तुम्हारा सवन सुखकर हो।

९ प्रभु इन्द्र, जैसे हम तुम्हारे मित्र हो सकें और स्तुति द्वारा, राजाओंकी तरह, तुम्हारे पाससे अभीष्ट प्राप्त कर सकें, वैसा करो। इन्द्रदेव, हमारे स्तुति-कालमें उपस्थित होकर, शीघ्रताके साथ, हमारा यज्ञ, उक्त स्तुतिके साथ, ले जाओ।

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः।
मित्रा युवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उपशिक्षन्ति यज्ञैः॥ १०॥
यज्ञो हि ष्मेंद्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन्।
तीर्थनाच्छातातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमाकृणोत्यध्वा॥ ११॥
मोषूण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्माते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतोवन्दते गीः॥ १२॥
एषः स्तोम इन्द्र स्तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः।
आनो ववृत्याः सुवितायं देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ १३॥



१६४ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षानॄन् पाह्यसुर त्वमस्मान्।
त्वं सत्पतिर्मघवानस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः॥ १॥

---

१० जैसे मनुष्योंमें प्रतिस्पर्द्धी व्यक्तियोंको, स्तुति द्वारा, स्वय किया जाता है, वैसे ही हम भी इन्द्रको करेंगे। इन्द्र केवल हमारे ही होंगे। जैसे योग्य शासक नगरपतिकी, हितैषी लोग, पूजा, करते हैं, वैसे ही हमारे बीच अवस्थानाभिलाषी अध्वर्यु लोग, हव्य आदि द्वारा, इन्द्रकी पूजा करते हैं।

११ इसी प्रकार यज्ञपरायण व्यक्ति, यज्ञ द्वारा, इन्द्रकी वृद्धि करता है और कुटिलगति व्यक्ति, मन ही मन, सदा चिन्ता-परायण रहता है, जिस प्रकार तीर्थ-मार्गमें सम्मुखस्थित जल तुरत लोगोंको प्रसन्न करता और दीर्घ-पथका जल तृषार्त्त व्यक्तिको निराश करता है।

१२ इन्द्र, युद्ध-वेलामें, मरुतोंके साथ, तुम हमें नहीं छोड़ना; क्योंकि हे बलवान् इन्द्र, तुम्हारे लिये यज्ञका भाग स्वतन्त्र है। हमारी फल-समन्वित स्तुति महान्, हविष्मान् और जलदाता मरुतोंकी वन्दना करती है।

१३ इन्द्र, यह स्तोम तुम्हारा ही है। हरिवाहन, इस स्तुति द्वारा तुम हमारा देव-पूजन-मार्ग जान लो और अनायास आनेके लिये हमारे पास पधारो।

---

१ इन्द्र, तुम संसार और सारे देवोंके राजा हो। तुम मनुष्योंको रक्षा करो। असुर, तुम हमारी रक्षा करो। तुम साधुओंके पालक, धनवान् और हमारे उद्धार-कर्त्ता हो। तुम सत्य और बल-प्रदाता हो। तुमने अपने तेजसे सबको ढक लिया है।

दनोविश इन्द्रमृध्रवाचः सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दत् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
अजावृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
शेषन्नुत इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषतामृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥
वह्कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्रसूरश्चक्रं वृहतादभीकेभिस्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥ ५ ॥
जघन्वाँ इन्द्रमित्र रूश्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्रयेपश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥
रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीकः ।
करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा निदुर्योणे कुयवाचं मृधिश्रेत् ॥ ७ ॥

२ इन्द्र, जिस समय तुमने संवत्सर-पर्यन्त दृढ़ीकृत सात पुरियोंको भिन्न किया था, उस समय प्रजाओंको संयत-वाक्य करके अनायास दमन किया था। अनवद्य इन्द्र, तुमने गतिशील जल दिया था। तुमने तरुण-वयस्क पुरुकुत्स राजाके लिये वृत्रका वध किया था।

३ इन्द्र, तुम राक्षस-निवास सारी नगरियोंको जाते और वहाँसे, हे पुरुहूत, अनुचरोंके साथ स्वर्गमें जाते हो। वहाँ अशोषक और शीघ्रकारी अग्निको, सिंहकी तरह, बचाते हो, ताकि वह अपने गृहमें अपना कर्त्तव्य पूरा कर सके।

४ इन्द्र, तुम्हारे शत्रु या मेघ वज्रकी महिमासे तुम्हारी प्रशंसा करते हुए अपने जन्मस्थानमें शीघ्र शयन करें। जब तुम अस्त्र लेकर जाते हो, तब नीचे जल गिराते और हरियोंके ऊपर चढ़ते हो। अपनी शक्तिसे तुम शस्य आदि बढ़ाते हो।

५ इन्द्र, तुम जिस यज्ञमें कुत्स ऋषिकी कामना करते हो, उसमें अपने वशीभूत, सरलगामी और वायुके समान वेगशाली अश्वोंको परिचालित करते हो। इसके लिये सूर्य रथचक्रको पास ले आवें और वज्रबाहु इन्द्र संग्रामकर्त्ता शत्रु-ओंके सामने आवें।

६ हरिवाहन इन्द्र, तुमने, स्तोत्र द्वारा प्रवृद्ध होकर, दान-रहित और यजमानोंके विघ्नकारी लोगोंका विनाश किया है। जिन्होंने तुम्हें आश्रयदाता रूपसे देखा है और जो हव्य प्रदानके लिये मिलित हुए हैं, वे तुमसे सन्तान प्राप्त करते हैं।

७ इन्द्र, पूजनीय अन्नकी प्राप्तिके लिये कवि तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुमने पृथिवीको दासकी शय्या बना दिया है। इन्द्रने तीन भूमिके दान द्वारा विचित्र किया है एवं दुर्योणि राजाके लिये कुयवाचका वध किया है।

सनातात इन्द्र नव्या आगुः सहोनभो विरणाय पूर्वीः ।
भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीॠणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्रयत् समुद्रमतिशूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वधस्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

१७५ सूक्त । इन्द्र देवता । बृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥
आनस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्रसानसिः पृतनाषाड़मर्त्यः ॥ २ ॥
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

---

८ इन्द्र, नये ऋषिगण तुम्हारे सनातन प्रसिद्ध वीर कर्मको स्तुति करते हैं। तुमने अनेक हिंसकोंको, संग्राम-निवारणके लिये, विनष्ट किया है। तुमने देवशून्य विपक्ष नगरोंको भिन्न किया है और देवरहित शत्रुका अस्त्र नत किया है।

९ इन्द्र, तुम शत्रुओंमें हृत्कम्प पैदा करनेवाले हो। इसीलिये तुम प्रवहमाना सिरा नामकी नदीकी तरह तरंग-युक्त जल पृथिवीपर गिराते हो। हे शूर, जिस समय तुम समुद्रको परिपूर्ण करते हो, उस समय तुमने तुर्वश और यदुके मंगलके लिये उनका पालन किया है।

१० इन्द्र, तुम सदा हमारे रक्षक-श्रेष्ठ बनो और प्रजाओंका पालन करो। हमारे सैन्योंको बल दो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

---

१ हरिवाहन इन्द्र, हर्षकर, अभीष्टवर्षी, आह्लादकारी, अन्नवान्, असीम दानवाले और महानुभाव सोम जिस प्रकार पात्रमें स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार तुम भी होकर और पानकर धारण करो और अतीव प्रसन्न बनो।

२ इन्द्र, हर्षकर, अभीष्टवर्षी, तर्पयिता, वरणीय, सहायवान्, शत्रु-सैन्य-विनाशक और अविनाशी सोम तुम्हारे पास आवे।

३ इन्द्र, तुम शूर और दाता हो, मैं मनुष्य हूँ। मेरा मनोरथ पूर्ण करो। तुम सहायवान् हो। जैसे अग्नि, अपनी ज्वालासे, पात्रको जलाता है, वैसे ही तुम व्रत-रहित दस्युको जलाओ।

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

१७६ सूक्त। इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

मत्सि नो वस्य इष्टय इन्द्रमिन्दो वृषाविश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥
तस्मिन्नावेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥
यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

---

४ मेधावी इन्द्र, तुम ईश्वर हो। अपनी सामर्थ्यसे तुमने सूर्यके दो चक्रोंमेंसे एक हरण कर लिया। शुष्णका वध करनेके लिये कर्त्तन-साधन वज्र लेकर वायुके समान वेगवाले अश्वके साथ आओ।

५ इन्द्र, तुम्हारी प्रसन्नता सर्वापेक्षा बल-संयुक्त है। तुम्हारा यज्ञ सर्वापेक्षा अन्नवान् है। हे अनेक-अश्व-दाता इन्द्र, अपने वृत्रघाती और धनदायी तथा क्रतुका समर्थन करो।

६ इन्द्र, तुम पुराने स्तोताओंके प्रति, तृषार्त्तके पास जलकी तरह हुए थे; इसलिये हम बार-बार तुम्हारी स्तुति करते हैं, ताकि अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

---

१ हे सोम, धन-लाभके लिये इन्द्रको आनन्दित करो। अभीष्टवर्षी इन्द्रके बीच प्रवेश करो। प्रसन्न होकर शत्रुओंका विनाश करते हुए क्रमशः व्याप्त होते हो; इसलिये किसी शत्रुको पासमें नहीं आने देते।

२ इन्द्र, मनुष्योंके अद्वितीय अधीश्वर हैं। वे यथा-रीति यव (जौ) की तरह हमारा अभीष्ट सार्थक करते हैं।

३ जिन इन्द्रके हाथोंमें पञ्च क्षिति अर्थात् ब्राह्मणादि चार वर्ण और निषादका सर्वप्रकार अन्न है, वही इन्द्र, जो हमारा द्रोह करता है, उसे दिव्य वज्रकी तरह विनष्ट करें।

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५॥
नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम्।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरामहे ददे सुव्रतो नवाजम् ॥६॥
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान्।
अधाचिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥
युवां चिद्धिष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥८॥
प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥९॥
तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम्।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥



५ अश्विनीकुमारो, बूढ़े तुग्र राजाके पुत्रकी तरह मैं स्तुति द्वारा अभिमत लाभके लिये तुम्हें यज्ञ-देशमें ले आऊँगा। तुम्हारी महिमासे द्यावापृथिवी परस्पर मिली है। यजनीय अश्विद्वय, यह जराजीर्ण ऋषि पापमुक्त होकर दीर्घ जीवन लाभ करें।

६ शोभन दानवाले अश्विद्वय, जिस समय तुम नियुत नामके घोड़ोंको जोतते हो, उस समय अन्नसे पृथिवीको भर देते हो; इसलिये वायुकी तरह स्तोता शीघ्र तुम दोनोंको तृप्त और व्याप्त करें। उत्तम कर्मवाले व्यक्तिकी तरह स्तोता, अपने महत्त्वके लिये, अन्न स्वीकार करते हैं।

७ हम भी तुम्हारे स्तोता और सत्यप्रतिज्ञ होकर विभिन्न स्तव करते हैं। द्रोण-कलश स्थापित हुआ है। हे स्तुतिपात्र और अभीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, देवोंके पास सोमपान करो।

८ अश्विनीकुमारो, कर्मनिर्वाहक लोगोंमें श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषि ग्रीष्मके दुःखनिवारक स्रोतकी प्राप्तिके लिये, शब्द उत्पन्न करनेवाले शङ्ख आदिकी तरह, हजार स्तुतियों द्वारा तुम्हें प्रतिदिन जगाते हैं।

९ अश्विनीकुमारो, तुम रथकी महिमासे यज्ञ धारण करो। गति-शील अश्विनीकुमारो, यजमानके होताकी तरह तुम गमनागमन करो। स्तोताओंको बल दो, उत्तम घोड़े दो। फलतः हे नासत्यद्वय, हम धन प्राप्त करेंगे।

१० अश्विद्वय, तुम्हारे स्तुतिपात्र, नये आकाशविहारी अभग्न चक्रवाले रथकी प्राप्तिके लिये स्तोत्र द्वारा उसे बुलाते हैं, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

१८१ सूक्त। अश्विद्वय देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

कदु प्रेष्ठा विषां रयीणामध्वयन्ता यदुन्निनीथो अपाम्।
अयं वां यज्ञो अकृतप्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥१॥
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥२॥
आ वां रथो वनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रबन्धुरः सुविताय गम्याः।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहं पूर्वो यजतो धिष्ण्याय ॥३॥
इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥४॥
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्रा रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥५॥
प्र वां शरद्वान्वृषभो न निः षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥६॥

१ प्रियतम अश्विद्वय, तुम कब अन्न और धनको ऊपरके देशमें ले जाओगे कि, यज्ञ समाप्त करनेकी इच्छा करते हुए जलको नीचे गिराया जा सकेगा ? हे धनधारके और मनुष्योंके आश्रयदाता अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम्हारी ही प्रशंसा की जाती है।

२ अश्विद्वय, तुम्हारे दीप्तिशाली, वृष्टिपान करनेवाले, वायुकी तरह वेगवाले, स्वर्गीय गतिशील, मनकी तरह वेगवान् युवा और शोभन पृष्ठवाले अश्व तुम्हें इस यज्ञमें ले आवें।

३ हे ऊँचे स्थानके योग्य और रथासीन अश्विद्वय, भूमिकी तरह अत्यन्त विस्तृत, उत्तम बन्धुरवाले, वर्षणसमर्थ, मनकी तरह वेगवाले, अहंकारी और यजनीय रथ यज्ञमें ले आवे।

४ अश्विद्वय, तुमने सूर्य और चन्द्रके रूपसे जन्म ग्रहण किया था और पाप-शून्य हो। तुम्हारे शरीर-सौन्दर्य और नाम-महिमाके कारण मैं बार-बार तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुममें एक यज्ञ-प्रवर्त्तक होकर संसारको धारण करते हैं और दूसरे द्युलोकके पुत्र-रूप होकर विविध रश्मियोंको धारण करते हुए संसारको धारण किये हुए हैं।

५ अश्विद्वय, तुममेंसे एकका श्रेष्ठ और पीतवर्ण रथ, इच्छानुसार, हमारे यज्ञ-गृहमें जाय और एक जनके हरि नामके अश्वोंको मनुष्य लोग मथन-निष्पादित खाद्य और स्तुतिसे प्रसन्न करें।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे बीच एक जन मेघोंको विशीर्ण करते हैं। वह इन्द्रकी तरह अन्नोंको निकालते हुए हव्यकी अभिलाषासे, बहुत अन्न-दानके लिये, जाते हैं। दूसरेके गमनके लिये यजमान लोग हव्य द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हैं। इनके द्वारा भेजी हुई व्यापक और तटलंघिनी नदियाँ हमारे पास आती हैं।

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥७॥
उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८॥
युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥९॥



१८२ सूक्त । अश्विद्वय देवता त्रिष्टुप् छन्द ।

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो न पाता सुकृते शुचिव्रता ॥१॥
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२॥

---

७ विधाता अश्विद्वय, तुम्हारी स्थिरताकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त स्थिर स्तुतियाँ बनायी जाती हैं। वह तीन तरहसे तुम्हारे पास जाती हैं। तुम प्रशंसित होकर याचमान यजमानकी रक्षा करो। जाकर या खड़े होकर इसका आह्वान सुनो।

८ अश्विद्वय, तुम्हारी प्रदीप्त स्तुति कुशत्रय-युक्त यज्ञ-सदन द्वारा यजमानोंको प्रसन्न करे। अभीष्ट-वर्षिद्वय, तुम्हारा मेघ जल-वर्षण करते हुए, जल-सेचनकी तरह, मनुष्योंको धन देकर प्रसन्न करे।

९ अश्विद्वय, पूषाकी तरह बहु प्रज्ञाशाली और हविष्मान् यजमान, अग्नि और उषाकी तरह, तुम्हारी स्तुति करता है। जिस समय पूजा-परायण स्तोता स्तुति करता है, उस समय यजमान भी स्तुति करता है, जिससे हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

---

१ मनीषी ऋत्विको, हमारी ऐसी धारणा हो रही है कि, अश्विनीकुमारोंका अभीष्टवर्षी रथ उपस्थित है। उसके आगे जाकर उनकी प्रतीक्षा करो। वे पुण्यात्माओंके कर्मको करते हैं। वे स्तुतियोग्य हैं। उन्होंने विश्पलाका भला किया था। वे स्वर्गके नप्ता हैं। उनका कर्म शुचि है।

२ अश्विद्वय, तुम अवश्य ही इन्द्रश्रेष्ठ, स्तुति-योग्य, मरुत्श्रेष्ठ, शत्रुनाशक, उत्कृष्टकर्मकारी, रथवान् और रथियोंमें उत्तम हो। तुम मधुपूर्ण हो। तुम चारो ओर सन्नद्ध रथको ले जाते हो। उसी रथपर कृपा करके हव्यदाताके पास आओ।

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥३॥
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचं वाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥४॥
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥५॥
अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ।
कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥७॥
तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥



३ अश्विद्वय, वहाँ क्या करते हो ? वहाँ क्यों हो ? हव्य-शून्य जो कोई व्यक्ति पूजनीय हुआ हो, उसे पराभूत करो। पणि या अयाज्ञिकका प्राण नाश करो। मैं मेधावीकी और तुम्हारी स्तुतिका अभिलाषी हूँ। मुझे ज्योति दो ।

४ अश्विद्वय, जो कुत्तेकी तरह जघन्य शब्द करते हुए हमारे विनाशके लिये आते हैं, उन्हें नष्ट करो। वे लड़ाई करना चाहते हैं, उन्हें मार डालो। उन्हें मारनेका उपाय तुम जानते हो। जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसकी प्रत्येक कथाको रत्नवती करो। नासत्यद्वय, तुम दोनों मेरी स्तुतिकी रक्षा करो।

५ अश्विद्वय, तुग्र राजाके पुत्रके लिये तुमने समुद्र-जलमें प्रसिद्ध, दृढ़ और पक्ष-विशिष्ट नौका बनायी थी। देवोंमें तुमने ही अनुग्रह करके नौका द्वारा उसको निकाला था। अनायास आकर तुमने महासमुद्रसे उसका उद्धार किया था ।

६ जलके बीच, निम्नमुख गिराया हुआ तुग्रपुत्र अवलम्बनरहित अन्धकारके बीच अतीव पीड़ित हुए थे। अश्विद्वयकी प्रेरित जलके बीच प्रविष्ट चार नौकाएँ उसे मिली थीं।

७ तुग्रपुत्रने याचमान होकर जलके मध्य जिस निश्चल वृक्षका आलिङ्गन किया था, वह वृक्ष क्या है ? अश्विद्वय, तुमने उसे सुरक्षित उठाकर विपुल कीर्त्ति प्राप्त की है ।

८ नराकर अश्विद्वय, तुम्हारे पूजकोंने जो स्तव किया है, उसे तुम ग्रहण करो। अश्विद्वय, आज यज्ञके सोम-याग-सम्पादक स्तोत्रमें व्रती बनो, जिससे हम अन्न, बल और धन प्राप्त करें।

१८३ सूक्त। अश्विद्वय देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्नपर्णैः ॥१॥
सुवृद्रथो वर्तते यन्नभिक्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥२॥
आतिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनुव्रतानि वर्तते हविष्मान्।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३॥
मा वां वृको मा वृकीरादधर्षीन्मा परिवर्क्तमुत मातिधक्तम्।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेवसे हविष्मान्।
दिशं न दिष्टा मृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योपयातम् ॥५॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

---

१ अभीष्टवर्षी अश्विद्वय, जो रथ मनकी अपेक्षा भी वेगशाली है, जिसमें तीन सारथि-स्थान और तीन चक्र हैं, जो अभीष्टवर्षी और धातुत्रय-विशिष्ट है, जिस रथपर चढ़कर जैसे पक्षी पक्षोंके बल जाता है, वैसे ही तुम सुकृतकारीके घर जाते हो, उसी रथको तैयार करो।

२ अश्विनीकुमारो, तुम संकल्पवान् होकर हव्यके लिये जिस रथपर चढ़ते हो, वही तुम्हारा भली भाँति आवर्त्तनकारी रथ, देवयजनभूमिके सामने, जाता है। तुम्हारे शरीरकी हितकारी स्तुति तुम्हारे साथ मिले। तुम द्युलोककी पुत्री उषाके साथ मिलो।

३ अश्विद्वय, जो रथ हविवाले यजमानके कर्मका लक्ष्य करके जाता है, हे नराकार नासत्यद्वय, तुम जिस रथसे यज्ञ-शाला जानेकी इच्छा करते हो, उसी अच्छी तरह आवर्त्तनकारी रथपर चढ़कर यजमानके पुत्र और अपने हितकी प्राप्तिके लिये यज्ञ-गृहमें जाओ।

४ अश्विद्वय, तुम्हारी कृपासे वृक और वृकी मुझे न खायें। मुझे छोड़कर दूसरेको दान नहीं करना। अश्विनी-कुमारो, यही तुम्हारा हव्य-भाग है, यही तुम्हारी स्तुति है, यही तुम्हारे लिये सोमरसका पात्र है।

५ अश्विद्वय, जैसे मार्ग जाननेके लिये, पथिक पथ-प्रदर्शकको बुलाता है, वैसे ही गौतम, पुरुमीढ़ और अत्रि हव्य ग्रहण करके तृप्त करनेके लिये तुम्हें बुलाते हैं। अश्विद्वय, मेरे आह्वानके पास आओ।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे अनुग्रहसे हम अन्धकारके पार चले जायँगे। तुम्हारे उद्देश्यसे यह स्तुति बनायी गयी है। देवोंके गन्तव्य पथ यज्ञमें आओ। वैसा होनेपर हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकेंगे।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

पञ्चम अध्याय



१८४ सूक्त। अश्विद्वय देवता। अनुष्टुप् छन्द।

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥१॥
अस्मे ऊषु वृषणा मादयेथामुत्पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥२॥
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः।
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥४॥
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥५॥

---

१ अन्धकारका विनाश करनेके लिये उषाके आनेपर हम आजके यज्ञमें और दूसरे दिनके यज्ञमें तुम्हें बुलाते हैं। अश्विनीकुमारो, तुम असत्यशून्य और द्युलोकके नेता हो। तुम जहाँ-कहीं रहो, स्तोता आर्य ऋग्वेदीय मंत्र द्वारा, विशिष्ट दानशील यजमानके लिये, तुम्हारी स्तुति करता है।

२ अभीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, सोमरससे बलवान् होकर तुम हमारी तृप्ति करो और पणियोंका समूल नाश करो। हे नेतृद्वय, तुम्हें सामने लानेके लिये हम जो तृप्ति-प्रद स्तुति करते हैं, उसे सुनो; क्योंकि तुमलोग स्तुतिके अन्वेषक और सम्वय करनेवाले हो।

३ नासत्यद्वय, हे सूर्य-चन्द्र-रूपी अश्विनीकुमारो, कल्याणप्राप्तिके लिये, तीरकी तरह, शीघ्रगामी होकर सूर्य्य-तनयाको ले जाओ। पूर्व युगकी तरह यज्ञ-कालमें सम्पादित स्तुति महान् वरुणको तुष्टिके लिये तुम्हें स्तुत करती है।

४ मधुपात्रवाले अश्विनीकुमारो, तुम कवि मान्यकी स्तुति अंगीकार करो। तुम्हारा दान हमारे उद्देश्यसे प्रवृत्त हो। शुभ-फल-प्रदाता अश्विनीकुमारो, अन्नकी इच्छासे और वीर्यशाली यजमानके हितके लिये मनुष्य या पुरोहित तुम्हारे साथ हर्षयुक्त हों।

५ अन्नवान् अश्विनीकुमारो, तुम्हारे लिये हव्यके साथ यह पाप-विनाशी स्तोत्र रचित हुआ है। अश्विनीकुमारो, अगस्त्यके प्रति सन्तुष्ट होकर यजमानके पुत्रादि और अपने सुख-भोगके लिये यज्ञ-भूमिमें आगमन करो।

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥



१८५ सूक्त । द्यावापृथिवी देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥१॥
भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोः रुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥२॥
अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा० ॥३॥
अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नान्द्यावा० ॥४॥
संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामीपित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा० ॥५॥

---

६ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी कृपासे हम अन्धकारको पार कर जायँगे । तुम्हारे उद्देशसे यह स्तव रचित हुआ है । देवोंके गन्तव्य पथसे यज्ञमें आओ, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

---

१ कविगण, द्यु और पृथिवीमें पहले कौन उत्पन्न हुआ है, पीछे कौन उत्पन्न हुआ है, किसलिये उत्पन्न हुए हैं, यह बात कौन जानता है ? वे दूसरेके ऊपर निर्भर होकर सारे संसारको धारण करते हैं और दिन तथा रात्रिकी तरह चक्रवत् परिवर्त्तित होते रहते हैं ।

२ पाद-रहित और अविचल द्यावापृथिवी पादयुक्त तथा सचल गर्भस्थित प्राणियोंको, पिता-माताकी गोदमें पुत्रकी तरह, धारण करते हैं । हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

३ हम अदितिसे पापरहित, अक्षीण, हिंसा-रहित, अन्नयुक्त और स्वर्गतुल्य धनके लिये प्रार्थना करते हैं । द्यावापृथिवी, स्तोता यजमानके लिये, वही धन उत्पन्न करते हो । हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

४ हम प्रकाशमान दिन और रात्रिके उभयविध धनके लिये दुःख-रहित और अन्न द्वारा तृप्तिकारी द्यावा-पृथिवीका अनुगमन कर सकें । हे द्यावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

५ परस्पर संसक्त, सदा तरुण, समान सीमासे संयुक्त, भगिनीभूत और बन्धु-सदृश द्यावापृथिवी, पिता-माताके क्रोडस्थित और प्राणियोंके नाभि-स्वरूप, जलका घ्राण करते हुए, हमें महापापसे बचावें ।

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥६॥
उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥७॥
देवान्वा यच्चकृमाकच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥८॥
उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥९॥
ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधा ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥१०॥
इदं द्यावा पृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवेवाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥



६ देवोंकी प्रसन्नताके लिये मैं विस्तीर्ण—निवासभूत, महानुभाव और शस्यादि-समुत्पादक द्यावापृथिवीको यज्ञके लिये बुलाता हूँ। इनका रूप आश्चर्य-जनक है और ये जल धारण करते हैं। द्यावापृथिवी, हमें महा पापसे बचाओ।

७ महान्, पृथु, अनेक आकारोंसे विशिष्ट और अनन्त द्यावापृथिवीकी, यज्ञस्थलमें, मैं, नमस्कार-मंत्र द्वारा, स्तुति करता हूँ। हे सौभाग्यवती और उद्धार-कुशला द्यावापृथिवी, तुम संसारको धारण करो और हमें महा पापसे बचाओ।

८ हम देवोंके पास जो सदा अपराध करते हैं, बन्धु और जामाताके प्रति जो सब अपराध करते हैं, हमारा यह यज्ञ उन सब पापोंको दूर करे।

९ स्तुति-योग्य और मनुष्योंके हितकर द्यावापृथिवी मुझे, आश्रय प्रदान करें। आश्रयदाता द्यावापृथिवी आश्रय देनेके लिये मेरे साथ मिलें। देवो, हम तुम्हारे स्तोता हैं; अन्न द्वारा तुम्हें तृप्त करते हुए प्रचुर दानके लिये प्रचुर अन्न चाहते हैं।

१० मैं बुद्धिमान् हूँ। द्यावापृथिवीके उद्देशसे चारो दिशाओंमें प्रकाशके लिये मैंने अत्युत्तम स्तोत्र किया है। पिता-माता निन्दनीय पापसे हमें बचावें तथा हमें सदा पासमें रखकर तृप्तिकर वस्तु द्वारा पालित करें।

११ हे पिता और हे माता, तुम्हारे लिये इस यज्ञमें मैंने जो स्तोत्र पढ़े हैं, उन्हें सार्थक करो। द्यावापृथिवी, आश्रय-दान द्वारा तुम स्तोताओंके समीपवर्ती बनो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें।

१८६ सूक्त। विश्वेदेवगण देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु।
अपि यथा युवानो मत्सथानो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१॥
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः।
भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥२॥
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्त्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥३॥
उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः।
समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥४॥
उत नोऽहिर्बुध्न्योमयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥५॥
उत न ईं त्वष्टागन्त्वच्छा स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥६॥
उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥७॥

---

१ अग्नि और सविता हमारी स्तुतियोंके कारण भूस्थानीय देवोंके साथ यज्ञ—स्थलमें आवें। युवकगण, हमारे यज्ञमें इच्छापूर्वक आकर सारे जगत्की तरह हमें भी प्रसन्न करो।

२ शत्रुओंके आक्रमण-कर्त्ता मित्र, वरुण और अर्यमा ये सब समान प्रीति-युक्त होकर आगमन करें। हमारे सब वर्द्धयिता हों और शत्रुओंको परास्त करके, जिस प्रकार हमारा अन्न हीन न हो, ऐसा करें।

३ देवगण, मैं क्षिप्रकारी और तुम्हारी तरह प्रीति—युक्त होकर तुम्हारे श्रेष्ठ अतिथि (अग्नि) की स्तुति-मन्त्रों द्वारा स्तुति करता हूं। उत्तम कीर्तिवाले सूरि वरुण हमारे ही हों। वरुण शत्रुओंके प्रति हुँकार करते हुए अन्न द्वारा हमें परिपूर्ण करें।

४ देवो, दिन-रात नमस्कार करते हुए, पाप-विजयके लिये, दुग्धवती धेनुकी तरह तुम्हारे पास उपस्थित होते हैं। हम, यथासमय, अधः स्थानसे एक मात्र उत्पन्न नाना रूप खाद्य द्रव्य मिश्रित करके लाये हैं।

५ अहिर्बुध्ननामक अन्तरीक्षचारी देव हमें सुख दें। सिन्धु, वत्सकी तरह, हमें प्रसन्न करें। हम जलके नप्ता अग्निदेव स्तुति करते हुए प्राप्त हुए हैं। मनकी तरह वेगवाले मेघ उन्हें ले जाते हैं।

६ त्वष्टा हमारे सामने आवें। यज्ञके कारण त्वष्टा स्तोताओंके साथ समान-प्रीति-सम्पन्न हों। अतीव विशाल, वृत्रघातक और मनुष्योंके अभीष्ट-पूरक इन्द्र हमारे यज्ञस्थलमें आवें।

७ जैसे गायें बछड़ोंको चाटती हैं, वैसे ही अश्वतुल्य हमारा मन तरुण इन्द्रकी स्तुति करता है। जैसे स्त्रियाँ पतिको प्राप्त कर सम्मानवाली होती हैं, वैसे ही हमारी स्तुति, अतिशय यशोयुक्त इन्द्रको प्राप्तकर फल उत्पन्न करती है।

उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥८॥
प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥९॥
प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥१०॥
इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपि प्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥



१८७ सूक्त । पितु देवता । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत ॥१॥
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥२॥
उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः । मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३॥

---

८ अतीव बलशाली, समान-प्रीति-युक्त, पृषत् नामके अश्वसे सम्पन्न, अवनतस्वभाव और शत्रु-भक्षक मरुद्गण, मैत्रीवाले ऋषियोंकी तरह, द्यावापृथिवीके पाससे एकत्र हमारे इस यज्ञमें आवें।

९ मरुतोंकी महिमा प्रसिद्ध है; क्योंकि वे स्तुतिका प्रयोग जानते हैं। अनन्तर, जैसे प्रकाश संसारको व्याप्त करता है, वैसे ही सुदिनमें अन्धकार-विनाशक मरुतोंकी वृष्टि-प्रद सेना सारे अनुर्वर देशोंको उत्पादिका शक्तिसे सम्पन्न करती है।

१० ऋत्विको, हमारी रक्षाके लिये अश्विनीकुमारों और पूषाकी स्तुति करो। द्वेष-शून्य विष्णु, वायु और इन्द्र (ऋभुक्षा) नामके स्वतंत्र बल-विशिष्ट देवोंकी स्तुति करो। सुखके लिये मैं सारे देवोंको सामने लाऊँगा।

११ यजनीय देवो, तुम्हारी प्रसिद्ध ज्योति हमारे लिये प्राणदाता और निवास-स्थान बने। तुम्हारी अन्नवती ज्योति देवोंको प्रकाशित करे, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।



१ मैं, क्षिप्रकारी होकर, विशाल, सबके धारक और बलात्मक पितु (अन्न)की स्तुति करता हूँ। इनकी ही शक्तिसे त्रितदेव या इन्द्रने वृत्रकी सन्धियाँ काटकर उसका वध किया था।

२ हे स्वादु पितु, हे मधुर पितु, हम तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम हमारी रक्षा करो।

३ हे पितु, तुम मंगलमय हो। कल्याणदायी आश्रयदान द्वारा हमारे पास आकर, हमें सुख दो। हमारे लिये तुम्हारा रस अप्रिय न हो। तुम हमारे लिये मित्र और अद्वितीय सुखकर बनो।

तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः । दिवि वाता इव श्रिताः ॥४॥
तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो । प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥५॥
त्वे पितो महानां देवानां मनोहितम् । अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥६॥
यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम् । अत्राचिन्नो मधो पितोऽरम्भक्षाय गम्याः ॥७॥
यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥८॥
यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥९॥
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद्भव ॥१०॥
तं त्वा वयम् पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११॥

१८८ सूक्त । आप्री देवता । गायत्री छन्द ।

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥१॥

---

४ पितु, जैसे वायु अन्तरीक्षकाश आश्रय किये हुए हैं, वैसे ही तुम्हारा रस सारे संसारके अनुकूल व्याप्त है ।

५ स्वादुतम पितु, जो लोग तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, वे भोक्ता हैं । पितु, तुम्हारी कृपासे वे तुम्हें दान देते हैं तुम्हारे रसका आस्वादन करनेवालोंकी गर्दन ऊँची या मजबूत होती है ।

६ पितु, महान् देवोंने तुममें ही मन निहित किया है । पितु, तुम्हारी चारु बुद्धि और आश्रय द्वारा ही अहिक वध किया गया था ।

७ पितु, जिस समय मेघ प्रसिद्ध जलको लाते हैं, उस समय हे मधुर पितु, हमारे सम्पूर्ण भोजनके लिये पास आना ।

८ चूँकि हम यथेष्ट जल और यव आदि ओषधियोंको खाते हैं; इसलिये हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

९ सोम, तुम्हारे यव आदि और दुग्ध आदिसे मिश्रित अंशका हम भक्षण करते हैं । इसलिये हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

१० हे करम्भ ओषधि या सत्तु पिण्ड, तुम स्थूलता-सम्पादक, रोग-निवारक और इन्द्रियोद्दीपक बनो । हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

११ पितु, गायोंके पास जैसे हव्य गृहीत होता है, वैसे ही तुम्हारे पास स्तुति द्वारा हम रस ग्रहण करते हैं । यह रस देवोंको ही नहीं, हमें भी हृष्ट करता है ।

१ अग्नि, ऋत्विकों द्वारा भली भाँति आज समिद्ध नामक अग्नि सुशोभित होते हैं । हे सहस्रजित् देव, तुम कवि और दूत हो । तुम भली भाँति हव्य वहन करो ।

तनूनपादृतम् यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिषः ॥२॥

आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आवक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥३॥

प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥

विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥५॥

सुरुक्मे हि सुपेशसाधिश्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥६॥

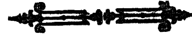
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥७॥

भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥८॥

त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥९॥

उपत्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१०॥

पुरोगा अग्निर्देवानाम् गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते । ११॥



१८९ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१॥

---

२ पूजनीय तनूनपात् नामक अग्नि हजार प्रकारोंसे अन्न धारण करके, यजमानके लिये, मधुर रससे युक्त हुए मिलते हैं ।

३ हे इळ्य नामक अग्नि, तुम हमारे द्वारा आहूत होकर हमारे लिये यज्ञभागी देवोंको बुलाओ । अग्नि, असीम अन्नके दाता हो ।

४ सहस्र वीरोंवाले और पूर्वाभिमुखमें अग्र भागसे युक्त जिस अग्निरूप कुशपर आदित्य लोग बैठे हैं, ऋत्विक् लोग, मंत्रके प्रभावसे, आच्छादित करते हैं ।

५ यज्ञशालाका विराट्, सम्राट्, विभु, प्रभु, बहु, और भूयान् (अग्निरूप) द्वार जल गिराता है ।

६ दीप्त आभरणसे युक्त और सुन्दर-रूप-संयुक्त अग्नि रूप दिवा-रात्रि, अतीव शोभाशाली होकर विराजित होते हैं । वे यहाँ बैठें ।

७ वह अत्युत्तम और प्रियभाषी अग्निरूप दैव होता तथा दिव्य कवि-द्वय हमारे यज्ञमें उपस्थित हों ।

८ हे अग्निरूपिणी भारती, सरस्वती और इळा, मैं तुम सबको बुलाता हूँ । जैसे मैं सम्पत्तिशाली हो सकूँ वैसा करो ।

९ अग्निरूप त्वष्टा रूप देनेमें समर्थ हैं । वह सारे पशुओंका रूप व्यक्त करते हैं । त्वष्टा, हमें बहुत पशु दो ।

१० हे अग्निरूप वनस्पति, तुम देवोंका पशु रूप अन्न उत्पन्न करो । अग्नि सब हव्योंको स्वादिष्ट करें ।

११ देवोंके अग्रगामी अग्नि गायत्री छन्दसे लक्षित हुआ करते हैं । स्वाहा देनेके समय वह प्रदीप्त होते हैं ।

---

१ दीप्तिविशिष्ट अग्नि, तुम सब प्रकारके ज्ञान जानते हो; इसलिये हमें सुमार्गपर, धनकी ओर, ले जाओ। तुम कुटिल पापको हमारे पाससे ले जाओ । हम बार-बार तुम्हें प्रणाम करते हैं ।

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शंयोः ॥२॥

अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥३॥

पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान्
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४॥

मा नो अग्नेव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ॥ ५ ॥

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्गृणानो अग्ने तन्वे वरूथम् ।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥ ६ ॥

त्वं ताँ अग्न उभयान्विविद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥७॥

---

२ अग्नि, तुम नये हो । स्तुतिके कारण हमें तुम सारे दुर्गम पापोंसे मुक्त करो। हमारा नगर अतीव प्रशस्त हो । हमारी भूमि प्रशस्त हो । तुम हमारे पुत्रों और अपत्योंको सुख प्रदान करो ।

३ अग्नि, तुम हमारे पाससे सब रोग दूर करो । जो अग्निहोत्र नहीं करते या जो हमारे विद्रोही हैं, उन्हें भी हटाओ । देव, तुम हमें शोभन फल देनेके लिये सारे मरण-रहित देवोंके साथ यज्ञशालामें आओ ।

४ अग्नि, तुम सतत आश्रय-दान द्वारा हमें पालित करो। हमारे प्रिय यज्ञ-गृहमें चारो ओर दीप्ति-युक्त बनो । युवक अग्नि, मैं तुम्हारा स्तोता हूं । मुझे आज और न पीछे कभी भय उत्पन्न हो ।

५ अग्नि, हमें अन्नग्रासी, हिंसक और शुभनाशक शत्रुके हाथमें नहीं समर्पण करना । हमें दन्त-विशिष्ट और दंशक सर्प आदिके हाथमें नहीं सौंपना; दन्त-शून्य श्रृंगादिवाले पशुओंको नहीं सौंपना । बलिष्ठ अग्नि, हिंसक और, राक्षस आदिके हाथ भी हमें नहीं सौंपना ।

६ यज्ञोत्पन्न अग्निदेव, तुम वरणीय हो । शरीर पुष्टिके लिये स्तुति करते हुए लोग तुम्हें प्राप्त करके सारे हिंसक और निन्दक व्यक्तियोंके हाथोंसे अपनेको बचाते हैं । अग्नि, जो सामने कुटिल आचरण करते हैं, ऐसे दुष्टका तुम दमन करो ।

७ यजनीय अग्नि, तुम यज्ञ करनेवाले और न करनेवाले लोगोंको जानकर यज्ञकर्त्ताकी ही कामना करो। आक्रमणकारी अग्नि, पवित्रतामिकाषी यजमान जैसे ऋत्विकोंके लिये शिक्षणीय है, उसी प्रकार तुम भी, यथासमय, यजमानके शिक्षणीय हो ।

अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनम् जीरदानुम् ॥ ८ ॥



१६० सूक्त । बृहस्पति देवता । त्रिष्टुप्छन्द ।

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वम् बृहस्पतिं वर्धयानव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥
तमृत्विया उपवाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः सह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥
उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत् सवितेव प्रबाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३ ॥
अस्य श्लोका दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायां अभिद्यून् ॥ ४ ॥
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये अनुददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ५ ॥

---

८ मंत्र-पुत्र और शत्रुनाशक इन अग्निके लिये ये सारे स्तोत्र बनाये गये हैं। हम इन अतीन्द्रिय-प्रकाश मंत्रों द्वारा सहस्र धन प्राप्त करेंगे। हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें।

---

१ होता, अभीष्टवर्षी मिष्टजिह्व और स्तुतियोग्य बृहस्पतिको पूजा-साधक मंत्रों द्वारा वर्द्धित करो। स्तोताको नहीं छोड़ते। दीप्तियुक्त और स्तूयमान बृहस्पतिको गाथा-पाठक देवगण और मनुष्यगण स्तुति सुनाते हैं।

२ वर्षा ऋतु-सम्बन्धिनी स्तुतियाँ सृजन-कर्तृ-रूप बृहस्पतिके पास जाती हैं। वह देवाभिलाषियोंको फल देते हैं वह सारे विश्वको व्यक्त करते हैं। वह स्वर्गव्यापी मातरिश्वाकी तरह वरणीय फल उत्पन्न करके यज्ञके लिये सम्भूत हुए हैं।

३ जैसे सूर्य किरणें प्रकाशित करनेकी चेष्टा करते हैं, वैसे ही बृहस्पति, यजमानोंकी स्तुति, अन्न, दान और मंत्रोंके स्वीकारके लिये चेष्टा करते हैं। राक्षसों और शत्रुओंसे शून्य बृहस्पतिकी शक्तिसे दिवसकालीन सूर्य भयंकर जन्तुकी तरह बलशाली होकर घूमते हैं।

४ भूलोक और द्युलोकमें बृहस्पतिकी कीर्ति व्याप्त होती है। बृहस्पति सूर्यकी तरह पूजित हव्य धारण करते हैं। वह प्राणियोंमें चैतन्य प्रदान करते और फल देते हैं। बृहस्पतिका आयुध शिकारी पुरुषोंके आयुधकी तरह जाता है उनका आयुध मायावियोंके सामने प्रतिदिन दौड़ता है।

५ बृहस्पति, जो पापी लोग कल्यणवाही बृहस्पतिको बूढ़ा बैल जानते हैं, उन्हें तुम वरणीय धन नहीं देना बृहस्पतिदेव, जो सोमयज्ञ करता है, उसपर तुम अवश्य कृपा रखते हो ।

सुप्रैतुः सुयवसो न पन्था दुर्नियंतुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥६॥

सं यं स्तुभोवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७॥

एवामहस्तुविजातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नःस्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥



१९१ सूक्त । जल, तृण और सूर्य देवता । त्रिष्टुप् और महा पंक्ति छन्द ।

कङ्कतो न कङ्कतोथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥१॥

अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ती परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिषती ॥२॥

शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टाः वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३॥

---

६ बृहस्पति, तुम सुखगामी और सुखाद्य-विशिष्ट यजमानके मार्गरूप और दुष्टहन्ता राजाके बन्धु हो । जो हमारी निन्दा करते हैं, उनके सुरक्षित होनेपर भी, उन्हें रक्षा-शून्य करो ।

७ जैसे मनुष्य राजासे मिलता है, तटद्वयवर्त्तिनी नदी जैसे समुद्रमें मिलती है, वैसे ही सारी स्तुतियाँ बृहस्पतिमें मिलती हैं । वह विद्वान् हैं । आकाशचारी पक्षीको तरह बृहस्पति-रूपसे जल और तट, दोनोंको देखते हैं । अथवा वृष्टिकामी अभिज्ञ बृहस्पति, मध्यमें स्थित होकर तट और जल दोनोंको उत्पन्न करते हैं ।

८ इसी रूपसे बृहस्पति महान्, बलवान्, अभीष्टवर्षी, दीप्तिमान् होकर और बहुतोंके उपकारके लिये उत्पन्न हुए हैं । उनका स्तव करनेपर वह हमें वीर-विशिष्ट करें, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

---

१ अल्प विषवाले, महा विषवाले, जलीय अल्प विषवाले, दो प्रकारके, जलचर और स्थलचर, दाहक प्राणी तथा अदृश्य प्राणी मुझे विष द्वारा, अच्छी तरह, लिप्त किये हुए हैं ।

२ जो औषध खाता है, वह अदृश्य विषधर प्राणोको विनष्ट करता है और प्रत्यावर्तन कालमें उसे विनष्ट करता है । विनाशके समय नाश करता और पिसे जानेके समय पिसता है ।

३ शर, कुशर, दर्भ, सैर्य, मुञ्ज वीरण, आदि घासोंमें छिपे विषधरगण मिलकर मुझे लिप्त करते हैं ।

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥४॥

एत उत्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६॥

ये अंस्या ये अंग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।
अदृष्टाः किञ्चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥७॥

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जंभयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥

उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९॥

---

४ जिस समय गायें गोष्ठमें बैठी रहती हैं, जिस समय हरिण, अपने-अपने स्थानोंपर, विश्राम करते हैं और जिस समय मनुष्य निद्रामें रहता है, उस समय अदृश्य विषधर मुझे लिप्त किये हुए हैं।

५ तस्करकी तरह इन सबको रातको देखा जाता है। वे, अदृश्य होनेपर भी, सारे संसारको देखते हैं; इसलिये मनुष्य सावधान हो जायँ।

६ स्वर्ग पिता, पृथिवी माता, सोम भ्राता और अदिति भगिनी हैं। अदृष्ट-सर्वदर्शी लोग, तुम लोग अपने-अपने स्थानपर रहो और यथासुख गमन करो।

७ जो विषधर स्कन्धवाले हैं, जो अंगवाले (सर्प) हैं, जो सूचीवाले (वृश्चिकादि) हैं, जो अतीव विषधर हैं, वैसे अदृष्ट विषधरगणका यहाँ क्या है? तुम सब लोग हमारे पाससे चले जाओ।

८ पूर्व दिशामें सूर्य उगते हैं, वह सारे संसारको देखते और अदृष्ट विषधरोंका विनाश करते हैं। वह सारे अदृष्टों और यातुधानी [राक्षसी वा महोरगी] का विनाश करते हैं।

९ सूर्य, बड़ी संख्यामें, विषोंका विनाश करते हुए, उदित होते हैं। सर्वदर्शी और अदृश्योंके विनाशक आदित्य जीवोंके मंगलके लिये उदित होते हैं।

सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्न न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१०॥

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥११॥

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरान्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२॥

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनम्
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३॥

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्तस्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥१४॥

---

१० शौण्डिकके घरमें चर्ममय सुरापात्रकी तरह मैं सूर्यमण्डलमें विष फेंकता हूँ। जैसे पूजनीय सूर्यदेव प्राण-त्याग नहीं करते, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते। अश्व द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं। विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत कर देती है।

११ जैसे क्षुद्र शकुन्तिका पक्षीने तुम्हारा विष खाकर उगल दिया है, जैसे उसने प्राण त्याग नहीं किया, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करेंगे। अश्व द्वारा परिचालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं। विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत करती है।

१२ अग्निकी सातों जिह्वाओंमेंसे प्रत्येकमें श्वेत, लोहित और कृष्ण आदि तीन वर्ण अथवा २१ प्रकारके पक्षी विषकी पुष्टिका विनाश करते हैं। वे कभी नहीं मरते; वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते। अश्व द्वारा परिचालित होकर सूर्य दूरस्थित विषका अपनयन करते हैं। विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत करती है।

१३ मैं सारी विष-नाशक निन्यानवे नदियोंके नामोंका कीर्तन करता हूँ। अश्व द्वारा चालित होकर सूर्य्यदेव दूर-स्थित विषका अपनोदन करते हैं। विष, मधुविद्या तुझे अमृत बना देगी।

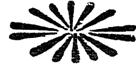
१४ जैसे स्त्रियाँ घड़ेमें जल ले जाती हैं, हे देह, वैसे ही २१ मयूरियाँ (पक्षी) और सात नदियाँ तुम्हारा विष दूर करें।

इयत्तकः कुषम्भक तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥१५॥
कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥

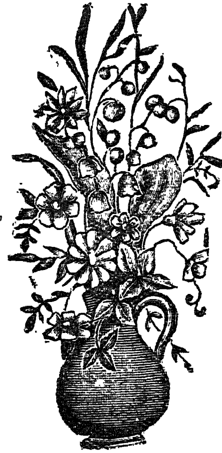
१५ देह, अतीव छोटा नकुल तुम्हारा विष दूर करे। यदि न करे, तो मैं इस कुत्सित जन्तुको लोष्ट्र द्वारा मार डालूँगा। मेरे शरीरसे विष दूर हो और दूर देशमें चला जाय।

१६ पर्वतसे आकर, उस समय, नकुलने कहा—"वृश्चिकका विष रस-शून्य है।" हे वृश्चिक, तुम्हारा विष रसशून्य है।

पञ्चम अध्याय समाप्त



प्रथम मण्डल समाप्त



द्वितीय मण्डल

२ अष्टक । २ मण्डल । ५ अध्याय । १ अनुवाक । १ सूक्त ।

अग्नि देवता । गृत्समद ऋषि ।* जगती छन्द ।

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥१॥
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥२॥

---

१ मनुष्योंके स्वामी अग्निदेव, यज्ञ-दिनमें तुम उत्पन्न होओ । सर्वतः दीप्तिशाली होकर उत्पन्न होओ । पवित्र होकर उत्पन्न होओ । जलसे उत्पन्न होओ । पाषाणसे उत्पन्न होओ । वनसे उत्पन्न होओ । ओषधिसे उत्पन्न होओ ।

२ अग्निदेव, होता, पोता, ऋत्विक् और नेष्टा आदिका कार्य तुम्हारा ही कर्म है । तुम अग्नीध्र हो । जिस समय तुम यज्ञकी इच्छा करते हो, उस समय प्रशास्ताका कर्म भी तुम्हारा ही है । तुम्हीं अध्वर्यु और ब्रह्मा नामके ऋषि हो । हमारे घरमें तुम ही गृहपति हो ।×

---

* ऋग्वेदके प्रथम और दशम मण्डलोंके रचयिता अनेक ऋषि हैं; परन्तु अवशिष्ट मण्डलोंके एक-एक ऋषि और उनके वंशीय हैं । जिन मण्डलोंके जो ऋषि रचयिता हैं, उनके नाम ये हैं—२य के गृत्समद, ३यके विश्वामित्र, ४ र्थके वामदेव, ५मके अत्रि, ६ ष्ठके भारद्वाज, ७मके वसिष्ठ, ८ मके कण्व और ९ मके अङ्गिरा ऋषि वा इन ऋषियोंके वंशोद्भव रचयिता हैं ।

कहा जाता है, अङ्गिरा ऋषिके वंशीयशु नहोत्र ऋषिके पुत्रका नाम गृत्समद था । एक बार असुर लोग गृत्समदको पकड़ ले गये । पीछे इन्द्रने गृत्समदका उद्धार किया और उनको भृगुवंशीय शुनकके पुत्र शौनक कहकर अभिहित किया । शौनककी अनुक्रमणिकासे भी यही विदित होता है । इससे मालूम पड़ता है, अङ्गिराके वंशको छोड़कर गृत्समदने भृगु-वंशीयता प्राप्त की थी । महाभारत (अनुशासन पर्व)से विदित होता है कि, गृत्समद हैहय क्षत्रियोंके राजा और वीतिहव्यके पुत्र थे । एक बार काशीराज प्रतर्दनके भयसे वीतिहव्य भृगुके आश्रममें जा छिपे । भृगुने उन्हें शरणमें रख लिया । वीति-हव्यको खोजते हुए प्रतर्दन भी भृगुके आश्रममें जा धमके । पूछनेपर भृगुने कहा कि, मेरे आश्रममें क्षत्रिय नहीं रहता । ऋषि-वाक्य असत्य नहीं होता; इसलिये इसी दिनसे वीतिहव्य ब्राह्मण हो गये और उन्हींके पुत्र गृत्समद ब्रह्मर्षि । किसी-किसी पुराणके मतसे तो गृत्समद सुहोत्रके पुत्र और शुनक वा शौनकके पिता हैं । गृत्समदने ही जाति-विभागकी सृष्टि की—यह भी उल्लेख है । किसीके मतसे नैमिषारण्यमें जो द्वादशवर्ष-व्यापी यज्ञ हुआ था, उसमें यही गृत्समद (शौनक) प्रधान थे ।

× ये यज्ञके कई ऋत्विकोंके नाम हैं । बड़े यज्ञमें १६ ऋत्विक् रहते थे । १म मण्डलके १०७सूक्तमें इनका विवरण है ।

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥३॥
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्यं सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥४॥
त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ॥५॥
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषाविधतः पासि नु त्मना ॥६॥
त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिष त्वं पायुर्दमे यस्तेविधत् ॥७॥
त्वामग्ने दम आविश्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥८॥

३ अग्निदेव, तुम साधुओंका मनोरथ पूर्ण करते हो, इसलिये तुम्ही विष्णु हो, तुम बहुलोंके स्तुतिपात्र हो; तुम नमस्कारके योग्य हो। धनवान् स्तुतिके अधिपति, तुम मन्त्रोंके स्वामी हो, तुम विविध पदार्थोंकी सृष्टि करते और विभिन्न बुद्धियोंमें रहते हो।

४ अग्नि, तुम धृतव्रत हो; इसलिये तुम राजा वरुण हो। तुम शत्रुओंके विनाशक और स्तुति-योग्य हो, इसलिये तुम मित्र हो। तुम साधुओंके रक्षक हो; इसलिये तुम अर्यमा हो। अर्यमाका दान सर्वव्यापी है। तुम अंश (सूर्य) हो। अग्निदेव, तुम हमारे यज्ञमें फलदान करो।

५ अग्निदेव, तुम त्वष्टा हो। तुम अपने सेवकके वीर्यरूप हो। सारी स्तुतियाँ तुम्हारी ही हैं। तुम्हारा तेज हितकारी है। तुम हमारे बन्धु हो। तुम शीघ्र उत्साहित करते हो और हमें उत्तम अश्व-युक्त धन देते हो। तुम्हारे पास बहुत धन है। तुम मनुष्योंके बल हो।

६ अग्नि, तुम महान् आकाशके असुर रुद्र हो। तुम मरुतोंके बलस्वरूप हो। तुम अन्नके ईश्वर हो। तुम सुखके आधार-स्वरूप हो। लोहित-वर्ण और वायु-सदृश अश्वपर जाते हो। तुम पूषा हो, तुम स्वयं कृपा करके परिचालक मनुष्योंकी रक्षा करते हो।

७ अग्नि, अलंकारकारी यजमानकेलिये तुम स्वर्गदाता हो। तुम प्रकाशमान सूर्य और रत्नोंके आधार-स्वरूप हो। नृपति, तुम भजनीय धनदाता हो। यज्ञ-गृहमें जो यजमान तुम्हारी सेवा करता है, उसको तुम रक्षा करते हो।

८ अग्नि, लोग अपने-अपने घरमें तुम्हें प्राप्त करते और तुम्हें विभूषित करते हैं। तुम मनुष्योंके पालक, दीप्ति-मान् और हमारे प्रति अनुग्रह-सम्पन्न हो। तुम्हारी सेवा अत्युत्तम है। तुम सारे हव्योंके ईश्वर हो। तुम हजारों, सेकड़ो और दशों फल देते हो।

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेविधत्त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥९॥
त्वमग्ने ऋभुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे।
त्वं विभास्यनुधक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ॥१०॥
त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्व होत्रा भारती वर्धसे गिरा।
त्वमिला शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११॥
त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तवस्पार्हे वर्ण आ सन्दृशि श्रियः।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥१२॥
त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३॥
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम्।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥१४॥
त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥

९ अग्नि, यज्ञ द्वारा लोग तुम्हें तृप्त करते हैं; क्योंकि तुम पिता हो। तुम्हारा भ्रातृत्व प्राप्त करनेके लिये लोग कर्म द्वारा तुम्हें तृप्त करते हैं। तुम भी उनका शरीर प्रदीप्त कर देते हो। जो तुम्हारी सेवा करता है, तुम उसके पुत्र हो। तुम सखा, शुभकर्त्ता और शत्रु-निवारक होकर रक्षा करो।

१० अग्नि, तुम ऋभु हो। तुम प्रत्यक्ष स्तुति-योग्य हो। तुम सर्वत्र विश्रुत धन और अन्नके स्वामी हो। तुम अतीव उज्ज्वल हो। अंधकारके विनाशके लिये तुम धीरे-धीरे काष्ठ आदिका दहन करते हो। तुम भली भाँति यज्ञका निर्वाह और उसके फलका विस्तार करते हो।

११ अग्निदेव, तुम हव्यदाताके लिये अदिति हो। तुम होत्रा और भारती हो। स्तुति द्वारा तुम वृद्धि प्राप्त करो। तुम सौ वर्षोंकी भूमि हो। तुम दानमें समर्थ हो। हे धन-पालक, तुम वृत्रहन्ता और सरस्वती हो।

१२ अग्निदेव, अच्छी तरह पुष्ट होनेपर तुम्हीं उत्तम अन्न हो। तुम्हारे स्पृहणीय और उत्तम वर्णमें ऐश्वर्य रहता है। तुम्हीं अन्न, त्राता, बृहत्, धन, बहुल और सर्वत्र विस्तीर्ण हो।

१३ अग्निदेव, आदित्योंने तुम्हें मुख दिया है। हे कवि, पवित्र देवताओंने तुम्हें जीभ दी है। दानके समय एकत्र देवता यज्ञमें तुम्हारी अपेक्षा करते और तुम्हें ही आहुति रूपमें दिया हुआ हव्य भक्षण करते हैं।

१४ अग्निदेव, सारे अमर और द्रोह-रहित देवगण तुम्हारे मुखमें, आहुतिरूपमें, प्रदत्त हविका भक्षण करते हैं। मर्त्यगण भी तुम्हारे द्वारा अन्नादिका आस्वाद पाते हैं। तुम लता आदिके गर्भ—(उत्ताप)-रूप हो। पवित्र होकर तुमने जन्म ग्रहण किया है।

१५ अग्निदेव, बल द्वारा तुम प्रसिद्ध देवोंके साथ मिलो और उनसे पृथक् होओ। सुजात देव, तुम उनसे बलिष्ठ बनो; क्योंकि तुम्हारी ही महिमासे यह यज्ञ-स्थित अन्न शब्दायमान द्यावापृथिवीके बीच व्याप्त होता है।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्रहिनेषि वस्य आबृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥



२ सूक्त । अग्नि देवता । जगती छन्द ।

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥१॥
अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगाक्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥२॥
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससन्दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३॥
तमुक्षमाणं रजसि स्व आदमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आदधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥४॥
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्नस्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ॥५॥

---

१६ अग्नि, जो मेधावी स्तोताओंको गौ और अश्व आदि दान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्थानमें ले चलो। हम वीरोंसे युक्त होकर यज्ञमें विशाल मन्त्र पढ़ेंगे।

---

१ अग्निदेव दीप्तिमान्, शोभन-अन्न-सम्पन्न, स्वर्गदाता, उद्दीप्त, होम-निष्पादक और बलप्रदाता हैं। इन सर्वभूतज्ञ अग्निको यज्ञ द्वारा वर्द्धित करो और यज्ञ तथा विस्तृत स्तुति द्वारा पूजा करो।

२ अग्निदेव, जैसे दिनमें गायें बछड़ेकी इच्छा करती हैं, वैसे ही तुम्हें यजमान लोग दिन और रात्रिमें चाहते हैं। अनेकोंके माननीय अग्निदेव, तुम संयत होकर द्युलोकमें व्याप्त हो। मनुष्योंके यज्ञोंमें सदा रहते हो। रातमें प्रदीप्त होते हो।

३ अग्नि सुदर्शन, द्यावापृथिवीके ईश्वर, धन-पूर्ण रथके सदृश, दीप्तवर्ण, ज्वाला-स्वरूप, कार्यसाधक और यज्ञ-भूमिमें प्रशंसित हैं। देवता लोग उन्हीं अग्निको संसारके मूल देशमें स्थापित करते हैं।

४ अग्निदेव अन्तरीक्षमें वृष्टि-जल-दाता, चन्द्रमाकी तरह दीप्ति-विशिष्ट, अन्तरीक्षगामी ज्वाला द्वारा लोगोंको चैतन्य देनेवाले, जलकी तरह रक्षक और सबकी जनयित्री द्यावापृथिवीको व्याप्त करनेवाले हैं। उन्हीं अग्निको उस विजन गृहमें स्थापित किया गया है।

५ होम-निष्पादक होकर अग्निदेव सारे यज्ञोंको व्याप्त करें। मानवोंने हव्य और स्तुति द्वारा उन्हें अलंकृत किया है। दाहक-विनाशक अग्नि वर्द्धमान ओषधियोंके बीच जलकर, जैसे नक्षत्र आकाशमें चमकते हैं, वैसे ही, द्यावापृथिवीको प्रकाशित करते हैं।

स नो रेवत् समिधानः स्वस्तये सन्ददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देववीतये ॥६॥
दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥७॥
स इधान उषसो रम्या अनु स्वर्णदीदेदरुषेण भानुना।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८॥
एवानो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥९॥
वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमाजनाँ अति।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥१०॥
स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त् सुजाता इषयन्त सूरयः।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११॥

---

६ अग्निदेव, हमारे मङ्गलके लिये क्रमागत और वर्द्धित धन देते हुए तुम प्रज्वलित होकर प्रकाशित होओ। अग्नि, द्यावापृथिवीमें हमें फल दो। मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हव्य देवोंके भक्षणके लिये लाया जाय।

७ अग्नि, हमें यथेष्ट गौ, अश्व आदि तथा सहस्र-संख्यक पुत्र, पौत्र आदि दो। कीर्त्तिके लिये अन्न दो और अन्नका द्वार खोलो। उत्कृष्ट यज्ञ द्वारा द्यावापृथिवीको हमारे अनुकूल करो। आदित्यकी तरह उषाएँ तुम्हें प्रकाशित करती हैं।

८ रमणीय उषामें अग्नि प्रज्वलित होकर, सूर्यकी तरह, उज्ज्वल किरणोंमें देदीप्यमान होते हैं। मनुष्योंके होम-साधक, स्तुति द्वारा स्तूयमान, उत्तम यज्ञवाले और प्रजाओंके स्वामी अग्नि यजमानके पास, प्रिय अतिथिकी तरह, आते हैं।

९ अग्नि, तुम यथेष्ट स्तुतिवाले हो। देवोंके पूर्ववर्ती मनुष्योंकी स्तुति तुम्हें आप्यायित करती है। दूधवाली गायकी तरह यह स्तुति यज्ञस्थित स्तोताकी तरह स्वयं अपरिमित और विविध प्रकार धन प्रदान करती है।

१० अग्नि, हम तुम्हारे दिये अन्न और अश्वसे यथेष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके सबको लाँघ जायँगे और इससे, हमारी अनन्त और दूसरोंके लिये अप्राप्य धनराशि सूर्यकी तरह, पाँच वर्णों (चार वर्ण और पञ्चम निषाद)के ऊपर दीप्तिमान होगी।

११ शत्रु-पराजेता अग्नि, तुम हमारी स्तुतिके योग्य हो। हमारा स्तोत्र श्रवण करो। सुजन्मा स्तोता लोग तुम्हारे ही उद्देशसे स्तुति करते हैं। अग्नि, रस और पुत्रकी प्राप्तिके लिये हव्य-विशिष्ट यजमानके यागगृहमें दीप्य-मान और यजनीय अग्निकी पूजा की जाती है।

उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२॥
ये स्तोतृभ्यो गो अग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥



३ सूक्त। आप्री देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ्विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥१॥
नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन्तिस्रो दिवः प्रति मह्वा स्वर्चिः ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥२॥
ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य ।
स आवह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥३॥
देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४॥

---

१२ सर्वभूतज्ञ अग्नि, तुम्हारा स्तोता और मेधावी यजमान—हम दोनों सुख-प्राप्तिके लिये तुम्हारे ही होंगे। हमारे निवास-हेतु, अतिशय आह्लाद-प्रद, प्रभूत और पुत्र—पौत्र आदिसे युक्त धन दो ।

१३ अग्नि, जो मेधावी लोग स्तोताओंको गौ और अश्व आदि धन प्रदान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्थानमें ले चलो। वीर-युक्त होकर हम यज्ञमें बृहत् मन्त्रका उच्चारण करेंगे।

---

१ वेदीपर निहित समिद्ध नामक अग्नि सारे गृहके सामने अवस्थित हैं। होम-निष्पादक, विशुद्धताकारी, प्राचीन, प्रज्ञा-संयुक्त, द्योतमान और पूजा-योग्य अग्नि देवोंकी पूजा करें ।

२ नराशंस नामक अग्नि, सुन्दर ज्वालासे युक्त होकर, अपनी महिमासे, प्रत्येक आहुति—स्थल और प्रकाशमान तीनों लोकोंको व्यक्त करते हुए, घी बरसानेकी इच्छासे, हव्य स्निग्ध करके, यज्ञके सामने देवोंको प्रकाशित करें ।

३ इळित या इळा नामक अग्निदेव, हमपर प्रसन्न चित्तसे, यागकर्मके योग्य होकर, आज, हमारे लिये, मनुष्योंके पूर्ववर्त्ती होकर देवोंका यज्ञ करो। मरुतों और अच्युत इन्द्रका सम्बोधन करो। ऋत्विको, कुशपर बैठे हुए इन्द्रका यज्ञ करो ।

४ द्योतमान कुश-स्वरूप अग्नि, हमारे धन-लाभके लिये, इस वेदीपर अच्छी तरह विस्तृत हो जाओ। तुम सदा बढ़नेवाले और वीर-प्रदाता हो। वसुओ, विश्वदेवो, यज्ञ-योग्य आदित्यो, तुम घी-लगाये कुशपर बैठो ।

विश्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः।
व्यचस्वतीर्विप्रथन्तामजुर्यावर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५॥

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६॥

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजुयक्षतः समृचा वपुष्टरा।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७॥

सरस्वती साधयन्ती धियं न इलादेवी भारती विश्वतूर्तीः।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥८॥

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः।
प्रजां त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥९॥

वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥१०॥

५ हे द्योतमान्, द्वार-रूप अग्नि, तुम खुल जाओ। तुम महान् हो। लोग नमस्कार करते हुए तुम्हारे लिये हवन करते और सरलतासे तुम्हारे पास जाते हैं। तुम व्यापक, अहिंसनीय, वीर-विशिष्ट, यशोयुक्त और वर्णनीय रूपके सम्पादक हो। तुम भली भाँति प्रसिद्ध होओ।

६ हमें अच्छे कर्म-फल देनेवाली अग्नि-रूप उषाएँ रात्रिकी वयन-चतुरा दो रमणियोंकी तरह, सहायताके लिये, परस्पर आते-आते, यज्ञका रूप बनानेके लिये, परस्पर अनुकूल होकर बढ़े तन्तुका वयन करती हैं। वे अतीव फलदाता और जल-युक्त हैं।

७ अग्निरूप दिव्य दो होता पहले ही यज्ञके योग्य हैं। वे सर्वापेक्षा विद्वान् और विशाल शरीरसे संयुक्त हैं। वे मन्त्र द्वारा अच्छी तरह पूजा करते और यथासमय देवोंके लिये यज्ञ करते हैं। वे पृथिवीकी नाभि-रूपिणी उत्तर-वेदी के गार्हपत्य आदि तीन अग्नियोंके प्रति गमन करते हैं।

८ हमारे यज्ञकी निष्पादिका अग्निरूप सरस्वती, इला और सर्वव्यापिका भारती, ये तीनों देवियाँ याग-गृहका आश्रय करके, हव्य-लाभके लिये, निर्दोष रूपसे, हमारे यज्ञका पालन करें।

९ अग्नि-स्वरूप त्वष्टाकी दयासे हमारे पिङ्ग वर्ण, यज्ञकर्ता, अन्नदाता, क्षिप्रकर्त्ता, देवाभिलाषी और वीर पुत्र उत्पन्न हो। त्वष्टा हमें कुल-रक्षक सन्तान दें। देवोंका अन्न हमारे पास आवे।

१० वनस्पति-रूप अग्नि हमारे कर्म जानकर हमारे पास हैं। विशेष कर्म द्वारा अग्नि भली भाँति हव्य पकाते हैं। दिव्य शमिता नामके अग्नि तीन प्रकारसे अच्छी तरह सिक्त हव्यको जानकर उसे देवोंके निकट ले जायँ।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥

४ सूक्त । अग्नि देवता । भृगुके अपत्य सोमाहुति ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्योभूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥१॥
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्विता दधुर्भृगवो विक्ष्वायोः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२॥
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥३॥
अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥४॥
आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत् ॥५॥

११ मैं अग्निमें घी डालता हूँ। घृत ही उनकी जन्मभूमि, आश्रय-स्थान और दीप्ति है। अभीष्टवर्षी अग्नि, हव्य देनेके समय देवोंको बुलाकर उनकी प्रसन्नता उत्पादन करो और अग्नि-रूप स्वाहाकारमें प्रदत्त हव्य ले जाओ।

---

१ यजमानो, मैं तुम्हारे लिये अतीव दीप्तियुक्त, निष्पाप, यजमानोंके अतिथि-स्वरूप और हव्य-युक्त अग्निको बुलाता हूँ। वे सर्व-भूत-ज्ञाता और मनुष्योंसे देवोंतकके धारणकर्त्ता हैं।

२ भृगुओंने अग्निकी सेवा करके उन्हें जलके निवासस्थान, अन्तरीक्ष और मानवोंकी सन्तानोंके बीच स्थापित किया था। शीघ्रगामी अश्ववाले और देवोंके स्वामी अग्नि हमारे समस्त विरोधी प्राणियोंको पराभूत करें।

३ स्वर्ग जाते समय देवोंने, मित्रकी तरह, अग्निको मनुष्योंके बीच स्थापित किया था। वह अग्नि हव्यदाता यजमानके लिये, उसके योग्य गृहमें स्थापित होकर, अपनी अभिलाषा करनेवाली रात्रियोंमें दीप्त होते हैं।

४ अपने शरीरकी पुष्टि करनेके सदृश अग्निके शरीरकी पुष्टि करना भी रमणीय है। जिस समय अग्नि चारो ओर फैलते और काष्ठको भस्म करते हैं, उस समय उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर हो जाता है। जैसे रथका अश्व बार-बार पूँछ कँपाता है, वैसे ही अग्नि भी काठोंपर अपनी शिखा कँपाते हैं।

५ मेरे सहयोगी स्तोता लोग अग्निके महत्त्वकी स्तुति करते हैं, वे आग्रही ऋत्विकोंके पास अपना रूप प्रकाशित करते हैं। अग्नि रमणीय हव्यके लिये विचित्र किरणमालासे प्रकाशित होते हैं। अग्नि वृद्ध होकर भी बार-बार क्षणमें युवा हो सकते हैं।

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६॥
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयं न भूम ॥७॥
नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥८॥
त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥९॥

५ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षं जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥१॥
आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥२॥

---

६ तृषातुरकी तरह जो अग्नि वनोंको दग्ध करते हैं, जलकी तरह इधर-उधर जाते हैं, रथवाहक अश्वको तरह शब्द करते हैं, वह कृष्ण-मार्ग और तापक होनेपर भी नभोमण्डलवाले द्युलोककी तरह शोभन हैं ।

७ जो अग्नि विश्वको व्याप्त करते हैं, जो अग्नि विस्तृत पृथिवीपर बढ़ते हैं, जो अग्नि रक्षक-रहित पशुकी तरह अपनी इच्छासे गमन कर विचरण करते हैं, वही दीप्तिमान् अग्नि सूखे वृक्ष आदिको जलाकर, व्यथाकारी कण्टक आदिको दूरकर, अच्छी तरह रसास्वदन करते हैं ।

८ अग्निदेव, तुमने पहले, प्रथम सवनमें, जो रक्षा की थी, उसे हम आज भी स्मरण करके तृतीय सवनमें मनोहर स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं । अग्नि, तुम हमें वीर-विशिष्ट करो । तुम हमें महान् कीर्त्तिमान् करो । हमें सुन्दर अपत्य और धन दो ।

९ अग्नि, गृत्समद-वंशीय ऋषि लोग तुम्हें रक्षक पाकर, छन्दका पाठ करते हुए, गुहामें अवस्थित उत्कृष्ट स्थान पर वर्त्तमान धन-विशेष प्राप्त करेंगे । वे उत्तम पुत्र आदिको प्राप्त कर शत्रुओंको परास्त करेंगे । मेधावी और स्तुतिकारी यजमानोंको बहुत अधिक और प्रसिद्ध धन दो ।

---

१ होता, चैतन्यदाता और पिता अग्नि पितरोंकी रक्षाके लिये उत्पन्न हुए । हम भी हव्य-युक्त होकर अतीव पूजनीय, जीतने और रक्षा करने योग्य धन प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ।

२ यज्ञ-नेता अग्निमें सात रश्मियाँ विस्तृत हैं । देवोंके पोताके समान, अग्नि मनुष्योंके पोताकी तरह, यज्ञके अष्टम स्थानीय होकर व्याप्त होते हैं ।

दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरुतत् ।
परिविश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥३॥
साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वयाइवानुरोहते ॥४॥
ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुविन्तिसृभ्य आवरं स्वसारो या इदं ययुः ॥५॥
यदीमातुरुपस्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥६॥
स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमाररिमा वयम् ॥७॥
यथा विद्वाँ अरङ्करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥८॥



६ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।
इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥१॥

---

३ अथवा इस यज्ञमें ऋत्विक्‌गण जो हव्यादि धारण करते, जो मंत्र आदि पढ़ते हैं, सो सब अग्निदेव जानते हैं ।

४ पवित्र प्रशास्ता अग्नि पुण्यक्रतुके साथ उत्पन्न हुए हैं । जैसे लोग फल तोड़नेके लिये एक डालसे दूसरी डाल-पर जाते हैं, वैसे ही यजमान, अग्निके यज्ञको अवश्य फल-दाता समझकर, एकके अनन्तर दूसरा अनुष्ठान करता है ।

५ जो अँगुलियाँ इस कार्यमें लगी रहती हैं, वे इन नेष्टा अग्निके लिये धेनु-स्वरूप हैं और इनकी सेवा करती हैं तथा अग्निरूप होकर इनके गार्हपत्य आदि तीन उत्कृष्ट रूपोंकी सेवा करती हैं ।

६ जिस समय जुहू मातृ-रूपिणी वेदीके पास भगिनीके समान घृत-पूर्ण करके रखा जाता है, उस समय जैसे वृष्टिमें यव पुष्ट होता है, वैसे ही अध्वर्युरूप अग्नि भी हृष्ट होते हैं ।

७ ये ऋत्विक्-रूप अग्नि अपने कर्मके लिये ऋत्विक्‌का कर्म करते हैं । हम भी, उसके अनन्तर ही, स्तोम, यज्ञ और हव्य प्रदान करेंगे ।

८ अग्नि, तुम्हारी महिमा जाननेवाला यजमान जैसे सारे देवोंकी भली भाँति तृप्ति कर सके, वैसा करो । हम जिस यज्ञको करेंगे, वह भी, अग्नि, तुम्हारा ही है ।

---

१ अग्नि, तुम मेरी इस समिधा और आहुतिका उपभोग करो; मेरी यह स्तुति सुनो ।

अयाते अग्ने विधेमोर्जोनपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥२॥
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसन्द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्यम सपर्यवः ॥३॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद्द्वेषांसि ॥४॥
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ॥५॥
ईळाना यावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरागहि ॥६॥
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७॥
सविद्वाँ आच पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् । आचास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥८॥



७ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमाभर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥
मानो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षितस्या उतद्विषः ॥२॥
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ॥३॥

२ अग्नि, हम इस आहुतिके द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे । बलपुत्र, विस्तीर्ण-यज्ञशाली और सुजन्मा अग्नि, इस स्तुतिसे तुम्हें हम प्रसन्न करेंगे ।

३ धनद अग्नि, तुम स्तुतिके योग्य और यज्ञके अभिलाषी हो । हम तुम्हारे सेवक हैं । स्तुति द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे ।

४ अग्नि, तुम धनवान्, विद्वान् और धनद हो । उठो और हमारे शत्रुओंको दूर करो ।

५ वही अग्नि, हमारे लिये, अन्तरीक्षसे वृष्टि प्रदान करते हैं । वे हमें महान् बल और अनन्त प्रकारके अन्न दें ।

६ तरुणतम देव-दूत, अतिशय यजनीय अग्नि, मैंने तुम्हारी स्तुति की है; इस लिये आओ । मैं तुम्हारा पूजक हूँ और तुम्हारा प्रश्रय चाहता हूँ ।

७ मेधावी अग्नि, तुम मनुष्योंके हृदयको पहचानते हो; तुम उभयरूप जन्म जानते हो । तुम संसार और बन्धुओंके दूत-रूप हो ।

८ अग्नि, तुम विद्वान् हो । हमारी मनःकामना पूर्ण करो । तुम चैतन्यवाले हो । यथाक्रम तुम देवोंका यज्ञ करो और कुशके ऊपर बैठो ।

---

१ हे तरुणतम, भरणकर्ता और व्याप्त अग्नि, अतिशय प्रशंसनीय, दीप्तिमान् और बहुजन-वाञ्छित धन ले आओ ।

२ अग्नि, मनुष्यों या देवोंकी शत्रुता हमें पराभूत न करे । हमें दोनों प्रकारके शत्रुओंसे बचाओ ।

३ अग्नि, जलकी धाराकी तरह हम सारे शत्रुओंको स्वयं ही लाँघ जायँगे ।

शुचिः पावक वन्द्योग्ने बृहद्वि रोचसे। त्वं घृतेभिराहुतः ॥४॥
त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः। अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥
द्रु वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः। सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥६॥



८ सूक्त। अग्नि देवता। गृत्समद ऋषि। गायत्री अनुष्टुप् छन्द।
वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुपस्तुहि। यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥१॥
यः सुनीथोद्दाशुषेजुर्यो जरयन्नरिम्। चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥
य उ श्रिया दमेष्वादोषोषसि प्रशस्यते। यस्य व्रतं न मीयते ॥३॥
आ यः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा। अञ्जानो अजरैरभि ॥४॥
अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः। विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५॥
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम्।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभिष्याम पृतन्यतः ॥६॥

४ अग्नि, तुम शुद्ध, पवित्रकर्त्ता और वन्दनीय हो। घृत द्वारा आहुत होकर तुम अत्यन्त दीप्त हुए हो।

५ भरणकर्त्ता अग्नि, तुम हमारे हो। तुम बन्ध्या गौ, वृष और गर्भिणी गौ द्वारा आहुत हुए हो।

६ जिनका अन्न समिधा है, जिनमें घृत सिक्त होता है, वही पुरातन, होमनिष्पादक, वरणीय और बलके पुत्र अग्नि अतीव रमणीय हैं।

---

१ होता, अन्नाभिलाषी, पुरुषकी तरह प्रभूत यशवाले और अभीष्टदाता अग्निके अश्वोंकी स्तुति करो।

२ सुनेता, अजर और मनोहर गतिवाले अग्नि हविर्दाता यजमानके शत्रु-नाशके लिये आहुत हुए हैं।

३ सुन्दर ज्वालावाले जो अग्नि गृहमें आते हुए दिन-रात स्तुत होते हैं, उनका व्रत कभी नहीं क्षीण होता।

४ जैसे किरण-रूप सूर्य प्रकाशित होते हैं, विचित्र अग्नि भी अजर शिखाओं द्वारा चारो ओर प्रकाशित होकर वैसे ही रश्मियों द्वारा प्रकाशित होते हैं।

५ शत्रुओंके विनाशक और स्वयं सुशोभित अग्निके लिये सारे ऋक्मन्त्र वर्द्धित होते हैं। अग्निने सारी शोभाएँ धारण की हैं।

६ हमने अग्नि, इन्द्र, सोम और अन्य देवोंका प्रश्रय प्राप्त किया है। हमारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता। हम शत्रुओंको जीतेंगे।

पञ्चम अध्याय समाप्त



षष्ठ अध्याय



१ सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१॥
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥२॥
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३॥
अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४॥
उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५॥
सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥६॥



---

१ अग्नि देवोंके होता, विद्वान्, प्रज्वलित, दीप्तिमान्, प्रकृष्टबल-शाली, अप्रतिहत, अनुग्रह-विशिष्ट, निवासदाता, सबके भरणकर्त्ता और विशुद्ध शिखावाले हैं। होताके भवनमें अग्नि अच्छी तरह बैठें।

२ अभीष्ट-वर्द्धक अग्नि, तुम हमारे दूत बनो। हमें आपदुसे बचाओ। हमारे पास धन दो। प्रमाद-शून्य और दीप्तिशाली होकर हमारे और हमारे पुत्रोंके रक्षक बनो। अग्नि, जागो।

३ अग्नि, हम तुम्हारे उत्तम जन्मस्थानमें तुम्हारी सेवा करेंगे। जिस स्थानसे तुम उद्गत हुए हो, उसकी भी पूजा करेंगे। वहाँ तुम्हारे प्रज्वलित होनेपर अध्वर्यु लोग तुम्हें लक्ष्य कर हव्य प्रदान करते हैं।

४ अग्नि देव, याज्ञिकोंमें तुम श्रेष्ठ हो। हव्य द्वारा तुम यज्ञ करो। तत्पर होकर तुम देवोंके पास हमारे दिये जाने योग्य अन्नकी प्रशंसा करो। तुम धनोंमें उत्कृष्ट धनके अधिपति हो। तुम हमारे प्रदीप्त स्तोत्रको जानो।

५ दर्शनीय अग्नि, तुम प्रतिदिन उत्पन्न होते हो। तुम्हारा दिव्य और पार्थिव धन नष्ट नहीं होता। फलतः तुम स्तोत्रकर्त्ता यजमानको अन्न-युक्त करो। उसे सुन्दर अपत्यवाले धनका स्वामी बनाओ।

६ अग्निदेव, तुम अपने दलके साथ हमारे प्रति अनुग्रह करो। तुम दोनोंके याजक, सर्वापेक्षा उत्तम यज्ञ-कर्त्ता, देवोंके रक्षक और हमारे पालक हो। कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता। धन और कान्तिसे युक्त होकर तुम चारो ओर देदीप्यमान बनो।

१० सूक्त। अग्नि देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेलस्पदे मनुषा यत् समिद्धः।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१॥
श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥२॥
उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३॥
जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्टमन्नै रभसं दृशानम् ॥४॥
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥५॥
ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥

---

१ अग्नि सबसे प्रथम होतव्य और पिताके समान हैं। अग्नि मनुष्यों द्वारा यज्ञ-स्थानमें प्रज्वालित हुए हैं। वह दीप्ति-पूर्ण, मरण-रहित, विभिन्न-प्रज्ञा-युक्त, अन्नवान्, बलवान् और सबके सेवनीय हैं।

२ अमर, विशिष्ट प्रज्ञावाले, विचित्र दीप्ति-युक्त अग्नि मेरे सब स्तुति-युक्त आह्वान सुनें। दो लाल घोड़े अग्निका रथ वहन करते हैं। वह विविध स्थानोंमें जाते हैं।

३ अध्वर्यु लोगोंने ऊर्ध्वमुख अरणि या काष्ठमें प्रेरित अग्निको उत्पन्न किया है। अग्नि विविध ओषधियोंमें, गर्भरूपसे, अवस्थित हैं। रातमें उत्तम- ज्ञानवान् अग्नि, महादीप्ति-युक्त होकर, वास करते हैं। उन्हें अन्धकार नहीं छिपा सकता।

४ सारे भुवनोंके अधिष्ठाता, महान्, सर्वत्रगामी, शरीरवान्, प्रवृद्ध हव्य द्वारा व्याप्त, बलवान् और सबके दृश्यमान अग्निकी हम हव्य-घृतके द्वारा पूजा करते हैं।

५ सर्वव्यापी और यज्ञके अभिमुख आनेकी इच्छा करते हुए अग्निको घृत द्वारा हम सिक्त करते हैं। वह, शान्त चित्तसे, उस घृतको ग्रहण करें। मनुष्योंके भजनीय और श्लाघनीय वर्णवाले अग्निके पूर्ण प्रज्वलित होनेपर उन्हें कोई छू नहीं सकता।

६ अपने तेजोबलसे शत्रुओंको पराजित करनेके समय, हे अग्नि, तुम हमारी सम्भोग-योग्य स्तुतिको जानो। तुम्हारा आश्रय पाकर हम मनुकी तरह स्तोत्र करते हैं। इन बहुल-मधुस्पर्शी और धन-प्रद अग्निका जुहू और स्तुति द्वारा मैं आह्वान करता हूँ।

११ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१॥
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥२॥
उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्रवायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥३॥
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मेदासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४॥
गुहाहितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५॥
स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥६॥
हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥७॥

१ इन्द्र, तुम मेरी स्तुति सुनो । तिरस्कार नहीं करना । हम तुम्हारे धन-दानके पात्र हैं । नदीकी तरह प्रवाहशाली यह हव्य यजमानके लिये धनेच्छा करता है । यह तुम्हें वर्द्धित करे ।

२ शूर इन्द्र, तुमने जो जल बरसाया था, वृत्रने उसी प्रभूत जलपर आक्रमण किया था । तुमने उस जलको छोड़ दिया था । उस दस्यु या दास (वृत्र)ने अपनेको अमर समझा था । स्तुति द्वारा वर्द्धित होकर उसको तुमने नीचे पटक दिया ।

३ शूर इन्द्र, जिस सुखकर या रुद्रकृत ऋङ्मंत्र और स्तोत्रकी तुम इच्छा करते हो और जिसमें तुम्हें आनन्द मिलता है, वह सब शुभ्र और दीप्यमान स्तुति, वज्रके प्रति, तुम्हारे लिये प्रस्तुत होती है ।

४ इन्द्र, स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारा सुखकर बल वर्द्धित करते तथा तुम्हारे हाथोंमें दीप्त वज्र अर्पण करते हैं । वर्द्धित और तेजोयुक्त होकर तुम दास लोगोंको, सूर्य-रूप आयुध द्वारा, पराभूत करते हो ।

५ शूर इन्द्र, गुहामें अवस्थित, अप्रकाश्य, लुक्कायित, तिरोहित और जलमें अवस्थित जिस वृत्र (अहि)ने अपनी शक्तिसे अन्तरीक्ष और द्युलोकको विस्मित किया था, उसको वज्र द्वारा तुमने विनष्ट किया था ।

६ इन्द्र, हम तुम्हारी प्राचीन महत्कीर्तियोंकी स्तुति करते हैं तथा तुम्हारे आधुनिक कृतकर्मोंकी स्तुति करते हैं । तुम्हारे दोनों हाथोंमें दीप्यमान वज्रकी स्तुति करते हैं । तुम सूर्यात्मा हो । तुम्हारे पताका-स्वरूप हरि नामके अश्वोंकी हम स्तुति करते हैं ।

७ इन्द्र, तुम्हारे शीघ्रगामी दोनों घोड़ जलवर्षी मेघध्वनि करते हैं । समतल पृथिवी मेघ-गर्जन सुनकर प्रसन्न हुई । मेघने भी, इधर-उधर, घूमकर शोभा प्राप्त की ।

नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारेवाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥८॥
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियानेकनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९॥
अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रो मानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१०॥
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११॥
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२॥
स्यामतेत इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३॥
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासिशर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४॥

---

८ प्रमाद-शून्य मेघ अन्तरीक्षमें आया और मातृ-भूत जलके साथ इधर-उधर घूमने लगा। मरुतोंने अत्यन्त दूर अन्तरीक्षमें अवस्थित शब्दको वर्द्धित करते हुए, इन्द्र द्वारा प्रेरित उस शब्दको चारो ओर फैला दिया।

९ बली इन्द्रने इधर-उधर संचारी मेघमें अवस्थित मायावी वृत्रको मार गिराया। जलवर्षक इन्द्रके वज्रके व्यापक शब्दसे भय पाकर द्यावापृथिवी कम्पित हुई।

१० जिस समय मनुष्योंके हितकारी इन्द्रने मनुष्योंके शत्रु वृत्रके विनाशकी इच्छा की थी, उस समय अभीष्ट-वर्षक इन्द्रका वज्र बार-बार गर्जन करने लगा। इन्द्रने अभिषुत सोमपान करके मायावी दानवकी सारी मायाको निपातित कर दिया था।

११ इन्द्र, तुम अभिषुत सोमपान करो। मददाता सोमरस तुम्हें आमोदित करे। सोमरस तुम्हारे उदरकी पूर्ति करके तुम्हें प्रसन्न करे। इस प्रकार उदर-पूरक सोमरस इन्द्रको तृप्त करे।

१२ इन्द्र हम मेधावी हैं। हम तुम्हारे अन्दर स्थान पावेंगे। कर्मफलकी कामनासे हम तुम्हारी सेवा करके यज्ञ करेंगे। तुम्हारा आश्रय पानेकी इच्छासे हम तुम्हारी प्रशंसाका ध्यान करते हैं, ताकि हम इसी क्षण तुम्हारे धन-दानका पात्र हो सकें।

१३ इन्द्र, तुम्हारे आश्रय-लाभकी इच्छासे जो तुम्हारा हव्य वर्द्धित करते हैं, हम भी उन्हींकी तरह तुम्हारे आधीन हो जायँ। द्युतिमान् इन्द्र, हम जिस धनकी इच्छा करते हैं, तुम हमें सर्वापेक्षा बलवान् और वीर-पुत्र-युक्त वही धन दो।

१४ इन्द्र तुम हमें गृह दो, बन्धु दो और महापुरुषोंको तरह वीर्य दो, प्रसन्न-चित्त वायुगण अतीव आनन्दित होकर आगे लाया हुआ सोम पान करें।

त्वमित्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वातरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥१५॥
बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥१६॥
उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७॥
धिष्वाशवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८॥
सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥
अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥२०॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षास्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१॥



१५ इन्द्र, जिन मरुतोंके सहायक होनेपर तुम हृष्ट होते हो, वे शीघ्र सोम पान करें। तुम भी अपनेको दृढ़ करके तृप्तिकर सोम पान करो। शत्रुनाशक इन्द्र, बलवान् और पूजनीय मरुतोंके साथ तुम युद्धमें हमें वर्द्धित करो—द्यु लोकको भी वर्द्धित करो।

१६ अनिष्ट-निवारक इन्द्र, तुम सुख-प्रद हो। जो पुरुष उक्थ द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, वह शीघ्र ही महान् हो जाता है। जो कुश बिछाकर तुम्हारी सेवा करते हैं, वह तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर गृहके साथ अन्न प्राप्त करते हैं।

१७ शूर इन्द्र, तुम उग्र त्रिकद्रु दिन-विशेषोंमें अत्यन्त हृष्ट होकर सोमपान करो। अनन्तर प्रसन्न होकर और अपनी दाढ़ी-मूँछमें लगे सोमको झाड़कर सोम पानके लिये हरि नामक घोड़ेपर चढ़कर आओ।

१८ इन्द्र, जिस बलके द्वारा तुमने दनुके पुत्र वृत्रको ऊर्णनाभि कीटकी तरह विनष्ट किया था, वही बल धारण करो। आर्यके लिये तुमने ज्योति दी है। दस्यु तुम्हारे वायें हैं।

१९ इन्द्र, जिन लोगोंने तुम्हारा आश्रय प्राप्त करके सारे गर्वकारी मनुष्योंको अतिक्रम किया है और आर्य-भाव द्वारा दस्युका अतिक्रम किया है, हम उनको भजते हैं। तुमने त्रितके बन्धुत्वके लिये त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध किया है। हमारे लिये भी वैसा ही करो।

२० इन हृष्ट और स्तवान् त्रित द्वारा वर्धित होकर इन्द्रने अर्बुदका विनाश किया था। जैसे सूर्य रथ-चक्र चलाते हैं, वैसे ही इन्द्रने अङ्गिरा लोगोंकी सहायता प्राप्त करके वज्रको घुमाया था और बलको विनष्ट किया था।

२१ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताका मनोरथ पूरा करती है, उसे हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर और किसीको भी नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

१२ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥
यो हत्वाहिमरिणात् सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँलक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

---

१ मनुष्यो या असुरो, जो प्रकाशित हैं, जिन्होंने जन्मके साथ ही देवोंमें प्रधान और मनुष्योंमें अग्रणी होकर वीरकर्म द्वारा सारे देवोंको विभूषित किया था, जिनके शरीर-बलसे द्यावापृथिवी भीत हुई थी और जो महती सेनाके नायक थे, वही इन्द्र हैं।

२ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने व्यथित पृथिवीको दृढ़ किया है, जिन्होंने प्रकुपित पर्वतोंको नियमित किया है जिन्होंने प्रकाण्ड अन्तरीक्षको बनाया है और जिन्होंने द्युलोकको स्तब्ध किया है, वही इन्द्र हैं।

३ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वृत्रका विनाश करके सात नदियोंको प्रवाहित किया है, जिन्होंने बल असुर द्वारा रोकी हुई गायोंका उद्धार किया था, जो दो मेघोंके बीचसे अग्निको उत्पन्न करते हैं और जो समर-भूमिमें शत्रुओंका नाश करते हैं, वही इन्द्र हैं।

४ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने समस्त विश्वका निर्माण किया है, जिन्होंने दासोंको निकृष्ट और गूढ़ स्थानमें स्थापित किया है, जो लक्ष्य जीत कर व्याधकी तरह शत्रुके सारे धनको ग्रहण करते हैं, वही इन्द्र हैं।

५ मनुष्यो या असुरो, जिन भयंकर देवके सम्बन्धमें लोग जिज्ञासा करते हैं, वह कहाँ हैं? जिनके विषयमें लोग बोलते हैं कि, वह नहीं हैं और जो शासककी तरह शत्रुओंका सारा धन, विनष्ट करते हैं, विश्वास करो, वही इन्द्र हैं।

६ मनुष्यो या असुरो, जो समृद्ध धन प्रदान करते हैं, जो दरिद्र याचक और स्तोताको धन देते हैं और जो शोभन हनु या नेत्रुवीवाले होकर सोमाभिषव-कर्ता और हाथोंमें पत्थरवाले यजमानके रक्षक हैं, वही इन्द्र हैं।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्तसिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

७ मनुष्यो या असुरो, घोड़े, गायें, गाँव और रथ जिनकी आज्ञाके आधीन हैं, जो सूर्य्य और उषाको उत्प करते हैं और जो जल प्रेरित करते हैं, वही इन्द्र हैं।

८ मनुष्यो या असुरो, दो सेनादल, परस्पर मिलनेपर, जिन्हें बुलाते हैं, उत्तम-अधम दोनों प्रकारके शत्रु जि बुलाते हैं और एक ही तरहके रथोंपर बैठे हुए दो मनुष्य जिन्हें नाना प्रकारसे बुलाते हैं, वही इन्द्र हैं।

९ मनुष्यो या असुरो जिनके न रहनेसे कोई विजयी नहीं हो सकता, युद्धकालमें, रक्षाके लिये, जिन्हें लो बुलाते है, जो सारे संसारके प्रतिनिधि हैं और जो क्षयरहित पर्वतादिको भी नष्ट करते हैं, वही इन्द्र हैं।

१० मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वज्र द्वारा अनेक महापापी अपूजकोंका विनाश किया है, जो गर्वकारी मनुष को सिद्धि प्रदान करते हैं और जो दस्युओंके हन्ता हैं, वही इन्द्र हैं।

११ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने पर्वतमें छिपे शम्बर असुरको चालीस वर्ष खोजकर प्राप्त किया था और जिन्हों बल-प्रकाशक अहि नामके सोये हुए दैत्यका विनाश किया था, वही इन्द्र हैं।

१२ मनुष्यो या असुरो, जो सप्त वर्ण या वराह, स्वपस, विद्युत्, महः, धूपि, स्वापि, गृहमेध आदि सात रश्मि वाले, अभीष्टवर्षी और बलवान् हैं, जिन्होंने सात नदियोंको प्रवाहित किया है और जिन्होंने वज्र-बाहु होकर स्व जानेको तैयार रौहिणको विनष्ट किया था, वही इन्द्र हैं।

१३ मनुष्यो या असुरो, द्यावापृथिवी उन्हें प्रणाम करती हैं। उनके बलके सामने पर्वत कांपते है और सोमपान-कर्ता, दृढाङ्ग, वज्र-बाहु और वज्रयुक्त हैं, वही इन्द्र हैं।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्मवर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आचिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयन्त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमावदेम ॥१५॥

१३ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत् पिप्युषी पयोंशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥
सध्रीमायन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्रभरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥२॥
अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥३॥
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥४॥

---

१४ मनुष्यो, जो सोमाभिषव-कर्त्ता यजमानकी रक्षा करते हैं, जो पुरोडाश आदि पकानेवाले, स्तोता और स्तुति-पाठक यजमानकी रक्षा करते हैं और जिनके वर्द्धक स्तोत्र, सोम और हमारा अन्न हैं, वही इन्द्र हैं ।

१५ इन्द्र, दुर्धर्ष होकर सोमाभिषवकर्त्ता और पाककारी यजमानको अन्न प्रदान करते हो, इसलिये तुम्हीं सत्य हो । हम प्रिय और वीर पुत्र, पौत्र आदिसे युक्त होकर चिरकालतक तुम्हारे स्तोत्रका पाठ करेंगे ।

---

१ वर्षा ऋतु सोमकी माता है । उत्पन्न होकर सोम जलमें बढ़ता है; इसलिये उसीमें प्रवेश करता है । जो सोम-लता जलकी सार-भूत होकर वृद्धि प्राप्त होती है, वह अभिषवके उपयुक्त है । उसी सोमलताका पीयूष इन्द्रका हव्य है ।

२ परस्पर मिली हुई उदक-वाहिनी नदियाँ चारो ओर बह रही हैं और सारे जलोंके आश्रयभूत समुद्रको भोजन प्रदान करती हैं । निम्नगामी जलका गन्तव्य मार्ग एक ही है । इन्द्र, तुमने पहले ये सब काम किये हैं; इसलिये तुम स्तुति-योग्य हो ।

३ एक यजमान जो दान करता है, दूसरा उसका अनुवाद करता है । एक जल पशुहिंसा करके, हिंसाकर्त्ता बनकर, जाता है, दूसरा सारे बुरे कर्मोंका शोधन करता है । इन्द्र, तुमने पहले ये सब कर्म किये हैं, इसलिये तुम स्तुति-पात्र हो ।

४ इन्द्र, जैसे गृहस्थ लोग अभ्यागत अतिथिको प्रचुर धन देते हैं, वैसे ही तुम्हारा दिया धन प्रजाओंमें विभक्त होकर रहता है । लोग पिता द्वारा दिया भोजन दाँतोंसे खाते हैं । इन्द्र, तुमने पहले ये सब कार्य किये हैं, इसलिये स्तुति-योग्य हो ।

अधाकृणोः पृथिवीं सन्दृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक् पथः।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥५॥
यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्राद्रा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥६॥
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधिदाने व्यवनीरधारयः।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥७॥
यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत् सास्युक्थ्यः ॥८॥
शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९॥
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम्।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च सन्दृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥१०॥
सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११॥

---

५ इन्द्र, तुमने आकाशके लिये पृथिवीको दर्शनीय किया है। तुमने प्रवाहित नदियोंका मार्ग गमन-यो किया है। वृत्र-हन्ता इन्द्र, जैसे जलके द्वारा अश्वको तृप्त करते हो, वैसे ही स्तोता लोग स्तोत्र द्वारा तुम्हें तृप्त करते

६ इन्द्र, तुम भोजन और वर्द्धमान धन देते हो और आर्द्र काष्ठसे शुष्क और मधुर रसवाले शस्य आदि दोहन करते हो। सेवक यजमानको तुम धन देते हो। संसारमें तुम अद्वितीय हो। इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो।

७ इन्द्र, कर्म द्वारा तुमने खेतमें फूल और फलवाली ओषधिकी रक्षा की है। प्रकाशमान सूर्यकी न प्रकारकी ज्योति उत्पन्न की है। तुमने महान् होकर चारो ओर महान् प्राणियोंको उत्पन्न किया है। तुम स्तुति-पात्र

८ बहु-कर्म-कर्त्ता इन्द्र, तुमने हव्यप्राप्ति और दासोंके विनाशके उद्देशसे नृमरके पुत्र सहवसुका विनाश क के लिये बलवती वज्रधाराका निर्मल मुख-प्रदेश इसको दिया था। तुम स्तुति-योग्य हो।

९ इन्द्र, तुम एक हो। तुम्हारे सुखके लिये दस सौ घोड़े हैं। तुमने दभीति ऋषिके लिये रज्जुरहित दस्युओं विनाश किया था। तुम सबके प्राप्य हो; इसलिये स्तुति-योग्य हो।

१० सारी नदियाँ इन्द्रकी शक्तिका अनुवर्त्तन करती हैं। यजमान लोग इन्द्रको अन्न प्रदान करते हैं अ सब लोग कर्मकर्त्ता इन्द्रके लिये धन धारण करते हैं। तुमने विशाल द्यु, पृथ्वी, दिन-रात्रि, जल और ओषधि नाम छः स्थानोंको निश्चित किया है। पंचजनके पालक हो। इन्द्र, तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

११ तुम्हारा वीर्य सबके लिये श्लाघनीय है। तुमने एक कर्म द्वारा शत्रुओंका धन प्राप्त किया है। तुम बलिष्ठ जातुष्ठिरको अन्न दिया है। चूँकि यह सब कार्य तुमने किये हैं; इसलिये तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

अश्मयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥१२॥
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥

---

१४ सूक्त। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चतामद्यमन्धः।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१॥
अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम्।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥२॥
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि बलं वः।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३॥
अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून्।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४॥

---

१२ इन्द्र, सरलतासे प्रवाहशील जलके पार जानेके लिये तुमने तुर्वीति और वय्यको मार्ग दे दिया था। तुमने अन्धे और पङ्गु, परावृजको तलसे उद्धार करके अपनेको कीर्तिशाली बनाया है; इसलिये तुम स्तुति-योग्य हो।

१३ निवास-दाता इन्द्र, हमें भोगके लिये धन दो। तुम्हारा वह धन प्रभूत, वासयोग्य और विचित्र है। हम प्रतिदिन उस धनके भोगकी इच्छा करते हैं। हम उत्तम पुत्र-पौत्र प्राप्त करके इस यज्ञमें प्रभूत स्तोत्र-का पाठ करेंगे।

---

१ अध्वर्युगण, इन्द्रके लिये सोम ले आओ। चमसके द्वारा मादक अन्न अग्निमें फेंको। वीर इन्द्र सदा सोमपानके अभिलाषी रहते हैं। अभीष्टवर्षी इन्द्रके लिये सोम प्रदान करो। इन्द्र उसे चाहते हैं।

२ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने जलको आच्छादित करनेवाले वृत्रका, वज्रद्वारा वृक्षको तरह, विनाश किया है, उन्हीं सोमाभिलाषी इन्द्रके लिये सोम ले आओ। इन्द्रदेव सोमपानके उपयुक्त पात्र हैं।

३ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने दृभीकका विनाश किया था, जिन्होंने बल असुर द्वारा अवरुद्ध गायोंका उद्धार करके उसे विनष्ट किया था, उन्हीं इन्द्रके लिये, जैसे वायु अन्तरिक्षमें व्याप्त है, वैसे ही, सोमको सर्वत्र व्याप्त करो। जैसे जीर्णको वस्त्रके द्वारा आच्छादित किया जाता है, वैसे ही सोम द्वारा इन्द्रको आच्छादित करो।

४ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने निन्यानवे बाहु दिखानेवाले उरणका विनाश किया था तथा अर्बुदको अधोमुख करके विनष्ट किया था, सोम तैयार होनेपर उन्हीं इन्द्रको प्रसन्न करो।

अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५॥
अध्वर्यवो यः शतं शंबरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६॥
अध्वर्यवो यः शतमासहस्रं भूम्या उपस्थे ऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यवृणग्भरता सोममस्मै ॥७॥
अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥८॥
अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ।
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१०॥
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥११॥

---

५ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने सरलतासे अश्नका विनाश किया था, जिन्होंने अशोषणीय शुष्णको स्कन्ध करके मार डाला था, जिन्होंने पिप्रु, नमुचि और रुधिक्राका विनाश किया था, उन्हीं इन्द्रके लिये अन्न प्रदान करो

६ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने प्रस्तरके सदृश वज्र द्वारा शम्बरकी अतीव प्राचीन नगरियोंको छिन्न-भिन्न किया था, जिन्होंने वर्चीके सौ हजार पुत्रोंको भूमिशायी किया था, उन्हीं इन्द्रके लिये सोम ले आओ।

७ अध्वर्युगण, जिन शत्रु-हन्ता इन्द्रने भूमिकी गोदमें सौ हजार असुरोंको मार गिराया था, जिन इन्द्र ने कुत्स, आयु और अतिथिग्वके प्रतिद्वन्द्वियोंका वध किया था, उनके लिये सोम ले आओ।

८ नेता अध्वर्युगण, तुम जो चाहते हो, वह इन्द्रको सोम प्रदान करनेपर तुरत मिल जायगा। प्रसिद्ध इन्द्रके लिये हस्त द्वारा शोधित सोम ले आओ। हे याज्ञिकगण, इन्द्रके लिये वह प्रदान करो।

९ अध्वर्युगण, इन्द्रके लिये सुखकर सोम तैयार करो। संयोग-योग्य जलमें शोधित सोम ऊपर ले आओ। इन्द्र प्रसन्न होकर तुम्हारे हाथोंसे तैयार किया हुआ सोम चाहते हैं। इन्द्रके लिये तुम लोग मदकारक सोम प्रदान करो।

१० अध्वर्युगण, गायका अधोदेश जैसे दुग्धसे पूर्ण रहता है, वैसे ही इन फल-प्रदाता इन्द्रको सोम द्वारा पूर्ण करो। सोमका गूढ़ स्वभाव मैं जानता हूँ। यजनीय इन्द्र सोमप्रद यजमानको अच्छी तरह जानते हैं।

११ अध्वर्युगण, इन्द्रदेव, स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरीक्षके धनके राजा हैं। जैसे यव (जौ) से धान्य रखनेका स्थान पूर्ण किया जाता है, वैसे ही सोम द्वारा इन्द्रको पूर्ण करो। वह कार्य तुम लोगोंके द्वारा पूर्ण हो।

स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात् सो अस्नातॄनपारयत् स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्रतस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५॥
सोदञ्चं सिन्धुमरिणान् महित्वा वज्रेणान उषसः सम्पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६॥
स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्यनगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥
भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥८॥
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥
नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षास्तोतृभ्यो मतिधग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१०॥



५ उन इन्द्रने धुनि, इरावती या परुष्णी नामक महानदीको, पार जानेके लिये, शान्त किया था। नदीके पार जानेमें असमर्थ लोगोंको निरापद पार किया था। वे नदी पार होकर धनको लक्ष्य करके गये थे। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

६ अपनी महिमासे इन्द्रने सिन्धुको उत्तर-वाहिनी किया है। वेगवती सेनाके द्वारा, दुर्बल सेनाको छिन्न करके वज्र द्वारा उषाके रथको चूर्ण किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

७ अपने ब्याहके लिये आयी हुई कन्याओंका भागना जानकर परावृज ऋषि सबके सामने ही उठकर खड़े हो गये। पङ्गु होनेपर भी कन्याओंके प्रति दौड़े; चक्षुहीन होनेपर भी उन्हें देखा; क्योंकि स्तुतिसे प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें पैर-आँखें दे दी थीं। सोमजन्य हर्ष होनेपर इन्द्रने यह सब किया था।

८ अङ्गिरा लोगोंकी स्तुति करनेपर इन्द्रने बलको विदीर्ण किया था। पर्वतके सुदृढ़ द्वारको खोला था इनकी कृत्रिम रुकावटको भी हटाया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

९ इन्द्र, तुमने चुमुरि और धुनि नामके असुरोंको, दीर्घ निद्रामें प्रसिद्ध करके, विनष्ट किया था। दभीति नामक राजर्षिकी रक्षा की थी। उनके वेत्रधारी दौवारिकने भी शत्रुका हिरण्य प्राप्त किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

१० इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तुतिकारीका मनोरथ पूरा करती है, वही दक्षिणा तुम हमें प्रदान करो। तुम भजनीय हो, हमें छोड़कर और किसीको नहीं देना। हम पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।



१६ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१॥
यस्मादिन्द्राद्बृहतः किञ्चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधिवीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२॥
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३॥
विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥५॥
वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभत्वमीशिष इन्द्र सोमस्य तृप्णुहि ॥६॥

---

१ तुम्हारे उपकारके लिये देवोंमें ज्येष्ठतम इन्द्रके लिये दीप्यमान अग्निमें हम हव्य प्रदान करते हैं। अनन्तर उनकी मनोहर स्तुति करते हैं। अपनी रक्षाके लिये स्वयं जरा-रहित, सारे संसारको जरा देनेवाले, सोमसिक्त, सनातन और तरुण-वयस्क इन्द्रको हम बुलाते हैं।

२ विराट् इन्द्रके विना संसार नहीं है। जिन इन्द्रमें सारी शक्तियाँ हैं, वही इन्द्र उदरमें सोमरस धारण करते हैं। उनके शरीरमें बल और तेज है। उनके हाथमें वज्र और मस्तकमें ज्ञान है।

३ इन्द्र, जब कि तुम शीघ्रगामी अश्वपर चढ़कर अनेक योजन जाते हो, तब द्यावापृथ्वी तुम्हारे बलको पराजित नहीं कर सकतीं। समुद्र और पर्वत तुम्हारे रथका परिभव नहीं कर सकते। कोई भी व्यक्ति तुम्हारे बलका परिभव नहीं कर सकता।

४ सब लोग यजनीय, शत्रुनाशक, अभीष्टवर्षी और सदा सज्जित इन्द्रका यज्ञ करते हैं। तुम सोम-दाता और विद्वान् हो। इन्द्रके लिये तुम भी यज्ञ करो। इन्द्र, अभीष्टवर्षी और दीप्यमान अग्निके साथ सोम पान करो।

५ अभीष्टवर्षी और मादक सोमरस अनुष्ठाताओंके लिये उत्तेजक होकर बलप्रद, अन्न-विशिष्ट और अभीष्ट-वर्षी इन्द्रके पानके लिये जाता है। सोमरसप्रद अध्वर्यु और अभीष्टवर्षी अभिषव-प्रस्तर अभीष्टवर्षी सोमका, तुम्हारे लिये अभिषवण करते हैं। तुम भी अभीष्टवर्षी हो।

६ अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम्हारे वज्र, रथ हरिनामके अश्व और तुम्हारे सारे हथियार अभीष्टवर्षी हैं। तुम भी मादक और अभीष्टवर्षी सोमके अधिकारी हो। इन्द्र, अभीष्टवर्षी सोमसे तुम भी तृप्त बनो।

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ॥
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥७॥
पुरा संबाधादभ्यावर्तस्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सुते सुमतिभिः शतक्रतो सम्पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षास्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥



१७ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथो दीरते ।
विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥१॥
स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२॥
अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्रजीरयः सिस्रते सध्र्यक्पृथक् ॥३॥

---

७ तुम शत्रुनाशक हो। तुम संग्राममें स्तोत्राभिलाषी और नौकाकी तरह उद्धारक हो। यज्ञ-कालमें मैं स्तोत्र करते-करते तुम्हारे पास जाता हूँ। इन्द्र, हमारे इस स्तुतिवाक्यको अच्छी तरह जानो, हम कूपकी तरह दानाधार इन्द्रको सिक्त करेंगे।

८ जैसे तृण खाकर तृप्त गाय वत्सको लौटाती है, वैसे ही हे इन्द्र, हमें अनिष्टसे पहले ही लौटा दो शतक्रतु, जैसे पत्नियाँ युवाको व्याप्त करती हैं, वैसे ही हम सुन्दर स्तोत्र द्वारा एक बार तुम्हें व्याप्त करेंगे

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताको सारे मनोरथ प्रदान करती है, वह दक्षिणा तुम हमें प्रदान करो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर अन्यको नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

---

१ स्तोताओ, तुम लोग अङ्गिरा लोगोंकी तरह, नयी स्तुति द्वारा, इन्द्रकी उपासना करो; क्योंकि इन्द्रका शोषक तेज, पूर्वकालकी तरह, उदित होता है। सोमजनित हर्षके उत्पन्न होनेपर इन्द्रने वृत्र द्वारा आक्रान्त सारी मेघ-राशियोंको उद्घाटित किया था।

२ जिन इन्द्रने बलका प्रकाश करके प्रथम सोमपानके लिये अपनी महिमाको बढ़ाया है और जिन शत्रुहन्ता इन्द्रने युद्धकालमें अपने शरीरको सुरक्षित रखा था, वे ही इन्द्र प्रसन्न हों। उन्होंने अपनी महिमासे अपने मस्तकपर द्युलोकको धारण किया था।

३ इन्द्र, तुमने अपना महावीर्य प्रकट किया है; क्योंकि स्तोत्र द्वारा प्रसन्न होकर तुमने शत्रु-विनाशक बल प्रकट किया है। तुम्हारे रथस्थित हरि नामक अश्वोंके द्वारा स्वस्थानसे विच्युत होकर अनिष्टकारी लोगोंमेंसे कुछ एक साथ भागकर और कुछ अलग-अलग होकर भाग गये हैं।

अधा यो विश्वा भुवनाभिमज्मनेशानकृत् प्रवया अभ्यवर्धत।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यं तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥४॥
सः प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः।
अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान् मायया द्यामवस्रसः ॥५॥
सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादाजनुषो वेदसस्परि।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥६॥
अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादासदसस्त्वामिये भगम्।
कृधि प्रकेतमुप मास्याभर दद्धि भागं तन्वोयेन मामहः ॥७॥
भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ठ्वमिन्द्रापांसि वाजान्।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥८॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥



४ बहुत अन्नवाले इन्द्र अपने बलसे सारे भुवनोंको अभिभूत करके और अपनेको सबका अधिपति करके वर्द्धित हुए हैं। अनन्तर संसारके वाहक इन्द्रने द्याव पृथिवीको व्याप्त किया है। इन्द्रने दुःस्थित तमोराशिको चारो ओर ढंकते हुए संसारको व्याप्त किया है।

५ इन्द्रने इधर-उधर घूमनेवाले पर्वतोंको, अपने बलसे, अचल किया है। मेघ-स्थित जलराशिको नीचे गिराया है। उन्होंने संसार-धारयित्री पृथिवीको अपने बलसे धारण किया है। और बुद्धि-बलसे द्युलोकको पतनसे बचाया है।

६ इन्द्र, इस संसारके लिये पर्याप्त हुए हैं। वे सबके रक्षक हैं। उन्होंने सारे जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट ज्ञान-बलसे अपने हाथों संसारको निर्माण किया है। विविध-कीर्तिमान् इन्द्रने इस ज्ञानसे क्रिविको वज्र द्वारा मारते हुए, पृथिवीपर लेटकर रहनेके लिये, विनष्ट किया था।

७ इन्द्र, जैसे आमरण पिता-माताके साथ रहनेवाली पुत्री अपने पितृ-कुलसे ही अंशके लिये प्रार्थना करती है, वैसे ही मैं तुम्हारे पास धनकी याचना करता हूँ। उस धनको तुम सबके पास प्रकट करो, उस धनको मापो और उसे सम्पादित करो। मेरे शरीरके भोगने योग्य धन दो। इस धनसे स्तोताओंको सम्मानित करो।

८ इन्द्र, तुम पालक हो। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम कर्म्म और अन्नके दाता हो। नाना प्रकारसे आश्रय प्रदान कर तुम हमें बचाओ। अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम हमें अत्यन्त धनशाली करो।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताको सारे मनोरथ प्रदान करती है, वही दक्षिणा तुम हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें छोड़कर अन्य किसीको नहीं देना। हम पुत्र-पौत्रसे संयुक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

१८ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥१॥
सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊजनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥२॥
हरी नुकं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मोषु त्वामत्र बहवो हि विप्रा निरीरमन् यजमानासो अन्ये ॥३॥
आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
अष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥४॥
आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५॥
आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६॥

---

१ स्तुतियोग्य और विशुद्ध यज्ञ प्रातःकाल प्रारम्भ हुआ है। इस यज्ञमें चार पत्थर, तीन प्रकारके स्वर, सात प्रकारके छन्द और दस प्रकारके पात्र हैं। यह मनुष्योंके लिये हितकर और स्वर्ग-प्रदाता है । यह मनोहर स्तुति और होम आदिके द्वारा प्रसिद्ध होगा ।

२ यह यज्ञ इन इन्द्रके लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवनमें यथेष्ट हुआ। यह मानवोंके लिये शुभ फल ले आता है। दूसरे ऋत्विक् लोग भी दूसरे सिद्ध वाक्योंका गर्भ उत्पन्न करते हैं। अभीष्टवर्षी और जयशील यज्ञ अन्य देवोंके साथ मिलित होता है ।

३ इन्द्रके रथमें नये स्तोत्रोंके द्वारा, शीघ्र जानेके लिये, हरिनामक अश्वोंको जोड़ा जाता है। इस यज्ञमें अनेक मेधावी स्तोता हैं। दूसरे यजमान लोग तुम्हें अच्छी तरह तृप्त नहीं कर सकते।

४ इन्द्र, तुम बुलाये जाकर दो, चार, छः, आठ अथवा दस हरि नामक घोड़ोंके द्वारा सोमपानके लिये आओ। शोभन धनवाले इन्द्र, यह सोम तुम्हारे लिये प्रस्तुत हुआ है। तुम उसे हिंसित नहीं करना।

५ इन्द्र, तुम उत्तम गतिवाले बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ अथवा सत्तर घोड़ोंके द्वारा हमारे सामने, सोमपानके लिये, आओ।

६ इन्द्र, अस्सी, नब्बे अथवा सौ अश्वोंके द्वारा ढोये जाकर हमारे सामने आओ; क्योंकि इन्द्र, तुम्हारे लिये, तुम्हारे आनन्दके लिये, पात्रमें सोम रखा हुआ है ।

मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥७॥
न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥८॥
नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो मातिधग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

---

१९ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छाप्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२॥
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत् सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥३॥

---

७ इन्द्र, मेरी स्तुतिके सामने आओ । जगद्व्यापी दोनों अश्वोंको रथके अग्र भागमें संयोजित करो । बहु-संख्यक यजमान तुम्हें बुलाते हैं । शूर, तुम इस यज्ञमें हृष्ट होओ ।

८ इन्द्रके साथ मेरी मैत्री वियुक्त न हो । इन्द्रकी यह दक्षिणा हमें अभिमत फल प्रदान करे । हम इन्द्रके प्रशंसनीय और आपद्को हटानेवाले दोनों हाथोंके पास अवस्थिति करते हैं । प्रत्येक युद्धमें हम विजयी बनें ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताके मनोरथ पूर्ण करती है, वही दक्षिणा हमें प्रदान करो । तुम भजनीय हो । हमें छोड़कर दूसरेको दक्षिणा नहीं देना । हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

---

१ सोमाभिषवकर्त्ता मनीषी यजमानका मादक अन्न, आनन्दके लिये, इन्द्र भक्षण करें । इस प्राचीन अन्नमें वर्द्धमान होकर इन्द्र इसमें निवास करते हैं । इन्द्रके स्तोत्राभिलाषी ऋत्विक् भी इसमें निवास कर चुके हैं ।

२ इस मधुकर सोमसे आनन्द-निमग्न होकर, इन्द्रने हाथोंमें वज्र धारण करके, जलके आवरक अहिका छेदन किया था । उस समय प्रसन्नता-दायक जल-राशि, जैसे पक्षिगण पुष्करिणीके सामने जाते हैं, वैसे ही, समुद्रके सामने जाने लगी ।

३ अहिहन्ता और पूजनीय इन्द्रने जल-प्रवाहको समुद्रके सामने प्रेरित किया । इन्होंने सूर्यको उत्पन्न करके गायें प्राप्त कीं तथा तेजोबलसे दिवसोंको प्रकाशित किया ।

२० सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षुणः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥१॥

त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥२॥

स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥३॥

तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन् पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥

सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान् ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥ ५ ॥

---

१ इन्द्र, जिस प्रकार अन्नाभिलाषी व्यक्ति रथ तैयार करता है, उसी प्रकार हम भी तुम्हारे लिये अन्न तैयार करते हैं। तुम हमें अच्छी तरह जानते हो। हम स्तुति द्वारा तुम्हें दीप्यमान करते हैं। हम तुम्हारे जैसे पुरुषसे सुख माँगते हैं।

२ इन्द्र, तुम हमारा पालन करते हुए हमारी रक्षा करो। जो तुम्हें चाहते हैं, उनको, तुम शत्रुओंसे, रक्षा करते हो। तुम हव्यदाता यजमानके ईश्वर और उसके शत्रु को दूर करनेवाले हो। हव्य द्वारा जो तुम्हारी सेवा करता है, उसके लिये तुम यह सब कर्म करते हो।

३ हम यज्ञ-कार्य करते हैं। तरुण वयस्क, आह्वान-योग्य, मित्र-तुल्य और सुखदाता इन्द्र, हमारी रक्षा करें। जो स्तोत्रका उच्चारण करता है, क्रियाका समाधान करता है, हव्यका पाक करता है और स्तुति करता है, उसे आश्रय देकर इन्द्र कर्मके पार ले जाते हैं।

४ मैं उन्हीं इन्द्रकी स्तुति करता हूँ, उन्हींकी प्रशंसा करता हूँ। उनके स्तोता पहले वर्द्धित हुए थे और उन्होंने शत्रुओंका विनाश किया था। इन्द्रके निकट प्रार्थना करनेपर इन्द्र स्तोत्राभिलाषी नये यजमानकी धनेच्छाको पूरण करते हैं।

५ अङ्गिरा लोगोंके मंत्रों द्वारा प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें गायें लानेका मार्ग दिखा दिया था और उनकी स्तुति भी पूर्ण की थी। स्तोताओंकी स्तुति करनेपर इन्द्रने, सूर्यके द्वारा उषाका अपहरण करके, अश्नके प्राचीन नगरों-को विनष्ट किया था।

सहश्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दमूतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥७ ॥
तस्मै तवस्यमनुदायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नितारीत् ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो मातिधग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥



२१ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१ ॥
अभिभुवेभिभङ्गाय वन्वतेषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥

---

६ द्युतिमान्, कीर्तिमान् और अतीव दर्शनीय इन्द्र मनुष्यके लिये सदा तैयार रहते हैं। शत्रुहन्ता और बलवान् इन्द्र संसारके अनिष्टकर्त्ता दासका प्रिय मस्तक नीचे फेंकते हैं।

७ वृत्रहन्ता और पुरनाशन इन्द्रने कृष्णजन्मा दास-सेनाका विनाश किया है। मनुके लिये पृथिवी और जलको सृष्टि की है। वह यजमानका उच्चाभिलाष पूरण करें।

८ स्तोताओंने, जल-प्राप्तिके लिये, उन इन्द्रके लिये सदा बल-वर्द्धक अन्न प्रदान किया है। जिस समय इन्द्रके हाथमें वज्र दिया गया, उस समय उन्होंने उसके द्वारा दस्युओंका हनन करके उनकी लौहमयी पुरीको ध्वस्त किया था।

९ इन्द्र, तुम्हारी धनवती दक्षिणा स्तोताके सारे मनोरथ पूर्ण करती है। उसी दक्षिणाको हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें अतिक्रम करके अन्य किसीको नहीं देना। पुत्र और पौत्रसे युक्त होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

---

१ धनजयी, स्वर्गजयी, सदाजयी, मनुष्यजयी, उर्वराभूमिजयी, अश्वजयी, गोजयी, जलजयी—अतएव सर्वजयी और भजनीय इन्द्रको लक्ष्य करके वाञ्छनीय सोम ले आओ।

२ सबके पराजय-कर्त्ता, विमर्दक, भोक्ता, अजेय, सर्वसह, पूर्णग्रीव, सर्वविधाता, सर्ववोढ़ा, दूसरोंके दुर्द्धर्ष और सर्वदा जयशील इन्द्रको लक्ष्य करके, नमः शब्दका उच्चारण करते हुए, स्तुति करो।

सत्रासाहो जनभक्षो जनं सहश्च्यवनो युध्मो अनुजोषमुक्षितः ।
वृतञ्चयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्रकृतानि वीर्या ॥ ३ ॥
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥
यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ ६ ॥

२२ सूक्त । इन्द्र देवता । अष्टि, अत्यष्टि और शक्करी छन्द ।

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

३ बहुतोंके पराजयकर्त्ता, लोगोंके भजनीय, बलवानोंके विजेता, शत्रु निवारक, योद्धा, हर्षकर-सोम-सिक्त, शत्रु-हिंसक, शत्रुओंके अभिभव-कर्त्ता और प्रजापालक इन्द्रके उत्कृष्ट वीर-कर्मकी सब स्तुति करते हैं ।

४ अतुलदानसम्पन्न, अभीष्टवर्षी, हिंसकोंके हन्ता, गभीर, दर्शनीय, कर्ममें अपराजेय, समृद्ध लोगोंके उत्साह-दाता, शत्रुओंके कर्त्तनकारी, दृढ़ाङ्ग, जगद्व्यापी और सुन्दर-यज्ञ-विशिष्ट इन्द्रने उषासे सूर्यको उत्पन्न किया है ।

५ इन्द्रके स्तोता, इन्द्राभिलाषी और मनीषी अङ्गिरा लोगोंने यज्ञ द्वारा जल-प्रेरक इन्द्रके पास चुरायी हुई गायोंका मार्ग जाना है । अनन्तर रक्षाके अभिलाषी इन्द्रके स्तोता अङ्गिरा लोगोंने स्तोत्र और पूजाके द्वारा गोधन प्राप्त किया है ।

६ इन्द्र, हमें उत्तम धन दो । हमें निपुणताकी प्रसिद्धि दो । हमें सौभाग्य दो । हमारा धन बढ़ा दो । हमारे शरीरकी रक्षा करो । वाक्योंमें मीठापन दो । दिनको सुदिन करो ।

---

१ पूजनीय, बहुबलशाली और तृप्तिकर इन्द्रने जैसी पहले इच्छा की थी, वैसे ही त्रिकद्रुको यव मिलाया । अभिषुत सोम विष्णुके साथ पान करें । महान् सोमने तेजस्वी इन्द्रको महान् कार्यकी सिद्धिके लिये प्रसन्न किया था । सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

२ दीप्तिमान् इन्द्रने अपने बलसे युद्ध द्वारा क्रिविको जीता था । अपने तेजसे इन्द्रने द्यावापृथिवीको चारो ओरसे पूर्ण किया था । वे सोमके बलसे बहुत बढ़े हैं । इन्द्रने एक भाग अपने पेटमें धारण करके अन्य भागको देवोंको प्रदान किया । सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और द्योतमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ३ ॥
तव त्यं नर्यं नृतोप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतं यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥ ॥ ४ ॥



३ अनुवाक् । २३ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीदसादनम् ॥ १ ॥
देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥
आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३ ॥
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥ ४ ॥

---

३ इन्द्र, तुम यज्ञके साथ सबल उत्पन्न हुए हो । तुम सब ले जानेकी इच्छा करते हो । तुमने पराक्रमके साथ बढ़कर हिंसकोंको जीता है । तुम सत् और असत्के विचारक हो । तुम स्तोताको कर्मसाधक और वाञ्छनीय धन दो । सत्य और द्योतमान् सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

४ इन्द्र, तुम सबको नचानेवाले हो । तुमने जो पूर्व कालमें मनुष्योंके हितकर कर्मको किया था, वह द्युलोकमें श्लाघनीय हुआ है । अपने पराक्रमसे तुमने देव (वृत्र)की प्राण-हिंसा करके उसके द्वारा जलको बहा दिया था । इन्द्रने अपने बलसे वृत्र या अदेवको परास्त किया । शतक्रतु बल और अन्न जानें ।*



१ हे ब्रह्मणस्पति, तुम देवोंमें गणपति और कवियोंमें कवि हो । तुम्हारा अन्न सर्वोच्च और उपमान-भूत है । तुम प्रशंसनीय लोगोंमें राजा और मंत्रोंके स्वामी हो । हम तुम्हें बुलाते हैं । तुम हमारी स्तुति सुनकर, आश्रय प्रदान करनेके लिये, यज्ञगृहमें बठो ।

२ असुरहन्ता और प्रकृष्ट ज्ञानी बृहस्पति, देवोंने तुम्हारा यज्ञीय भाग प्राप्त किया है । जैसे ज्योति द्वारा पूजनीय सूर्य किरण उत्पन्न करते हैं, वैसे ही तुम सब मंत्र उत्पन्न करो ।

३ बृहस्पति, चारो तरफसे निन्दकों और अन्धकारोंको दूर, करके तुम ज्योतिर्मान् यज्ञ-प्रापक, भयानक, शत्रु-हिंसक, राक्षसनाशक, मेघ-भेदक और स्वर्गप्रदायक रथमें चढ़े हो ।

४ बृहस्पति, जो तुम्हें हव्य देता है, उसे तुम सन्मार्गमें ले जाते हो । उसे बचाते हो । उसे पाप नहीं मिलता । तुम्हारा ऐसा माहात्म्य है कि, तुम मंत्र-द्वेषियोंके सन्तापक और क्रोधके हिंसक हो ।

---

* दूसरा अनुवाक् १२ वें सूक्तसे ही प्रारम्भ होता है । भूलसे वहां नहीं दिया जा सका ।

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥
त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥६॥
उत वा यो नो मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्त्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥७॥
त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥८॥
त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥९॥
त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥१०॥
अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः ॥११॥

५ सुरक्षक ब्रह्मणस्पति, जिसकी तुम रक्षा करते हो, उसे दुःख कष्ट नहीं दे सकता, पाप उसे कष्ट नहीं दे सकता। शत्रु लोग उसे किसी तरह मार नहीं सकते, ठग उसे सता नहीं सकते। उसके लिये तुम सारे हिंसकोंको दूर कर दो।

६ बृहस्पति, तुम हमारे रक्षक, सन्मार्गदाता और विलक्षण हो। तुम्हारे यज्ञके लिये स्तोत्र द्वारा हम स्तुति करते हैं। जो हमारे प्रति कुटिल आचरण करता है, उसकी दुर्बुद्धि वेगवती होकर उसे शीघ्र विनष्ट करे।

७ बृहस्पति, जो गर्वोन्मत्त और सर्वग्रासी व्यक्ति हमारे सामने आकर हमारी हिंसा करता है, उसे सन्मार्गसे हटा दो। और यज्ञके लिये हमारा पथ सुगम कर दो।

८ बृहस्पति, तुम सबको उपद्रवसे बचाओ। तुम हमारे पौत्र आदिका पालन करो। हमारे लिये मीठे वचन बोलो और हमारे प्रति प्रसन्न होओ। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम देव-निन्दकोंका विनाश करो। दुर्बुद्धि लोग उत्कृष्ट सुख न पावें।

९ ब्रह्मणस्पति, तुम्हारे द्वारा वर्द्धित होनेपर मनुष्योंके पाससे हम स्पृहणीय धन प्राप्त करें। दूर या पास हमारे जो शत्रु हमें पराजित करते हैं, उन यज्ञहीन शत्रुओंको विनष्ट करो।

१० बृहस्पति, तुम मनोरथके पूरयिता और पवित्र हो। हम तुम्हारी सहायता पाकर उत्कृष्ट अन्न प्राप्त करेंगे। जो दुष्ट हमें पराजित करना चाहता है, वह हमारा अधिपति न हो। हम उत्कृष्ट स्तुति द्वारा पुण्यवान् होकर उन्नति करें।

११ ब्रह्मणस्पति, तुम्हारे दानकी उपमा नहीं है। तुम अभीष्टवर्षी हो। युद्धमें जाकर तुम शत्रुओंको सन्ताप देते और उन्हें विनष्ट करते हो। तुम्हारा पराक्रम सत्य है। तुम ऋणका परिशोध करते हो। तुम उग्र हो और मदोन्मत्त व्यक्तियोंका दमन करते हो।

अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥१२॥
भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वोमृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँइव ॥१३॥
तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यँ बृहस्पते विपरिरापो अर्दय ॥१४॥
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१५॥
मा नः स्तेनेभ्यो ये अभिद्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
आदेवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥१६॥
विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत् साम्नः साम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥ १७ ॥

१२ जो व्यक्ति देवशून्य मनसे हमारी हिंसा करता है और जो उग्र आत्माभिमानी हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, हे बृहस्पति, उसका आयुध हमें न छू सके। हम वैसे बलवान् और दुष्ट शत्रुका क्रोध नाश करनेमें समर्थ हों।

१३ युद्ध-कालमें बृहस्पति आह्वान-योग्य और नमस्कार-पूर्वक उपासना-योग्य हैं। वह युद्धमें जाते हैं। सब प्रकारका धन देते हैं। सबके स्वामी बृहस्पति विजिगीषावाली सारी हिंसक सेनाओंको, रथकी तरह, निहत और विध्वस्त करते हैं।

१४ बृहस्पति, अतीव तीक्ष्ण और सन्तापक हेति आयुधसे राक्षसोंको सन्तप्त करो। इन्हीं राक्षसोंने, तुम्हारे पराक्रमके प्रसूत होनेपर भी, तुम्हारी निन्दा की थी। पूर्व कालमें तुम्हारा जो प्रशंसनीय वीर्य था, इस समय उसका आविष्कार करो और उसके द्वारा निन्दकोंका विनाश करो।

१५ यज्ञजात बृहस्पति, जिस धनकी आर्य लोग पूजा करते हैं, जो दीप्ति और यज्ञवाला धन लोगोंमें शोभा पाता है, जो धन अपने तेजसे दीप्तिवाला है, वही विचित्र धन या ब्रह्मचर्य तेज हमें दो।

१६ बृहस्पति, जो चोर द्रोह करनेमें प्रसन्न होते हैं, जो शत्रु हैं, जो दूसरेका धन चाहते हैं, जो अपने मनसे सर्वांशतः देवोंका बहिष्कार करनेकी इच्छा करते हैं और जो राक्षस-नाशक साम-स्तुति नहीं जानते, उनके हाथमें हमें नहीं देना।

१७ बृहस्पति, त्वष्टाने तुम्हें सर्व-श्रेष्ठ उत्पन्न किया है; इसलिये तुम सारे सामोंके उच्चारण-कर्त्ता हो। यज्ञ आरम्भ करनेपर ब्रह्मणस्पति स्तोताका सारा ऋण स्वीकार करते और ऋणका परिशोध करते हैं। वह द्रोहकारीका विनाश करते हैं।

तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१९ ॥



१८ अङ्गिरोवंशीय बृहस्पति, पर्वतोंने गायोंको छिपाया था। तुम्हारी सम्पद्के लिये जिस समय वह उद्घाटित हुआ और तुमने गायोंको बाहर किया, उस समय इन्द्रको सहायक पाकर तुमने वृत्र द्वारा आक्रान्त जलाधारभूत जलराशिको नीचे किया था।

१९ ब्रह्मणस्पति, तुम इस संसारके नियामक हो। इस सूक्तको जानो। हमारी सन्ततियोंको प्रसन्न करो। देवता लोग जिसकी रक्षा करते हैं, वह भली भाँति कल्याणदायक है। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

षष्ठ अध्याय समाप्त



सप्तम अध्याय



२४ सूक्त। ब्रह्मणस्पति देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द।

सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेया विधेम नवया महागिरा।
यथा नो मीढ्वान्त्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥१॥
यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥२॥
तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृह्लाव्रदन्त वीळिता।
उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः ॥३॥
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत्।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥४॥
सना ता काचिद्भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

---

१ ब्रह्मणस्पति, तुम सारे संसारके स्वामी हो। हमारे द्वारा भली भाँति की गयी स्तुतिको ग्रहण करो। हम तुम्हारी, इस नवीन और बृहत् स्तुतिके द्वारा, सेवा करते हैं। हमें अभिमत फल प्रदान करो; क्योंकि, बृहस्पति, तुम्हारे बन्धु हम हैं। हमारा स्तोता तुम्हारी स्तुति करता है।

२ बृहस्पति, अपनी सामर्थ्यसे, तुमने तिरस्करणीयोंका तिरस्कार किया था, क्रोध-परवश होकर शम्बरको विदीर्ण किया था, निश्चल जलको चालित किया था और गोधनपूर्ण पर्वतमें प्रवेश किया था।

३ देव-श्रेष्ठ देव बृहस्पतिके कार्यसे सुदृढ़ पर्वत शिथिल हुआ था और स्थिर वृक्ष भग्न हुआ था। उन्होंने गायोंका उद्धार किया था। मंत्र द्वारा बलासुरको भिन्न किया था। अन्धकारको अदृश्य किया था। आदित्यको प्रकट किया था।

४ बृहस्पतिने पत्थरकी तरह दृढ़ मुखवाले, मधुर जलसे पूर्ण और निम्न अवनत जिस मेघका, बल-प्रयोग द्वारा, वध किया था; उसका आदित्य-किरणोंने जल पान किया था और उन्होंने ही जलधारामय वृष्टिका सिंचन किया था।

५ ऋत्विको, तुम्हारे ही लिये बृहस्पतिके सनातन और विचित्र प्रज्ञानने महीने-महीने और साल-साल होने वाली वर्षाका द्वार उद्घाटित किया था। बृहस्पतिने ऐसे प्रज्ञानोंको मंत्र-विषयक किया था। चेष्टा करके द्यावापृथिवी परस्पर सुख बढ़ाती हैं।

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहाहितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥६॥
ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आतस्थुः कवयो महस्पथः ।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिष्षो अस्त्यरणो जहुर्हितम् ॥७॥
ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्रतदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥८॥
स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९॥
विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥१०॥
यो वरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥११॥
विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्रमिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥१२॥

---

६ विज्ञ अङ्गिरा लोगोंने, चारो ओर खोजते हुए, पणियोंके दुर्गमें छिपाये हुए परम धनको प्राप्त किया था। मायाका दर्शन करके वे जिस स्थानसे गये थे, फिर वहीं गये।

७ सत्यवादी और सर्वज्ञाता अङ्गिरा लोग, मायाका दर्शन करके, पुनः प्रधान मार्गसे, उसी ओर गये। उन्होंने हाथोंसे जलाये अग्निको पर्वतपर फेंका। पहले वह ध्वंसक अग्नि वहाँ नहीं थे।

८ बृहस्पति वाण-क्षेपक और सत्यरूप ज्यावाले हैं। वे जो चाहते हैं, धनुषके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। जिस वाणको वह फेंकते हैं, वह कार्य-साधनमें कुशल है। वे वाण दर्शनार्थ उत्पन्न हुए हैं। कर्ण ही उनका उत्पत्ति-स्थान है।

९ ब्रह्मणस्पति पुरोहित हैं। वह सारे पदार्थोंको पृथक् और एकत्र करते हैं। सब उनकी स्तुति करते हैं। वह युद्धमें प्रकट होते हैं। सर्वदर्शी बृहस्पति जिस समय अन्न और धन धारण करते हैं, उस समय अनायास सूर्य उगते हैं।

१० वृष्टिदाता बृहस्पतिका धन चारो ओर व्याप्त, प्रापणीय, प्रभूत और उत्तम है। कमनीय और अन्नवान् बृहस्पतिने यह सारा धन दान किया है। दोनों प्रकारके मनुष्य (यजमान और स्तोता) ध्यानावस्थित चित्तसे इस धनका उपभोग करते हैं।

११ चारो ओर व्याप्त और स्तवनीय ब्रह्मणस्पति अतीव और महान् बली, दोनों प्रकारके स्तोताओंको, अपने शक्तिसे, रक्षा करते हैं। दानादि गुणवाले बृहस्पति देवोंके प्रतिनिधि रूपसे सर्वत्र अत्यन्त विख्यात हैं। इसीलिये वह सारे प्राणियोंके स्वामी भी हुए हैं।

१२ इन्द्र और ब्रह्मणस्पति, तुम धनवान् हो। सारा सत्य तुम्हारा ही है। तुम्हारे व्रतको जल नहीं मार सकता जैसे रथमें जुते हुए घोड़े खाद्यके सामने दौड़ते हैं, वैसे ही तुम भी हमारे हव्यके लिये दौड़ो।

उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मतीधना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥१३॥
ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्माकरिष्यतः ।
यो गा उदाजत् स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत् पृथक् ॥१४॥
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्ग्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥

---

२५ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । जगती छन्द ।

इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

---

१३ ब्रह्मणस्पतिके वेगवान् घोड़े हमारा स्तोत्र सुनते हैं। मेधावी और सभ्य अध्वर्यु, मनोरम स्तोत्र द्वारा, हव्य प्रदान करते हैं । पराक्रमियोंके दमनकारी ब्रह्मणस्पति हमारे पास, इच्छानुसार, ऋण स्वीकार करते हैं। अन्नवान् ब्रह्मणस्पति युद्धमें हव्य ग्रहण करें ।

१४ जिस समय ब्रह्मणस्पति किसी महान् कर्ममें प्रवृत्त होते हैं, उस समय उनका मंत्र उनकी अभिलाषाके अनुसार सफल होता है । जिन्होंने गायोंको बाहर किया है, उन्होंने द्युलोकके लिये उनका भाग किया है। महान् स्रोतकी तरह गायें, अपने बलसे, अलग-अलग गयी हैं।

१५ ब्रह्मणस्पति, हम सब समय उत्कृष्ट नियम और अन्नवाले धनके अधिपति हों। तुम हमारे वीर पुत्रको पौत्र दो; क्योंकि तुम सबके ईश्वर हो । हमारी स्तुति और अन्नको चाहो ।

१६ ब्रह्मणस्पति, तुम इस संसारके नियामक हो । तुम इस सूक्तको जानो । तुम हमारी सन्ततियोंको प्रसन्न करो । देवता लोग जिसकी रक्षा करते हैं, वह कल्याणवाला है । पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

---

१ अग्निको प्रज्वलित करके यजमान शत्रुओंकी हिंसा कर सके। स्तोत्र पढ़ते और हव्य दान करते हुए यजमान समृद्धि प्राप्त कर सके । जिस यजमानको सखा करकर ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं, वह पुत्रके पुत्रसे भी अधिक जीवित रहता है ।

वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२॥
सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभिवष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाहवर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥
तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः ससत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४॥
तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥



२६ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । जगती छन्द ।
ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत् पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१॥

---

२ यजमान वीर पुत्रोंके द्वारा शत्रुओंके वीर पुत्रोंको मारे। वह गोधनके लिये विख्यात हुआ है और स्वयं सब समझ सकता है । बृहस्पति जिस यजमानको सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसका पुत्र और पौत्र भी समृद्धि प्राप्त करता है ।

३ जैसे नदी तटको तोड़ती है, साँड़ जैसे बैलोंको पराजित करता है, वैसे ही बृहस्पतिकी सेवा करनेवाला यजमान, अपनी शक्तिसे, शत्रुओंको पराभूत करता है । जैसे अग्नि-शिखाका निवारण नहीं किया जाता, वैसे ही ब्रह्मणस्पति जिस यजमानको सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसका भी निवारण नहीं किया जा सकता ।

४ जिस यजमानको बृहस्पति सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसके पास, अप्रतिहत निर्झरिणी होकर, स्वर्गीय जल आता है । परिचर्या-कारियोंमें भी वही सबसे पहले गोधन प्राप्त करता है । उनका बल अनिवार्य है । वह बल द्वारा शत्रुओंका विनाश करते हैं ।

५ जिस यजमानको सखा रूपसे ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं, उसकी ओर सारी नदियाँ प्रवाहित होती हैं। वह सदा नानाविध सुखका उपभोग करता है । वह सौभाग्यशाली है। वह देवों द्वारा प्रदत्त सुख प्राप्त कर समृद्धि पाता है ।

---

१ ब्रह्मणस्पतिका सरल स्तोता शत्रुओंका विनाश कर डाले। देवाकांक्षी अदेवाकांक्षीको पराभूत कर डाले। जो बृहस्पतिको अच्छी तरह तृप्त करता है, वह युद्धमें दुर्धर्ष शत्रुओंका विनाश करता है। यज्ञपरायण अयाज्ञिकके धनका उपभोग कर सके ।

यजस्व वीरि प्रविहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथासिस ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२॥
स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धनानृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥
यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत् प्रतं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षतीरिषोंहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥ ४ ॥



२७ सूक्त । आदित्यगण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१॥
इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमो वरुणा जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥ २ ॥
त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥ ३ ॥

---

२ वीर, तुम ब्रह्मणस्पतिकी स्तुति करो। अभिमानी शत्रुओंके विरुद्ध यात्रा करो। शत्रुओंके साथ संग्राममें मनको दृढ़ करो। ब्रह्मणस्पतिके लिये हव्य तैयार करो। वैसा करनेपर तुम उत्तम धन पाओगे। हम ब्रह्मणस्पतिके पाससे रक्षा चाहते हैं।

३ जो यजमान श्रद्धावान् होकर देवोंके पिता ब्रह्मणस्पतिकी, हव्य द्वारा, परिचर्या करता है, वह अपने मनुष्य और आत्मीय, अपने पुत्र और अन्यान्य परिचारकोंके साथ अन्न और धन प्राप्त करता है।

४ जो ब्रह्मणस्पतिकी परिचर्या घृत-युक्त हव्यसे करता है, उसे ब्रह्मणस्पति प्राचीन सरल मार्गसे ले जाते हैं। उसे वे पाप, शत्रु और दरिद्रतासे बचाते हैं। आश्चर्यरूप ब्रह्मणस्पति उसका महान् उपकार करते हैं।

---

१ मैं जुहू द्वारा, सर्वदा शोभमान आदित्योंको लक्ष्य कर, घृत-स्राविणी स्तुति अर्पण करता हूँ। मित्र, अर्यमा, भग, बहुव्यापक वरुण, दक्ष और अंश मेरी स्तुति सुनें।

२ दीप्तिमान्, वृष्टिपूत, अनुग्रहपरायण, अनिन्दनीय, हिंसा-रहित और एकविध कर्मकर्त्ता मित्र, अर्यमा और वरुणनामक आदित्य आज मेरे इस स्तोत्रका उपभोग करें।

३ महान्, गभीर, दुर्दमनीय, दमनकारी और बहुदृष्टिवाले आदित्यगण प्राणियोंका अन्तःकरण देखते हैं। दूर-देश-स्थित पदार्थ भी आदित्योंके पास निकट है।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादवस्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७॥



२८ सूक्त । वरुण देवता । त्रिष्टुप छन्द ।

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१॥
तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥२॥
तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥३॥
प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥४॥
वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥५॥

१७ वरुण, मुझे किसी धनी और प्रभूत--दानशील व्यक्तिके पास जातिकी दरिद्रताकी बात न कहनी पड़े। राजन्, मुझे आवश्यक धनका अभाव न हो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

---

१ कवि और स्वयं सुशोभित वरुणके लिये यह हव्य है । वह अपनी महिमाके द्वारा सारे भूतोंको पराजित करते हैं। प्रकाशमान स्वामी वरुण यजमानको प्रसन्नता प्रदान करते हैं। मैं उनकी स्तुतिकी प्रार्थना करता हूं ।

२ वरुण, हम भली भाँति तुम्हारी स्तुति, ध्यान और परिचर्या करके सौभाग्यशाली हो सकें। किरण-युक्ता उषाके आनेपर अग्निकी तरह हम प्रतिदिन तुम्हारी स्तुति करके प्रकाशमान हों।

३ विश्व-नायक वरुण, तुम कितने ही वीरोंवाले हो, बहुत लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। हम तुम्हारे घरमें निवास कर सकें। हिंसा-शून्य और दीप्तिमान् अदितिके पुत्रो, तुम, हमारी मैत्रीके लिये, हमारे अपराधको मिटा दो ।

४ विश्व-धारक और अदिति वरुणने अच्छी तरह जलकी सृष्टि की है। वरुणकी महिमासे नदियाँ प्रवाहित होती हैं। ये कभी विश्राम नहीं करतीं, लौटती भी नहीं। ये, पक्षियोंकी तरह, वेगके साथ पृथिवीपर जाती हैं ।

५ वरुण, मेरे पापने मुझे रस्सीकी तरह बाँध रखा है ; मुझे छुड़ाओ। हम तुम्हारी जलपूर्ण नदी प्राप्त करें। यज्ञके बुननेके समय हमारा तन्तु कभी टूटने न पावे। असमयमें यज्ञकी मात्रा कभी विफल न हो ।

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत् सम्राड् ऋतावोनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥६॥
मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥७॥
नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥८॥
पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ॥९॥
यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१०॥
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा राया राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥११॥



६ वरुण, मेरे पाससे भयको दूर कर दो। हे सम्राट् और सत्यवान्, मुझपर कृपा करो । जैसे रस्सीसे बछड़ेको छुड़ाया जाता है, वैसे ही पापसे मुझे बचाओ; क्योंकि तुमसे अलग होकर कोई एक पलके लिये भी आधिपत्य नहीं कर सकता ।

७ असुर वरुण, तुम्हारे यज्ञमें अपराध करनेवालोंको जो आयुध मारते हैं, वे हमें न मारें । हम प्रकाशसे निर्वासित न हों । हमारे जीवनके लिये हिंसकको हटाओ ।

८ हे बहुस्थानोत्पन्न वरुण, हम भूत, वर्तमान और भविष्यत् समयोंमें तुम्हारे लिये नमस्कार करेंगे ; क्योंकि हे अहिंसनीय वरुण, पर्वतकी तरह तुममें सारे अच्युत कर्म आश्रित हैं ।

९ वरुण, पूर्वजोंने जो ऋण किया था, उसका परिशोध करो । इस समय मैं जो ऋण करता हूँ, उसका भी परिशोध करो, ताकि वरुण, मुझे दूसरेका उपार्जित धन भोग करनेकी आवश्यकता न हो । ऋणके कारण ऋणकर्त्ताके लिये मानों अनेक उषाओंका उदय ही नहीं हुआ । वरुण, हम उन सारी उषाओंमें जीवित रहें, ऐसी आज्ञा करो ।

१० राजा वरुण, मैं भीरु हूँ । मुझसे जो बन्धु लोग स्वप्नकी भयंकर बातें कहते हैं, उनसे मुझे बचाओ । तस्कर या वृक मुझे मारना चाहता है । उससे मुझे बचाओ ।

११ वरुण, मुझे किसी धनी और प्रभूत-दानशील व्यक्तिके पास जातिकी दरिद्रताकी बात न कहनी पड़े । राजन्, मुझे आवश्यक धनका अभाव न हो । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

२९ सूक्त । विश्वेदेव देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवेवः ॥१॥
यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभिचक्षमध्वमद्याचनो मृलयता परं च ॥२॥
किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥३॥
हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृलत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४॥
प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५॥
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥६॥

---

१ हे व्रतकारी, शीघ्र गमनशील और सबके प्रार्थनीय आदित्यो, गुप्तप्रसविनी स्त्रीके गर्भको तरह मेरा अपराध दूर देशमें फेंक दो। मित्र और वरुण, तुम्हारे मंगल-कार्यको मैं जानकर, रक्षाके लिये, तुम्हें बुलाता हूँ। तुम हमारी स्तुति सुनो।

२ देवगण, तुम्हीं अनुग्राहक और बल हो। तुम द्वेषियोंको हमारे पाससे अलग करो। शत्रु-हिंसक, शत्रुओंको पराजित करो। वर्त्तमान और भविष्यत्‌में हमें सुखी करो।

३ देवगण, अब और पीछे तुम्हारा कौन कार्य हम सिद्ध कर सकेंगे? वसु और सनातन प्राप्तव्य कार्य द्वारा हम तुम्हारा कौन कार्य सिद्ध कर सकेंगे? मित्रावरुण, अदिति, इन्द्र और मरुद्गण, तुम हमारा मंगल करो।

४ देवगण, तुम्हीं हमारे बन्धु हो। हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। कृपा करो। हमारे यज्ञमें आनेमें तुम्हारा रथ मन्द-गति न हो। तुम्हारे समान बन्धु पाकर हम श्रान्त न हों।

५ देवगण, तुम लोगोंके बीच एक मनुष्य होकर मैंने अनेकविध पाप नष्ट कर डाले। जैसे पिता कुमार्गगामी पुत्रको उपदेश देता है, वैसे तुमने मुझे उपदेश दिया है। देवो, सारे पाश और पाप दूर हों। जैसे व्याध बच्चेके सामने पक्षीको मारता है, वैसे ही मुझे नहीं मारना।

६ पूजनीय देवो, आज हमारे सामने आओ। मैं डरकर तुम्हारे हृदयावस्थित आश्रयको प्राप्त करूं। देवो, वृकके हाथसे मारे जानेसे हमें बचाओ। पूजनीयो, जो हमें आपद्‌में फेंक देता है, उसके हाथसे हमें बचाओ।

माहं मघोनो वरुणप्रियस्य भूरिदाव्न आविदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥७॥



३० सूक्त । १—५ तकके इन्द्र, ६ के सोम और इन्द्र, ७ के इन्द्र, ८ के सरस्वती और इन्द्र, ९ के बृहस्पति, १० के इन्द्र और ११ मंत्रके मरुद्गण देवता हैं । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥१॥
यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत् प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धनयो यन्त्यर्थम् ॥२॥
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षे धा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥३॥
बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥४॥

७ वरुण, मुझे किसी धनी और प्रभूत-दानशील व्यक्तिसे अपनी जातिकी दरिद्रताकी बात न कहनी पड़े । राजन्, मुझे नियमित या आवश्यक धनका अभाव न हो । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

---

१ वृष्टिकारी, द्युतिमान्, सबके प्रेरक और वृत्र-नाशक इन्द्रके यज्ञके लिये कभी भी जल नहीं रुकता, उसका स्रोत प्रतिदिन चला करता है । कभी उसकी पहली सृष्टि हुई थी ?

२ जिस व्यक्तिने वृत्रको अन्न प्रदान किया था, उसकी बात माता अदितिने इन्द्रसे कह दी थी । इन्द्रकी इच्छाके अनुसार नदियाँ, अपना मार्ग बनाती हुई, प्रतिदिन समुद्रकी ओर जाती हैं ।

३ चूँकि अन्तरीक्षमें उठकर वृत्रने सारे पदार्थोंको घेर डाला था; इसलिये इन्द्रने उसके ऊपर वज्र फेंका । वृष्टि-प्रद मेघसे आच्छादित होकर वृत्र इन्द्रके सामने दौड़ा था । उसी समय तीक्ष्णायुधधारी इन्द्रने उसको पराजित किया था ।

४ बृहस्पति, वज्रके समान दीप्त अस्त्रसे वृक द्वारा असुरके पुत्रोंको छेदो । इन्द्र, जैसे प्राचीन समयमें तुमने शक्ति द्वारा शत्रुओंको जीता था, उसी प्रकार इस समय हमारे शत्रुओंका विनाश करो ।

अवक्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥५॥
प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन् भयस्थे कृणुतमुलोकम् ॥६॥
न मा तमन्नश्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७॥
सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८॥
यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून् द्रुहे रीषन्तं परियाहि राजन् ॥९॥
अस्माकेभिः सत्वभिः शूरशूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामाभरा नो वसूनि ॥१०॥

५ इन्द्र, तुम ऊपर रहते हो । स्तोताओंके स्तव करनेपर तुमने जिसके द्वारा शत्रुका विनाश किया था, वही पत्थरकी तरह कठिन वज्र द्युलोकसे निम्नाभिमुख फेंको । जिससे हम लोग यथेष्ट पुत्र, पौत्र और गोधन प्राप्त कर सकें, वैसी ही हमें तुम समृद्धि दो ।

६ इन्द्र और सोम, जिसकी तुम हिंसा करते हो, उस द्वेषीको उन्मूलित करो । यजमानोंको शत्रुओंके विरुद्ध प्रेरित करो । इन्द्र और सोम, तुम मेरी रक्षा करो । इस भय-स्थानमें भय-शून्य स्थान बनाओ ।

७ इन्द्र मुझे क्लेश न दें, श्रान्त न करें, आलसी न बनावें । हम कभी यह न कहें कि, सोमाभिषव न करो । इन्द्र मेरी अभिलाषा पूर्ण करते, अभीष्ट दान करते, यज्ञको जानते और गो-समूह लेकर अभिषव–कर्ताके पास उपस्थित होते हैं ।

८ सरस्वती, तुम हमें बचाओ । मरुतोंके साथ इकट्ठे होकर दृढता-पूर्वक शत्रुओंको जीतो । इन्द्रने शूराभिमानी और स्पर्द्धावान् शण्डिकोंके प्रधान (शण्डामर्क) को मारा था ।

९ बृहस्पति, जो अन्तर्हित देशमें छिपकर हमारा प्राण-नाश करनेका अभिलाषी है, उसे खोजकर तीखे हथियारसे छेदो । आयुधसे हमारे शत्रुओंको जीतो । राजा बृहस्पति, द्रोहकारियोंके विरुद्ध प्राण-नाशक वज्र चारो ओर फेंको ।

१० शूर इन्द्र, हमारे शत्रु-हन्ता वीरोंके साथ अपने सम्पादनीय वीर-कार्योंको सम्पन्न करो । हमारे शत्रु बहुत दिनोंसे गर्वपूर्ण हो रहे हैं । उनका विनाश कर उनका धन हमें दो ।

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम्।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥ ११ ॥

३१ सूक्त। विश्वेदेव देवता। त्रिष्टुप् और जगती छन्द।

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा।
प्र यद्वयो न पप्तन् वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥ १ ॥
अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम्।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥
उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥ ३ ॥
उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम्।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती ॥ ४ ॥
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥

११ मरुतो, हम सुखकी अभिलाषासे स्तुति और नमस्कार द्वारा तुम्हारे देव और प्रादुर्भूत तथा एकत्र बलकी स्तुति करते हैं, ताकि उसके द्वारा हम प्रतिदिन वीर अपत्यवाले होकर प्रशंसनीय धनका उपयोग कर सकें।

---

१ जिस समय हमारा रथ अन्नाभिलाषी, मदमत्त और वन-निषण्ण पक्षियोंकी तरह निवास-स्थानसे दूसरे स्थानको जाता है, उस समय हे मित्र और वरुण, तुम लोग आदित्य, रुद्र और वसुओंके साथ मिलकर उसकी रक्षा करते हो।

२ समान प्रीतिवाले देवो, इस समय हमारे रथकी रक्षा करो। वह अन्न खोजनेके लिये देशमें गया है। इस रथमें जोते हुए घोड़े कदमसे मार्ग तै करते और विस्तीर्ण भूमिके उन्नत प्रदेशपर आघात करते हैं।

३ अथवा— सर्वदर्शी इन्द्र मरुतोंके पराक्रमसे उत्कृष्ट कर्म सम्पन्न करके, स्वर्ग लोकसे आते हुए, हिंसा-शून्य आश्रयके द्वारा महाधन और अन्न-प्राप्तिके लिये हमारे रथके अनुकूल हों।

४ अथवा—संसारके सेवनीय वह त्वष्टा देव, देवपत्नियोंके साथ, प्रीतियुक्त होकर हमारे रथको चलावें। इला, महादीप्तिमान् भग, द्यावापृथिवी, बहुधी पूषा और सूर्याके स्वामी दोनों अश्विनीकुमार हमारा यह रथ चलावें।

५ अथवा—प्रसिद्ध, द्युतिमती, सुभगा, परस्पर-दर्शनी और जीवोंकी प्रेरयित्री उषा और रात्रि हमारा रथ चलावें। हे आकाश और पृथिवी, तुम दोनोंकी, नये स्तोत्रसे स्तुति करता हूँ। स्थावर व्रीहि आदि अन्न देता हूँ। ओषधि, सोम और पशु—मेरे तीन प्रकारके अन्न हैं।

उत वः शंसमुशिजामिवश्मस्यहिर्बुध्न्योज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेपान्नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥
एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसेसम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अहधीतिमश्याः ॥ ७ ॥



३२ सूक्त । १ के द्यावापृथिवी, २—३ के इन्द्र, ४—५ के राका, ६—७ के सिनीवाली और ८ के छ देवियाँ देवता हैं।
अनुष्टुप् और जगती छन्द ।

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।
ययोरायुः प्रतरन्ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वामहोदधे ॥ १ ॥
मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मान आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मानोवियौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥ २ ॥
अहेलता मनसा श्रुष्टिमावह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ३ ॥

६ देवगण, तुम हमारी स्तुतिकी इच्छा करो। हम तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं। अन्तरीक्ष-जात अहि देवता (अहिर्बुध्न्य), सूर्य (अज एकपात्), त्रित, उरुनिवास इन्द्र (ऋभुक्षा) और सविता हमें अन्न प्रदान करें। शीघ्रगामी जल—नप्ता (अग्नि) हमारी स्तुतिसे प्रसन्न हों।

७ यजनीय विश्वदेवगण, हम तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं। तुम सर्वापेक्षा स्तुति-योग्य हो। अन्न और बलके अभिलाषी मनुष्योंने तुम्हारे लिये स्तुति बनायी है। रथके अश्वकी तरह तुम्हारा दल हमारे लिये आवे।

---

१ द्यावापृथिवी, जो स्तोता यज्ञ और तुम्हें प्रसन्न करनेकी इच्छा करता है, उसके तुम आश्रय-दाता होओ। तुम्हारा अन्न सर्वापेक्षा उत्कृष्ट है। सभी द्यावापृथिवीकी स्तुति करते हैं। अन्नकामी होकर मैं महास्तोत्र द्वारा तुम्हारा स्तव करूँगा।

२ इन्द्र, शत्रुकी गुप्त माया हमें दिन या रातमें मारने न पावे। हमें कष्ट—दात्री शत्रु-सेनाके वशमें नहीं करना। हमारी मैत्री नहीं छुड़ाना। हृदयमें हमारे सुखकी आकांक्षा करके हमारी मित्रताकी स्मृति करना। तुम्हारे पास हम यही कामना करते हैं।

३ इन्द्र, प्रसन्न चित्तसे सुखकरी, दुग्धवती, मोटी और मजबूत गायको ले आना। इन्द्र, तुम्हें सब बुलाते हैं। तुम बहुत जोर चलते हो। तुम द्रुतभाषी हो। मैं दिन-रात तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ४ ॥
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढिनः ॥ ६ ॥
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७ ॥
या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥



४ अनुवाक् । ३३ सूक्त । रुद्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥
त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ २ ॥

---

४ मैं उत्कृष्ट स्तोत्र द्वारा आह्वान-योग्य राका वा पूर्णिमा रात्रि देवीको बुलाता हूँ । वह सुभग हैं, हमारा आह्वान सुनें । वह स्वयं हमारा अभिप्राय जानकर अच्छेद्य सूचीके द्वारा हमारे कर्मको बुनें । वह विक्रान्त बहुधनवान् और वीर्यवान् पुत्र प्रदान करें ।

५ राका देवी, तुम जिस सुन्दर अनुग्रहसे हव्यदाताको धन देती हो, आज प्रसन्न चित्तसे, उसी अनुग्रहके साथ, पधारो । शोभन-भाग्यवती, हजारों प्रकारसे तुम हमारी पुष्टि करती हो ।

६ हे स्थूल-जाता सिनीवाली (अमावास्या), तुम देवोंकी भगिनी हो । प्रदत्त हव्यकी सेवा करो । हमें अपत्य दो ।

७ सिनीवाली (अमावास्या वा देवपत्नी) सुबाहु, सुन्दर अंगुलियोंवाली, सुप्रसविनी और बहुप्रसविनी हैं । उन्हीं लोक-रक्षिका देवीको लक्ष्य करके हव्य दो ।

८ जो गुङ्गु, कुहू अथवा देवपत्नी हैं, जो सिनीवाली, राका और सरस्वती हैं, उन्हें मैं बुलाता हूँ । मैं आश्रयके लिये इन्द्राणी और सुखके लिये वरुणानीको बुलाता हूँ ।

---

१ मरुतोंके पिता रुद्र, तुम्हारा दिया हुआ सुख हमारे पास आवे । सूर्य-दर्शनसे हमें अलग नहीं करना । हमारा वीर पुत्र शत्रुओंको पराजित करे । रुद्र, हम पुत्रों और पौत्रोंमें अनेक हो जायँ ।

२ रुद्र, हम तुम्हारी दी हुई सुखकारी ओषधिके द्वारा सौ वर्ष जीवित रहें । हमारे शत्रुओंका विनाश करो हमारा पाप सर्वांशतः दूर कर दो । सर्वशरीरव्यापी व्याधिको भी दूर करो ।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षिणः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीतीरपसो युयोधि ॥ ३ ॥
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४॥
हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५॥
उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीवच्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥६॥
क्वस्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥७॥
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥८॥
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्नवा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥९॥

---

३ रुद्र, ऐश्वर्यमें तुम सबसे श्रेष्ठ हो । हे वज्रबाहु, प्रवृद्धोंमें तुम अतीव प्रवृद्ध हो । हमें पापके उस पार ले चलो हमारे पास पाप न आने पावे ।

४ अभीष्टवर्षी रुद्र, हम अन्याय्य नमस्कार, अन्याय्य स्तुति अथवा मिश्रद्ध देवोंके सत्य आह्वान द्वारा तुम्हें क्रुद्ध न करें । हमारे पुत्रोंको ओषधि द्वारा परिपुष्ट करो । मैंने सुना है, तुम वैद्योंमें सर्वश्रेष्ठ हो ।

५ जो रुद्रदेव हव्यके साथ आह्वान द्वारा आहूत होते हैं, उनका, स्तोत्र द्वारा, मैं क्रोध दूर करूंगा । कोमलोदर, शोभन आह्वानवाले, बभ्रु (पीत) वर्ण और सुनासिक रुद्र हमें न मारें ।

६ मैं प्रार्थना करता हूँ कि, अभीष्टवर्षी और मरुत्वाले रुद्र मुझे दीप्त अन्न द्वारा तृप्त करें । जैसे धूपका मारा मनुष्य छायाको आश्रित करता है, वैसे ही मैं भी पाप-शून्य होकर रुद्रदत्त सुख प्राप्त करूंगा । मैं रुद्रकी परिचर्या करूंगा ।

७ रुद्र, तुम्हारा वह सुखदाता हाथ कहाँ है, जिससे तुम दवा तैयार करके सबको सुखी करते हो । अभीष्टवर्षी रुद्र, देव-पापके विघातक होकर तुम मुझे शीघ्र क्षमा करो ।

८ बभ्रु वर्ण, अभीष्टवर्षी और श्वेत आभावाले रुद्रको लक्ष्य करके अतीव महती स्तुतिका हम उच्चारण करते हैं । हे स्तोता, नमस्कार द्वारा तेजस्वी रुद्रकी पूजा करो । हम उनके उज्ज्वल नामका संकीर्त्तन करते हैं ।

९ दृढाङ्ग, बहुरूप, उग्र और बभ्रु वर्ण रुद्र दीप्त और हिरण्मय अलंकारसे सुशोभित होते हैं । रुद्र सारे भुवनोंके अधिपति और भर्त्ता हैं । इनका बल अलग नहीं होता ।

अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥१०॥
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृला जरित्रे रुद्रस्तवानोन्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः ॥११॥
कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रो पयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२॥
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृल ॥१४॥
एव बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥



१० पूजायोग्य रुद्र, तुम धनुर्वाणधारी हो। पूजार्ह, तुम नाना रूपोंवाले हो और पूजनीय निष्कको धारण किया है। अर्चनार्ह, तुम सारे व्यापक संसारकी रक्षा करते हो। तुम्हारी अपेक्षा अधिक बली कोई नहीं है।

११ हे स्तोता, विख्यात रथपर चढ़े, युवा, पशुकी तरह भयंकर और शत्रुओंके विनाशक तथा उग्र रुद्रकी स्तुति करो। रुद्र, स्तुति करनेपर तुम हमें सुखी करते हो। तुम्हारी सेना शत्रुका विनाश करे।

१२ जैसे आशीर्वाद देते समय पिताको पुत्र नमस्कार करता है, वैसे ही हे रुद्र, तुम्हारे आनेके समय हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। रुद्र, तुम बहुधनदाता और साधुओंके पालक हो। स्तुति करनेपर तुम हमें ओषधि देते हो।

१३ मरुतो, तुम्हारी जो निर्मल ओषधि है, हे अभीष्टवर्षिगण, तुम्हारी जो ओषधि अतीव सुखदात्री है, जिस ओषधिको हमारे पिता मनुने चुना था, वही सुखकर और भयहारक ओषधि हम चाहते हैं।

१४ रुद्रका हेति-आयुध हमें छोड़ दे। दीप्त रुद्रकी महती दुर्मति भी हमें छोड़ दे। सेचन-समर्थ रुद्र, धनवान् यजमानके प्रति अपने धनुषकी ज्या शिथिल करो। हमारे पुत्रों और पौत्रोंको सुखी करो।

१५ अभीष्टवर्षी, बभ्रुवर्ण, दीप्तिमान्, सर्वज्ञ और हमारा आह्वान सुननेवाले रुद्र, हमारे लिये तुम यहाँ ऐसी विवेचना करो कि, हमारे प्रति कभी क्रुद्ध न हो, हमें कभी विनष्ट न करो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।

३४ सूक्त । मरुद्गण देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥१॥
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्यभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥२॥
उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथपृषतीभिः समन्यवः ॥३॥
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४॥
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५॥
आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥६॥

१ जलधारासे मरुत् लोग आकाशको छिपा लेते हैं। उनका बल दूसरेको पराजित करता है। वह पशुकी तरह भयंकर हैं। वे बल द्वारा संसारको व्याप्त कर लेते हैं। वे वह्निकी तरह दीप्तिमान् और जलसे परिपूर्ण हैं। वे भ्रमणकर्त्ता मेघको इधर-उधर भेजकर जलको गिराते हैं।

२ सुवर्णहृदय मरुतो, चूँकि सेचन-समर्थ रुद्रने पृश्नीके निर्मल उदरमें तुम्हें उत्पन्न किया है; इसलिये, जैसे आकाश नक्षत्रोंसे सुशोभित होता है, वैसे ही, तुम भी अपने आभरणसे सुशोभित होओ। तुम शत्रु-भक्षक और जल-प्रेरक हो। तुम मेघस्थ विद्युत्की तरह शोभित होओ।

३ युद्धमें तुरङ्गकी तरह मरुद्गण विशाल भुवनको सिक्त करते हैं। वे घोड़ेपर चढ़कर शब्दायमान मेघके कानके पाससे होकर द्रुत वेगसे जाते हैं। मरुतो, तुम हिरण्य-शिरस्त्राणवाले और समान-क्रोधवाले हो। तुम वृक्ष आदि कम्पित करते हो। तुम पृषती (बिन्दु-चिह्नित) मृगपर चढ़कर अन्नके लिये जाते हो।

४ मरुद्गण मित्रकी तरह, हव्ययुक्त यजमानके लिये, सर्वदा समस्त जल ढोते हैं। वे दानशील, पृषती-मृग वाले, अक्षय, अन्नवाले और अकुटिलगामी अश्वकी तरह पथिकोंके आगे जाते हैं।

५ हे समान-क्रोध और दीप्तिमान् आयुधवाले मरुतो, जैसे हंस अपने निवास-स्थानपर जाता है, वैसे ही तुम भी महाजलस्रोतवाले मेघोंके साथ और धेनु-युक्त होकर विघ्न-शून्य मार्गसे, मधुर सोम-रससे उत्पन्न हर्ष-लाभके लिये, आओ।

६ हे समान-क्रोधवाले मरुतो, जैसे तुम स्तोत्रसे आते हो, वैसे ही हमारे अभिषुत अन्नके पास आओ। घोड़ीकी तरह गायका अधोदेश पुष्ट करो और यजमानका यज्ञ अन्नवाला करो।

तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥७॥
यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ८ ॥
यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥ ९ ॥
चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ १० ॥
तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान् ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥ ११ ॥
ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥ १२ ॥
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥ १३ ॥

७ मरुतो, तुम हमें अन्न-युक्त पुत्र दो। वह, तुम्हारे आगमनके समय, प्रतिदिन तुम्हारा गुण-कीर्त्तन करेगा। तुम स्तोताओंको अन्न दो। युद्ध-कालमें स्तोताको दानशीलता, युद्ध-कौशल, ज्ञान और अक्षय तथा अतुल बल दो।

८ मरुतोंके वक्षःस्थलमें दीप्त आभरण है। उनका दान सबके लिये सुखकर है। वे जिस समय रथमें घोड़े जोतते हैं, उसी समय जैसे धेनु बछड़ेको दूध देती है, वैसे ही, वे हव्यदाता यजमानके लिये उसके गृहमें यथेष्ट अन्न देते हैं।

९ मरुतो, जो मनुष्य, वृककी तरह, हमसे शत्रुता करता है, हे वसुगण, उस हिंसकके हाथसे हमें बचाओ। उसे ताप-प्रद चक्र द्वारा चारों ओरसे हटाओ। रुद्रगण, तुम उसके सारे अस्त्रोंको दूर फेंककर उसे विनष्ट करो।

१० मरुतो, जिस समय तुमने पृश्निके अधोभागका दोहन किया था, उस समय स्तोताके निन्दककी हत्या की थी और त्रितके शत्रुओंका बध किया था। अहिंसनीय रुद्रपुत्रो, उस समय तुम्हारी विचित्र क्षमताको सबने जाना था।

११ महाशुभग मरुतो, तुम सदा यज्ञ-स्थलमें जाते हो। यथेष्ट और प्रार्थनीय सोमके तैयार हो जानेपर हम तुम्हें बुलाते हैं। स्तुति-पाठक स्रुक्को उठाकर स्वर्ण-वर्ण और सर्व-श्रेष्ठ स्तुति-योग्य मरुद्गणसे प्रशंसनीय धनकी याचना करते हैं।

१२ स्वर्गगामी अङ्गिरोरूपी मरुतोंने प्रथम यज्ञका वहन किया था। उषाके आनेपर मरुद्गण हमें यज्ञ आदिमें प्रवृत्त करें। जैसे उषा अरुणवर्ण किरण-जालसे कृष्णवर्णा रात्रिको हटाती हैं, वैसे ही मरुद्गण विशाल, दीप्तिमान् और जल-स्रावी ज्योतिसे अन्धकारको दूर करते हैं।

१३ रुद्रपुत्र मरुद्गण वीणा-विशेष औ अरुणवर्ण अलंकारसे युक्त होकर जलके निवास-भूत मेघमें वर्द्धित हुए हैं। मरुद्गण सर्वत्र प्रभाववाले बलसे जल लाते हुए प्रसन्नता-दायक और मनोहर सौन्दर्य धारण करते हैं।

ताँ इयानो महि वरूथमूतय उपघेदेना नमसा गृणीमसि।
त्रितो न यान् पञ्चहोतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥ १४ ॥
यथारध्रं पारयथात्यंहो यथा निदो मुञ्चथ वन्दितारम्।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥ १५ ॥



३५ सूक्त। अपां नपात् देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे।
अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥ १ ॥
इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥
समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ ३ ॥
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ४ ॥

---

१४ मरुतोंसे वरणीय धनकी याचना करते हुए, अपनी रक्षाके लिये, स्तोत्र द्वारा हम उनकी स्तुति करते हैं। अभीष्ट-सिद्धिके लिये, चक्र द्वारा, त्रित उन मुख्य प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान आदि पाँच होताओं (मरुतों) को आवर्तित करते हैं।

१५ मरुतो, तुम जिस आश्रयसे आराधक यजमानको पापसे बचाते हो, जिससे स्तोताको शत्रुके हाथसे मुक्त करते हो, मरुतो, तुम्हारा वही आश्रय हमारे सामने आवे।

---

१ मैं अन्नकी इच्छासे इस स्तुतिका उच्चारण करता हूँ। शब्दकर्त्ता और शीघ्रगन्ता अपां नपात् (जल-पौत्र अग्नि) नामके देवता हमें प्रचुर अन्न और सुन्दर रूप दें। मैं उनकी स्तुति करता हूँ। वह स्तुतिको पसन्द करते हैं।

२ उनके लिये हम हृदयसे सुरचित इस मंत्रका अच्छी तरह उच्चारण करेंगे; वह इसे बार-बार जानें। स्वामी अपां नपात्‌ने शत्रु-क्षेपणकारी बलसे समस्त भुवनको उत्पन्न किया है।

३ कोई-कोई जल इकट्ठा होता है, उसके साथ दूसरा मिलता है। वह सब समुद्रके बड़वानलको प्रसन्न करते हैं। विशुद्ध जल निर्मल और दीप्तिमान् अपां नपात् नामक देवताको चारो ओर घेरकर रहता है।

४ दर्परहित युवती जल-संहति, युवाको तरह, अपां नपात् देवताको अलंकृत और परिवेष्टित करती है। इन्धन-रहित और घृत-पूत अपां नपात् हमारे धनवाले अन्नकी उत्पत्तिके लिये जलके बीच निर्मल तेजो बलसे दीप्त हैं।

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम्॥ ५॥
अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो विनशन्नानृतानि॥ ६॥
स्व आदमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति।
सो अपां नपादुर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुदेयाय विधते विभाति॥ ७॥
यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्रजायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः॥ ८॥
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परियन्ति यह्वीः॥ ९॥
हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः।
हिरण्ययात्परियोनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै॥ १०॥
तदस्यानीकमुत चारुनामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम्।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य॥ ११॥

---

५ इला, सरस्वती और भारती नामकी तीनों देवियाँ दुःख-रहित अपां नपात् देवताके लिये अन्न धारण करती हैं। वे जलके बीच उत्पन्न पदार्थके लिये प्रसारित होती हैं। अपां नपात् सबसे प्रथम उत्पन्न जलके सारभूत सोमको पीते हैं।

६ अपां नपात् द्वारा अधिष्ठित समुद्रमें उच्चैःश्रवा नामक अश्वका जन्म है—इस वरणीयका जन्म है। हे देव, तुम अपहर्त्ता हो। हिंसकके संपर्कसे स्तोताओंकी रक्षा करो। दानशून्य और झूठे लोग अपरिपक्व अथवा परिपाक-योग्य जलमें रहकर भी इस अहिंसनीय देवताको नहीं प्राप्त होते।

७ जो अपने घरमें हैं और जिनकी गायको सरलतासे दूहा जाता है, वही अपां नपात् देवता वृष्टिका जल बढ़ाते और उत्तम अन्न भक्षण करते हैं। वे जलके बीच प्रबल होकर यजमानको धन देनेके लिये भली भाँति दीप्तियुक्त होते हैं।

८ जो अपां नपात् सत्यवान्, सदा एक रूपसे रहनेवाले और अति विस्तीर्ण हैं, जो जलके बीच पवित्र देवतेजके द्वारा प्रकाशित होते हैं, सारे भूत उन्हींकी शाखाएँ हैं। फल-फूलके साथ सारी ओषधियाँ उन्हींसे उत्पन्न हैं।

९ अपां नपात् कुटिलगति मेघके बीच स्वयं ऊर्ध्व भावसे अवस्थित होनेपर भी बिजलीको पहनकर अन्तरीक्षमें चढ़े हैं। सर्वत्र उनके उत्तम माहात्म्यका कीर्त्तन करते हुए हिरण्यवर्णा नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

१० वह हिरण्यरूप, हिरण्याकृति और हिरण्यवर्णा हैं। वह हिरण्मय स्थानके ऊपर बैठकर शोभा पाते हैं। हिरण्यदाता उन्हें अन्न देते हैं।

११ अपां नपात्का रश्मिसमूह-रूप शरीर और नाम सुन्दर हैं। ये दोनों, गूढ़ होनेपर भी, वृद्धिको प्राप्त होते हैं। युवती जलसंहति उन हिरण्यवर्णाको अन्तरीक्षमें भली भाँति दीप्ति-युक्त करती हैं; क्योंकि जल ही उसका अन्न है।

अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
सं सानु मार्जिम दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परिवन्द ऋग्भिः ॥ १२ ॥
स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥ १३ ॥
अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥ १४ ॥
अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिं ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥

३६ सूक्त । १ के इन्द्र २ और मधु, के मरुद्गण और माधव, ३ के त्वष्टा और
शुक्र, ४ के अग्नि और शुचि, ५ के इन्द्र और नभ तथा
६ मंत्रके नमस्य देवता हैं । जगती छन्द ।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ठ गा अपोधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥ १ ॥

---

१२ अपने मित्र और बहुत देवोंके आदि अपां नपात् देवताकी, यज्ञ, हव्य और नमस्कार द्वारा, हम परिचर्या करेंगे । मैं उनके उन्नत प्रदेशको भली भाँति अलंकृत करूँगा । मैं काष्ठ और अन्न द्वारा उनको धारण करता और मंत्र द्वारा उनकी स्तुति करता हूँ ।

१३ सेचन-समर्थ उन अपां नपात्ने इस सारे जलके बीच गर्भ उत्पन्न किया है । वही कभी पुत्ररूप होकर जल पीते हैं । सारा जल उन्हींको चाहता है । दीप्तियुक्त वही स्वर्गीय अग्नि इस पृथिवीपर अन्य शरीरसे व्याप्त हैं ।

१४ अपां नपात् उत्कृष्ट स्थानमें रहते हैं । वह तेज द्वारा प्रतिदिन दीप्तियुक्त हैं । महान् जल-समूह उनके लिये अन्न ढोते हुए सतत गति द्वारा उनको वेष्टन किये हुए है ।

१५ अग्निदेव, तुम शोभनीय हो । पुत्र-लाभके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ । यजमानके हितके लिये सुरचित स्तुति लेकर आया हूँ । समस्त देवगण जो कल्याण करते हैं, वह सब हमारा हो । पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति कर सकें ।

---

१ इन्द्र, तुम्हारे उद्देश्यसे प्रेरित यह सोम गव्य और जलसे युक्त है । यज्ञके नेता लोग इस सोमको प्रस्तरखण्ड द्वारा अभिषुत करके मेष-लोममय दशापर्व द्वारा इसे संस्कृत करते हैं । इन्द्र, तुम सारे संसारके ईश्वर हो । सारे देवोंके प्रथम स्वाहाकारमें अग्निमें प्रक्षिप्त और वषट्कार द्वारा दत्त सोम होताके पाससे पान करो ।

यज्ञैः सम्मिश्ला पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २ ॥
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ ३ ॥
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ४ ॥
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥ ५ ॥
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥६॥



---

२ यज्ञके साथ संयुक्त, पृषतीयोजित रथपर अवस्थित, अपने आयुधसे शोभित, आभरण-प्रिय, भरत वा रुद्रके पुत्र और अन्तरीक्षके नेता मरुतो, तुम कुशपर बैठकर पोताके पाससे सोम पान करो।

३ शोभन आह्वानवाले देवो, तुम हमारे साथ आओ, कुशपर बैठो और विहार करो। अनन्तर हे त्वष्टा, तुम देवों और देवपत्नियोंके शोभनीय दलके साथ अन्नकी सेवा करके तृप्ति प्राप्त करो।

४ मेधावी अग्नि, इस यज्ञमें देवोंको बुलाओ और उनके लिये यज्ञ करो। देवोंके आह्वानकारी अग्नि, तुम हमारे हव्यके अभिलाषी होकर गार्हपत्य आदिके तीनों स्थानोंपर बैठो। होमके लिये उत्तर वेदीपर लाये हुए सोम-रूप मधु स्वीकार करो। अग्नीध्रके पाससे सोमपान करो और अपने अंशमें तृप्त होओ।

५ धनवान् इन्द्र, तुम प्राचीन हो। जिस सोम द्वारा तुम्हारे हाथमें शत्रु-विजयी सामर्थ्य और बल है, वही तुम्हारे लिये अभिषुत और आहुत हुआ है। तुम तृप्त होकर ब्राह्मण ऋत्विक्के पाससे सोम पान करो।

६ हे मित्रावरुण, तुम हमारे यज्ञकी सेवा करो। होता बैठकर चिरन्तनी स्तुतिका उच्चारण करते हैं। तुम हमारा आह्वान सुनो। तुम शोभावाले हो। ऋत्विकों द्वारा परिवेष्टित अन्न तुम्हारे सामने है। इस मधुर सोमरसका, प्रशास्ताके पाससे, पान करो।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय



३७ सूक्त । १—४ द्रविणोदा, ५ के अश्विद्वय और ६ मंत्रके
देवता अग्नि हैं। जगती छन्द ।

मन्दस्व होत्रादनुजोषमन्धसोध्वर्यवः सपूर्णां वष्टयासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥१॥
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्योनामपत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधुपोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥२॥
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेरिषण्यन्वीलयस्वा वनस्पते ।
आयुया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥३॥
अपाद्धोत्रादुतपोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥४॥
अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं र ं युञ्जाथामिहवां विमोचनम् ।
पृंक्तं हवींषि मधुनाहिकं गतमथासोमं पिबतं वाजिनोवसू ॥५॥

---

१ हे द्रविणोदा वा धनप्रिय अग्नि, होतृ-कृत यज्ञमें अन्न ग्रहण करके प्रसन्न और हृष्ट बनो। अध्वर्युगण, द्रविणोदा पूर्णाहुति चाहते हैं; इसलिये उनके लिये वह सोम प्रदान करो। सोमाभिलाषी द्रविणोदा अभीष्ट फल देनेवाले हैं। द्रविणोदा, होताके यज्ञमें ऋतुओंके साथ सोम पान करो।

२ हमने पहले जिसको बुलाया है, इस समय भी उन्हींको बुलाते हैं। वह आह्वान-योग्य हैं; क्योंकि वह दाता और सबके अधिपति हैं। उनके लिये अध्वर्युओं द्वारा सोम-रूप मधु तैयार किया गया है। द्रविणोदा, पोताके यज्ञमें ऋतुओंके साथ सोम पान करो।

३ द्रविणोदा, तुम जिस अश्वपर जाते हो, वह तृप्त हो। वनस्पति, किसीकी हिंसा न करके दृढ़ होओ। धर्षणकारी, नेष्टाके यज्ञमें आकर ऋभुओंके साथ सोम पान करो।

४ द्रविणोदा, जिन्होंने होताके यज्ञमें सोम पान किया है, जो पिताके यज्ञमें हृष्ट हुए हैं, जिन्होंने नेष्टाके यज्ञमें प्रदत्त अन्न भक्षण किया है, वही स्वर्ण-दाता ऋत्विक्के अशोधित और मृत्यु-निवारक चतुर्थ सोम-पात्रका पान करें।

५ अश्विनीकुमारो, जो रथ शीघ्रगामी, तुम्हारा वाहन और अभीष्ट स्थानपर तुम्हें उतार देनेवाला है, आज उसी रथको इस यज्ञमें हमारे सोमने योजित करो। हमारा हव्य सुस्वादु करो और यहाँ आओ। अन्नवाले अश्विद्वय, हमारा सोम पान करो।

जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्मजन्यं जोषि सुष्टुतिम्।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥६॥

३८ सूक्त। सविता देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात्।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१॥
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२॥
आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३॥
पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥४॥
नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सविता ॥५॥

---

६ अग्निदेव, तुम समिधा, आहुति, लोगोंके हितकर स्तोत्र और सुन्दर स्तुतिसे युक्त होओ। तुम सबके आश्रय-दाता और हमारे हव्यके अभिलाषी होओ। हमारा हव्य चाहनेवाले सारे देवोंको, ऋभुओं और विश्वदेवोंके साथ, सोम पान कराओ।

---

१ प्रकाशक और जगद्वाहक सविता वा सूर्य, प्रसवके लिये, प्रति दिन उदित होते हैं। यही उनका कर्म है। वह स्तोताओंको रत्न देते और सुन्दर यज्ञवाले यजमानको मंगलभागी बनाते हैं।

२ प्रलम्बबाहु और प्रकाशवाले सविता, विश्वके आनन्दके लिये, उदित होकर बाहु प्रसारित करते हैं। इनके कार्यके लिये अतीव पवित्र जल-समूह प्रवाहित होता है और वायु भी सर्वतोव्यापी अन्तरीक्षमें विहरण करता है।

३ जाते-जाते जिस समय सविता शीघ्रगामी किरणों द्वारा विमुक्त होते हैं, उस समय वह निरन्तरगामी पथिकको भी विरत करते हैं। जो शत्रुके विरुद्ध जाते हैं; सविता उनकी जानेकी इच्छाको भी निवृत्त करते हैं। सविताके कर्मके अनन्तर रात्रिका आगमन होता है।

४ वस्त्र बुननेवाली रमणीकी तरह रात्रि पुनः आलोकको, भली भाँति, वेष्टन करती है। बुद्धिमान् लोग जो कर्म करते हैं, वह करनेमें समर्थ होनेपर भी मध्य मार्गमें रख देती है। विराम-रहित और ऋतुविभाग-कर्त्ता प्रकाशक सविता जिस समय फिर उदित होते हैं, उस समय लोग शय्या छोड़ते हैं।

५ अग्निके गृहमें स्थित प्रभूत तेज यजमानके भिन्न-भिन्न गृह और समस्त अन्नमें अधिष्ठित है। माता उषाने सविता द्वारा प्रेरित प्रज्ञापक यज्ञका श्रेष्ठ भाग पुत्र अग्निको दान किया है।

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनुव्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥६॥
त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वितस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७॥
याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमापशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८॥
नयस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥९॥
भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आयेवामस्य सङ्गथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥
अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आगात् ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥११॥

---

६ स्वर्गीय सविताके व्रतकी समाप्ति होनेपर जयाभिलाषी राजा, युद्ध-यात्रा कर चुकनेपर भी, लौट आता है। सारे जंगम पदार्थ घरकी अभिलाषा करते और सदा कार्य-रत व्यक्ति अपने किये आधे कर्मको भी छोड़कर घरकी ओर लौटता है।

७ सविता, अन्तरीक्षमें तुमने जो जल-भाग रख छोड़ा है, जलान्वेषणकर्त्ता लोग चारो ओर उसे पाते हैं। तुमने पक्षियोंके लिये वृक्षोंका विभाग किया है। कोई भी सविताके कार्यकी हिंसा नहीं कर सकता।

८ सविताके अस्त होनेपर सदा गमनशील वरुण सारे जंगम पदार्थोंको सुखकर, वाञ्छनीय और सुगम वास-स्थान प्रदान करते हैं। जिस समय सविता सारे भूतोंको स्थान—स्थानपर अलग-अलग कर देते हैं, उस समय पशु-पक्षिगण भी अपने-अपने स्थानको जाते हैं।

९ इन्द्र जिसके व्रतकी हिंसा नहीं करते, वरुण, मित्र, अर्यमा और रुद्र भी हिंसा नहीं करते, शत्रुगण भी हिंसा नहीं करते, उन्हीं द्युतिमान् सविताको कल्याणके लिये इस प्रकार नमस्कार द्वारा हम आह्वान करते हैं।

१० जिनकी स्तुति सारे मनुष्य करते हैं, जो देव-पत्नियोंके रक्षक हैं, वही सविता हमारी रक्षा करें। हम भज-नीय, बहुप्रज्ञ और ध्यान-योग्य सविताको बलवान् करते हैं। हम धन और पशुकी प्राप्ति और संचयके सम्बन्धमें सविताके प्रिय हों।

११ सविता, तुमने हमें जो प्रसिद्ध और रमणीय धन प्रदान किया है, वह द्युलोक, भूलोक और अन्तरीक्षलोक-से हमारे पास आवे। जो धन स्तोताओंके वंशजोंके लिये शुभकर है, मैं बहुत-बहुत स्तुति करता हूँ कि, मुझे वही धन दो।

३९ सूक्त। अश्विद्वय देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

ग्रावाणेवतदिदर्थं जरेथेगृध्रेववृक्षं निधिमन्तमच्छ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१॥
प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे।
मेने इव तन्वा शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२॥
शृङ्गेवनः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तारोभिः।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चायातं रथ्येव शक्रा ॥३॥
नावेवनः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४॥
वातेवाजुर्या नद्येवरीतिरक्षी इव चक्षुषायातमर्वाक्।
हस्ताविव तन्वे शंभविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥
ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

१ अश्विद्वय, शत्रुके प्रति प्रेरित प्रस्तर-खण्डद्वयकी तरह शत्रुको बाधा दो। जैसे दो पक्षी वृक्षपर आते हैं, वैसे ही तुम भी यजमानके निकट आओ। मंत्रोच्चारक ब्रह्मा नामके ऋत्विक् और देशमें दो दूतोंकी तरह तुम बहुतोंके बुलाने योग्य हो।

२ अश्विद्वय, प्रातःकाल जानेवाले दो रथियोंकी तरह तुम वीर हो, दो छागोंकी तरह यमज हो, दो स्त्रियोंकी तरह सुन्दर शरीरवाले हो, दम्पतीकी तरह संगत और सबके कर्मज्ञाता हो। तुम दोनों भक्तके पास आओ।

३ देवोंमें प्रथम अश्विद्वय, तुम पशुकी दोनों सींगों वा अश्व आदिके दोनों खुरोंकी तरह वेगवान् होकर हमारे सामने आओ। शत्रु-हन्ता और स्वकर्म-समर्थ अश्विद्वय, जैसे दिनमें चक्रवाक-दम्पती आते हैं अथवा जैसे दो रथी आते हैं, वैसे ही तुम हमारे सामने आओ।

४ अश्विद्वय, नौकाकी तरह तुम हमें पार उतार दो। रथके युगकी तरह, रथचक्रके नाभि-फलककी तरह, उसके पार्श्वस्थ फलककी तरह और चक्रके बाह्यदेशके वलयकी तरह हमें पार करो। दो कुक्कुरोंकी तरह तुम हमारे शरीरको हिंसासे बचाओ। दो वर्मकी तरह तुम हमें जरासे बचाओ।

५ अश्विद्वय, दो वायुओंकी तरह अक्षय, दो नदियोंकी तरह शीघ्रगामी और दो नेत्रोंकी तरह दर्शक हो। तुम हमारे सामने आओ। तुम दोनों हाथों और पैरोंकी तरह शरीरके सुखदाता हो। तुम हमें श्रेष्ठ धनकी ओर ले जाओ।

६ अश्विद्वय, दोनों ओठोंकी तरह मधुर-वाक्यका उच्चारण करो, दोनों स्तनोंकी तरह, हमारे जीवन धारणके लिये, दूध पिलाओ, दोनों नाकोंकी तरह हमारे शरीरके रक्षक होओ और दोनों कानोंकी तरह हमारे श्रोता होओ।

हस्तेव शक्तिमभिसन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं संशिशीतम् ॥७॥
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्मस्तोमं गृत्समदासो अक्रन्।
तानि नरा जुजुषाणोपयातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥



४० सूक्त। सोम और पूषा देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥१॥
इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥२॥
सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥
दिव्यन्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं विष्यतां नाभिमस्मे ॥४॥

---

७ अश्विद्वय, दोनों द्वारोंकी तरह हमें सामर्थ्य प्रदान करो। द्यावापृथिवीकी तरह हमें जल दो। अश्विद्वय, ये सब स्तुतियाँ तुम्हें चाहती हैं। तुम सान चढ़ानेके यंत्रके द्वारा तलवारकी तरह इन्हें तीक्ष्ण करो।

८ अश्विद्वय, गृत्समद ऋषिने तुम्हारी वृद्धिके लिये ये सब स्तोत्र और मंत्र बनाये हैं। तुम नेता और अतीव [illegible] हो। तुम्हारे पास यह सब स्तुतियाँ आवें। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें।

---

१ सोम और पूषा, तुम धन, द्युलोक और पृथिवीके जनक हो। जन्मके अनन्तर ही तुम सारे संसारके रक्षक हुए हो। देवोंने तुम्हें अमरत्वका कारण बनाया है।

२ उत्पन्न होते ही [illegible] सोम और पूषाकी देवोंने सेवा की थी। ये दोनों अप्रिय अन्धकारका विनाश करते हैं। [illegible] गौओंके [illegible] पक्व दुग्ध उत्पन्न करते हैं।

३ अभीष्टवर्षी सोम और पूषा, तुम संसारके विभाजक, सप्तचक्र (सात ऋतु, मलमास लेकर) वाले संसारके [illegible] सर्वत्र वर्तमान, और पंचरश्मि (पाँच ऋतु, हेमन्त और शीतको एकमें करके) वाले हो। इच्छा होते ही [illegible] प्रेरित करते हो।

४ तुममेंसे एक (पूषा) उन्नत द्युलोकमें रहते हैं। दूसरे (सोम) ओषधि-रूपसे पृथिवी और चन्द्र-रूपसे अन्तरिक्षमें रहते हैं। तुम दोनों अनेक लोगोंमें वरणीय, बहुकीर्त्तिशाली, हमारे भोगका कारण और पशुरूप धन हमें दो।

विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणा ववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥५॥
धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥६॥

४१ सूक्त । १-३ के इन्द्र और वायु, ४-६ के मित्रावरुण, ७-९ के अश्विद्वय, १०-१२ के इन्द्र, १३-१५ के विश्वदेवगण, १६-१८ के सरस्वती और १९-२१ मन्त्रके देवता द्यावापृथिवी हैं ।

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥१॥
नियुत्वान् वायवागह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२॥
शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः । आयातं पिबतं नरा ॥३॥
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४॥
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥५॥
ता सम्राजा घृतासुती आदित्यादानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥६॥
गोमद्रू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥

५ सोम और पूषा, तुममेंसे एक (सोम)ने सारे भूतोंको उत्पन्न किया है । दूसरे (पूषा) सारे संसारका पर्यवेक्षण कर जाते हैं । सोम और पूषा, तुम हमारे कर्मकी रक्षा करो । तुम्हारे द्वारा हम सारी शत्रु-सेनाकी जय कर डालें ।

६ संसारको प्रसन्नता देनेवाले पूषा हमारे कर्मसे तृप्ति प्राप्त करें । धनपति सोम हमें धन दान करें । द्युतिमती और शत्रु-रहिता अदिति हमारी रक्षा करें । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति कर सकें ।

---

१ वायु, तुम्हारे पास जो हजार रथ हैं, उनके द्वारा नियुत्‌गणसे युक्त होकर सोम पानके लिये आओ ।

२ वायु, नियुत्‌गणसे युक्त होकर आओ । तुमने दीप्तिमान् सोम ग्रहण किया है । सोमाभिषवकारी यजमानके घरमें तुम जाते हो ।

३ नेता इन्द्र और वायु, तुम आज नियुत्‌गणसे युक्त होकर और सोमके लिये आकर गव्य-मिला सोम पीओ ।

४ मित्रावरुण, तुम्हारे लिये यह सोम तैयार हुआ है । सत्यवर्द्धक तुम हमारा आह्वान सुनो ।

५ शत्रुता-शून्य राजा मित्रावरुण स्थिर, उत्कृष्ट और हजार स्तम्भोंवाले इस स्थानपर बैठें ।

६ सम्राट्, घृतान्नभोजी, अदिति-पुत्र और दाता मित्रावरुण सरलगति यजमानकी सेवा करते हैं ।

७ अश्विद्वय, नासत्यद्वय, रुद्रद्वय, यज्ञके नेता जो सोमपान करेंगे, उसी सोमको धेनु और अश्वसे युक्त करके तथा रथपर लेकर आओ ।

न यस्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू। दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥
तान अश्वोह्‌लमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९॥
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीषदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१०॥
इन्द्रश्च मृलयाति नो नन: पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ॥११॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१२॥
विश्वेदेवास आगत श्रृणुताम इमं हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत ॥१३॥
तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः। एतं पिबत काम्यम् ॥१४॥
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः। विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५॥
अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६॥
त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्। शुनहोत्रेषु मत्स्वप्रजां देवि दिदिड्ढिनः ॥१७॥
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति। या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८॥
प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे। अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

---

८ धनवर्षी अश्विद्वय, दूरस्थित वा समीपवर्त्ती मन्दभाषी मर्त्य रिपु जिस धनको नहीं चुरा सकता, उसे ही हमें दो।

९ ज्ञानार्ह अश्विद्वय, तुम हमारे पास नानारूप और धन-प्रापक धन ले आओ।

१० इन्द्र अधिक और अभिभवकारी भयको दूर करते हैं। वह स्थिर और प्रज्ञावान् हैं।

११ यदि इन्द्र हमें सुखी करें, तो हमारे साथ पाप नहीं आवेगा; हमारे सामने कल्याण उपस्थित होगा।

१२ प्रज्ञावान् और शत्रुजेता इन्द्र चारो ओरसे हमें भय-शून्य करें।

१३ विश्वदेवगण, यहाँ आओ। हमारा आह्वान सुनो और कुशके ऊपर बैठो।

१४ विश्वदेवगण, तीव्र मदवाला, रसशाली और हर्षकर यह सोम तुम्हारे लिये गृत्समदवंशीयोंके पास है। इस शोभन सोमका पान करो।

१५ जिन मरुतोंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, जिनके दाता पूषा हैं, वे ही मरुद्गण हमारा आह्वान सुनें।

१६ मातृगणमें श्रेष्ठ, नदियोंमें श्रेष्ठ और देवोंमें श्रेष्ठ सरस्वती, हम दरिद्र हैं; हमें धनी करो।

१७ सरस्वती, तुम द्युतिमती हो। तुम्हारे आश्रयसे अन्न है। शुनहोत्रोंमें तुम सोम पान करके तृप्त होओ। देवी, तुम हमें पुत्र दो।

१८ अन्नवती और जलवती सरस्वती, इस हव्यको स्वीकार करो। यह मननीय और देवोंके लिये प्रिय है। गृत्समद लोग इसे तुम्हें देते हैं।

१९ यज्ञके सुख-सम्पादक द्यावापृथिवी, तुम आओ। हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। हम हव्य-वाहन अग्निकी भी प्रार्थना करते हैं।

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥
आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोमपीतये ॥२१॥



४२ सूक्त । कपिञ्जलरूपी इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा काचिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१॥
मा त्वा श्येनः उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनुप्रदिशं कनिक्रदत् सुमङ्गलो भद्रवादी वदे ह ॥२॥
अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥



४३ सूक्त । कपिञ्जलरूपी इन्द्र देवता । जगती, मध्या, शक्वरी और अष्टि छन्द ।

प्रदक्षिणिदभिगृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगाइव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानुराजति ॥१॥

---

२० द्यावापृथिवी स्वर्ग आदिके साधक और देवोंके ओर जानेवाली हैं। हमारे इस यज्ञको देवोंके पास ले जायँ।

२१ शत्रुता-शून्य द्यावापृथिवी, सोमपानके लिये यज्ञार्ह देवगण आज तुम्हारे पास बैठें।

---

१ बारम्बार शब्दायमान और अविष्यद्वक्ता कपिञ्जल, जैसे कर्णधार नौकाको परिचालित करता है, वैसे ही, वाक्यको प्रेरित करता है। शकुनि, तुम कल्याण-सूचक होओ। किसी ओरसे किसी प्रकारकी पराजय तुम्हारे पास न आवे।

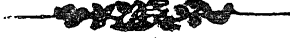
२ शकुनि, तुम्हें श्येन पक्षी न मारे—गरुड़ पक्षी भी न मारे। वह बलवान्, वीर और धनुर्धारी होकर तुम्हें न प्राप्त करे। दक्षिण दिशामें बार-बार शब्द करके और सुमंगल-शंसी होकर हमारे लिये प्रियवादी बनो।

३ शकुन्ता, सुमंगल-सूचक और प्रियवादी होकर घरकी दक्षिण दिशामें बोलो, ताकि चोर और दुष्ट व्यक्ति हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे। पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें।

---

१ समय-समयपर अन्नकी खोज करके स्तोताओंकी तरह शकुनिगण, प्रदक्षिण करके, शब्द करें। जैसे सामगायक लोग गायत्री और त्रिष्टुप् (दोनों साम) का उच्चारण करते हैं, वैसे ही कपिञ्जल भी दोनों वाक्य उच्चारण करता और श्रोताओंको अनुरक्त करता है।

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्रइव सवने शंससि।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमावद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद ॥२॥
आवदं स्त्वं शकुने भद्रमावद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धिनः।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥



२ शकुनि, जैसे उद्गाता साम गान करते हैं, वैसे ही तुम भी गाओ। यज्ञमें ब्रह्मपुत्र ऋत्विक्‌की तरह तुम शब्द करो। जैसे सेचन-समर्थ अश्व अश्वीके पास जाकर शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो। शकुनि, तुम सर्वत्र हमारे लिये मंगल-सूचक और पुण्य-जनक शब्द करो।

३ शकुनि, जिस समय तुम शब्द करते हो, उस समय हमारे लिये मंगल-सूचना करते हो। जिस समय चुप रहकर तुम बैठते हो, उस समय हमारे प्रति सुप्रसन्न रहते हो। उड़नेके समय तुम कर्करि (एक बाजा) की तरह शब्द करते हो। हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें।



द्वितीय मण्डल समाप्त



तृतीय मण्डल



२ अष्टक। ३ मण्डल। ८ अध्याय। १ अनुवाक्। १ सूक्त।
अग्नि देवता। विश्वामित्र ऋषि।× त्रिष्टुप् छन्द।

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै।
देवाँ अच्छादीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥१॥
प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन्।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥२॥
मयोदधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः।
अविन्दन्नुदर्शतमप्स्वन्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥३॥
अवर्धयन्त्सुभगं सप्तयह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥४॥

१ अग्निदेव, यज्ञ करनेके लिये तुमने मुझे सोमका वाहक किया है; इसलिये मुझे बलवान् करो। अग्नि, मैं प्रकाशमान होकर, देवोंको लक्ष्य कर, अभिषवणके लिये, प्रस्तरखण्ड ग्रहण और स्तव करता हूँ। अग्नि, तुम मेरे शरीरकी रक्षा करो।

२ अग्नि हमने भली भाँति यज्ञ किया है। हमारी स्तुति वर्द्धित हो। समिधा और हव्य द्वारा लोग अग्निकी परिचर्या करें। द्युलोकसे आकर देवोंने स्तोताओंको स्तोत्र सिखाया है। स्तोतागण स्तवनीय और प्रवृद्ध अग्निकी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं।

३ जो मेधावी, विशुद्ध-बल-शाली और जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु हैं, जो द्युलोकका सुख-विधान करते हैं, उन्हीं दर्शनीय अग्निको, देवोंने, यज्ञ-कार्यके लिये, वहनशील नदियोंके जलके बीच, प्राप्त किया है।

४ शोभन धनवाले, शुभ्र और अपनी महिमासे दीप्तिशाली अग्निके उत्पन्न होते ही उन्हें सात नदियोंने संवर्द्धित किया था। जैसे अश्वी नवजात शिशुके पास जाती है, वैसे ही नदियाँ नवजात अग्निके पास गयी थीं। उत्पत्तिके साथ ही अग्निको देवोंने दीप्तिमान् किया।

× इस मण्डलके ऋषि विश्वामित्र और उनके वंशज हैं। प्राचीन भारतके अनेक ऋषियोंकी तरह विश्वामित्र भी गृहस्थ और महान् योद्धा थे। विश्वामित्र और उनके वंशजोंके साथ वसिष्ठ और उनके वंशजोंकी बड़ी प्रतिद्वन्द्विता थी

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५॥
वव्राजासीम नदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्तवाणीः ॥६॥
स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना महीदस्मस्य मातरा समीची ॥७॥
बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्योद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥८॥
पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥
पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत् पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये निपाहि ॥१०॥

---

५ शुभ्रवर्ण तेजके द्वारा अन्तरीक्षको व्याप्त करके अग्निदेव यजमानको स्तुति-योग्य और पवित्र तेजके द्वारा परिशोधित करते तथा दीप्तिका परिधान करके यजमानको अन्न और प्रभूत तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति देते हैं।

६ अग्नि जलकी चारो ओर जाते हैं। वह जल अग्निको नहीं बुझाता अथवा वह अग्नि द्वारा नहीं सूखता। अन्तरीक्षके अपत्यभूत अग्नि वस्त्रसे आच्छादित नहीं हैं, तो भी, जलसे वेष्टित होनेके कारण, नग्न भी नहीं हैं। सनातन, नित्य, तरुण और एक स्थानसे उत्पन्न सात नदियाँ एक अग्निका गर्भ धारण करती हैं।

७ जल-वर्षणके अनन्तर जलके गर्भ-स्वरूप और अन्तरीक्षमें पुञ्जीभूत नानावर्ण अग्निकी किरणें रहती हैं। इन अग्निमें जलरूप स्थूल धेनुएँ सबकी प्रीति-दायिका होती हैं। सुन्दर और महान् द्यावापृथिवी दर्शनीय अग्निके माता-पिता हैं।

८ बलके पुत्र, सबके द्वारा तुम्हें धारण करनेपर तुम उज्ज्वल और वेगवान् किरण धारण करके प्रकाशित होओ। जिस समय अग्नि यजमानके स्तोत्र द्वारा बढ़ते हैं, उस समय मधुर जलधारा गिरती है।

९ जन्मके साथ ही अग्निने पिता (अन्तरीक्ष) के अधस्तन जल-प्रदेशको जाना था और अधस्तन-सम्बन्धिनी धारा या वृष्टि और अन्तरीक्षचारी वज्रको गिराया था। अग्नि, शुभकर्त्ता वायु आदि बन्धुओंके साथ, अवस्थान करते और अन्तरीक्षके अपत्यभूत जलके साथ गुहामें वर्त्तमान रहते हैं। इन अग्निको कोई नहीं पाता।

१० अग्नि पिता (अन्तरीक्ष) और जनयिताका गर्भ धारण करते हैं। एक अग्नि बहुतर वृद्धिको प्राप्त ओषधिका भक्षण करते हैं। सपत्नी और मनुष्योंकी हितकारिणी द्यावापृथिवी अभीष्टवर्षी अग्निके बन्धु हैं। अग्नि, तुम द्यावापृथिवी-को अच्छी तरह बचाओ।

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११॥
अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रियः जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२॥
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा संहि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३॥
बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥१४॥
ईले च त्वा यजमानो हविर्भिरीले सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि संजरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५॥
उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभिष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥१६॥

---

११ महान् अग्नि असम्बाध और विस्तीर्ण अन्तरीक्षमें वर्द्धित होते हैं; क्योंकि बहु-अन्नवान् जल उनको अच्छी तरह वर्द्धित करता है। जलके जन्मस्थान अन्तरीक्षमें स्थित अग्नि भगिनी—स्थानीया नदियोंके जलमें प्रशान्त चित्तसे शयन करते हैं।

१२ जो अग्निदेव समस्त संसारके जनक, जलके गर्भभूत, मनुष्योंके सुरक्षक, महान्, शत्रुओंके आक्रमणकर्त्ता, संग्राममें अपनी महती सेनाके रक्षक, सबके दर्शनीय और अपनी दीप्तिसे प्रकाशमान हैं, उन्होंने ही यजमानके लिये जल उत्पन्न किया है।

१३ सौभाग्यशाली अरणिने दर्शनीय, विविध रूपवान् तथा जल और ओषधियोंके गर्भभूत अग्निको उत्पन्न किया है। सारे देवता लोग भी स्तुति-योग्य, प्रवृद्ध तथा सद्योजात अग्निके पास, स्तुति-सम्पन्न होकर, गये थे। उन्होंने अग्निकी परिचर्या भी की थी।

१४ दीप्तिशाली बिजलीकी तरह महान् सूर्यगण अगाध समुद्रके बीच अमृतका दोहन करके, गुहाकी तरह, अपने भवन अन्तरीक्षमें प्रवृद्ध और प्रभा द्वारा प्रदीप्त अग्निका आश्रय करते हैं।

१५ हव्य द्वारा मैं यजमान तुम्हारी स्तुति करता हूँ। धर्म-क्षेत्रमें बुद्धि पानेकी इच्छासे तुम्हारे साथ बन्धुत्वके लिये प्रार्थना करता हूँ। देवोंके साथ मुझ स्तोताके पशु आदिकी और मेरी, दुर्दम्य तेजके द्वारा, रक्षा करो।

१६ सुनेता अग्नि, हम तुम्हारा आश्रय चाहते हैं। हम समस्त धनकी प्राप्तिका कारणीभूत कर्म करते और हव्य प्रदान करते हैं। हम तुम्हें वीर्यशाली अन्न प्रदान करके अदेवों और अहितकारी शत्रुओंको जीत सकें।

आ देवनामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रतिमर्तां अवासयो दमूना अनुदेवान्रथिरो यासि साधन् ॥१७॥
निदुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९॥
एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्रपूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मन्जन्मन्निहितो जातवेदाः ॥२०॥
जन्मन्जन्मन्निहतो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥
इमं यज्ञं सहसावन्त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्रयंसि होतर्बृहतीरिषो नोग्ने महि द्रविणमायजस्व ॥२२॥
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥



१७ अग्नि, तुम देवोंके स्तवनीय दूत हो। तुम सारे स्तोत्रोंके ज्ञाता हो। तुम मनुष्योंको उनके अपने-अपने गृहमें वास देते हो। तुम रथी हो। तुम देवोंका कार्य-साधन करके उनके पीछे-पीछे जाते हो।

१८ नित्य राजा अग्नि यज्ञका साधन करके मनुष्योंके गृहमें बैठते हैं। अग्नि सारे स्तोत्र जानते हैं। अग्निका अंग घीके द्वारा दीप्तियुक्त है। विशाल अग्नि प्रकाशमान होते हैं।

१९ गमनेच्छु महान् अग्नि, मङ्गलमयी मैत्री और महान् रक्षाके साथ हमारे पास आओ और हमें बहुल, निरुपद्रव, शोभन स्तुतिवाला और कीर्त्तिशाली धन दो।

२० अग्नि, तुम पुराण पुरुष हो। तुम्हें लक्ष्य करके इन सब सनातन और नवीन स्तोत्रका हम पाठ करते हैं। सर्व-भूतज्ञ अग्नि मनुष्योंके बीच निहित हैं। उन अभीष्टवर्षी अग्निको लक्ष्य करके हमने यह सब सवन किया है।

२१ सारे मनुष्योंमें निहित और सर्व-भूतज्ञ अग्नि विश्वामित्र द्वारा अनवरत प्रदीप्त होते हैं। हम उनका अनुग्रह प्राप्त करके यज्ञार्ह अग्निका अभिलषणीय अनुग्रह प्राप्त करें।

२२ बलवान् और शोभन कर्मवाले अग्नि, तुम सदा विहार करते-करते हमारे यज्ञको देवोंके पास ले जाओ। देवोंके बुलानेवाले अग्नि, हमें अन्न दो। अग्नि, हमें महान् धन दो।

२३ अग्नि, स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतुभूत और धेनुप्रदात्री भूमि हमें, चिर काल, दो। हमारे वंशका विस्तार करनेवाला और सन्तति-जनयिता एक पुत्र उत्पन्न हो। अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

२ सूक्त। वैश्वानर अग्नि देवता। जगती छन्द।

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१॥
सरोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत् पुत्रईड्यः।
हव्यवालग्निरजरश्चनोहितो दूलभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२॥
क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुपब्रुवे ॥३॥
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम्।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४॥
अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरोजना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥५॥
पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६॥
आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन्।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७॥

---

१ हम यज्ञ-वर्द्धक वैश्वानरको लक्ष्य करके विशुद्ध घृतकी तरह प्रसन्नता-दायक स्तुति करेंगे। जैसे कुठार रथका संस्कार करता है, वैसे ही मनुष्य और ऋत्विक् लोग देवोंको बुलानेवाले गार्हपत्य और आहवनीय, इन दो प्रकारके रूपोंवाले अग्निका संस्कार करते हैं।

२ जन्मके साथ ही वह द्यावापृथिवीको प्रकाशित करते हैं। वह पिता-माताकी प्रशंसाके अनुकूल पुत्र हुए थे। हव्यवाही, जरा-रहित, अन्नदाता, अहिंसित और प्रभाधन अग्नि मनुष्योंके, अतिथिके समान, पूज्य हैं।

३ ज्ञानी देवता लोग विपद्से उद्धार करनेवाले बलके द्वारा यज्ञमें अग्निको उत्पन्न करते हैं। ४ जैसे भार-वाही अश्वकी स्तुति करता हूँ, वैसे ही अन्नाभिलाषी होकर दीप्तिमान् तेजके द्वारा प्रकाशमान और महान् अग्निकी स्तुति करता हूँ।

४ हम स्तुति-योग्य वैश्वानरके श्रेष्ठ, लज्जा-रहित और प्रशंसनीय अन्नके अभिलाषी होकर भृगु-वंशियोंके अभिलाषप्रद, अभिलषणीय, प्रज्ञावान् और स्वर्गीय दीप्तिके द्वारा शोभावाले अग्निका भजन करता हूँ।

५ सुखकी प्राप्तिके लिये ऋत्विक् लोग कुशको फैलाकर और स्रुक्को उठाकर अन्नदाता, अतीव प्रकाशक, सारे देवोंके हितैषी, दुःखनाशक और यजमानोंके यज्ञ-साधक अग्निकी स्तुति करते हैं।

६ पवित्र दीप्तिवाले और देवोंको बुलानेवाले अग्नि, तुम्हारी सेवाके अभिलाषी यजमान लोग यज्ञमें कुश फैलाकर तुम्हारे योग्य याग-गृहकी सेवा करते हैं। उन्हें धन दो।

७ अग्निने द्यावापृथिवी और विशाल आकाशको भी पूर्ण किया था। यजमानोंने इन नवजात अग्निको धारण किया था। सर्वत्र व्याप्त और अन्नदाता यही अग्नि, अश्वकी तरह अन्न लाभके लिये, लाये जाते हैं।

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत् पुरोहितः ॥८॥
तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमुलोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥९॥
विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः संसीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत् स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१०॥
स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥११॥
वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२॥
ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्यमा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३॥
शुचिं न यामं निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४॥

---

८ नेता और महान् यज्ञके दर्शक जो अग्नि देवोंके सम्मुख उपस्थित हुए थे, उन्हीं हव्यदाता, शोभन यज्ञवाले, गृहके हितैषी और सर्वभूतज्ञता अग्निकी पूजा और परिचर्या करो।

९ अमर देवोंने अग्निकी इच्छा करके महान् और जगद्व्यापी अग्निकी पार्थिव, वैद्युतिक और सूर्यरूप तीन मूर्तियोंको शोभित किया था। उन्होंने तीनों मूर्तियोंमें से जगत्पालिका पार्थिव मूर्तिको मर्त्यलोकमें: रखा, शेष दो अन्तरीक्षमें गयीं।

१० धनाभिलाषी प्रजाओंने अपने प्रभु मेधावी अग्निको तलवारको तरह तीखो करनेके लिये संस्कृत किया था। वह उन्नत और निम्न प्रदेशोंको व्याप्त करके गमन करते और सारे भुवनोंका गर्भ धारण करते हैं।

११ नवजात और अभीष्टवर्षी वैश्वानर अग्नि नाना स्थानोंमें सिंहकी तरह गर्जन करके अनेक जठरोंमें वर्द्धित होते हैं। वह अत्यन्त तेजस्वी और अमर हैं। वह यजमानको रमणीय वस्तु प्रदान करते हैं।

१२ स्तोताओं द्वारा स्तुति किये जानेवाले वैश्वानर अग्नि चिरन्तनकी तरह अन्तरीक्षकी पीठ—स्वर्ग—पर चढ़ते हैं। प्राचीन ऋषियोंके सदृश यजमानोंको धन देकर वह जागरूक होकर देवोंके साधारण मार्गपर,सूर्य रूपसे, भ्रमण करते हैं।

१३ बलवान्, यज्ञार्ह, मेधावी, स्तुतियोग्य और द्युलोक-वासी जिन अग्निको द्युलोकसे लाकर वायुने पृथिवी पर स्थापित किया है, हम उन्हीं नाना गतिवाले, पिङ्गलवर्ण किरणसे युक्त और प्रकाशमान अग्निसे नया धन चाहते हैं।

१४ प्रदीप्त, यज्ञमें गमनकारी, सारे पदार्थोंके ज्ञानभूत, द्युलोकके पताका-स्वरूप, सूर्यमें अवस्थित, उषाकालमें जागरूक, अन्नवान् और महान् अग्निकी, स्तोत्र द्वारा, याचना करता हूँ।

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥



३ सूक्त । वैश्वानर अग्नि देवता । जगती छन्द ।

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परिभूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२॥
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आचके ॥३॥
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥४॥
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥५॥

---

१५ स्तुत्य, देवाह्वानकारी, सर्वदा शुद्ध, अकुटिल, दाता, श्रेष्ठ, विश्वदर्शक, रथकी तरह नाना वर्णवाले, दर्शनीय रूपवाले और मनुष्योंके सदा कल्याणकर्त्ता उन अग्निदेवके पास मैं धनकी याचना करता हूँ ।

---

१ मेधावी स्तोता लोग, सन्मार्गकी प्राप्तिके लिये, बहु-बलशाली वैश्वानरको लक्ष्य कर यज्ञमें रमणीय स्तोत्रोंका पाठ करते हैं। अमर अग्नि हव्य प्रदानके द्वारा देवोंकी परिचर्या करते हैं। इसलिये कोई सनातन यज्ञको दूषित नहीं कर सकता ।

२ दर्शनीय होता अग्नि, देवोंके दूत होकर, द्यावापृथिवीके बीच जाते हैं। देवों द्वारा प्रेरित धीमान् अग्नि यजमानके सामने स्थापित और उपविष्ट होकर महान् यज्ञ-गृहको अलंकृत करते हैं।

३ मेधावी लोग यज्ञके केतु-स्वरूप और यज्ञके साधनभूत अग्निको अपने वीर कर्म द्वारा पूजित करते हैं। जिन अग्निमें स्तोता लोग अपने-अपने करने योग्य कर्मोंको अर्पण करते हैं, उन्हीं अग्निसे यजमान सुखकी आशा करते हैं।

४ यज्ञके पिता, स्तोताओंके बलदाता, ऋत्विकोंके ज्ञानहेतु और यज्ञादि कर्मोंके साधनभूत अग्नि पार्थिव और वैद्युतादि रूपके द्वारा द्यावापृथिवीमें प्रवेश करते हैं। अत्यन्त प्रिय और तेजस्वी अग्नि यजमान द्वारा स्तुत होते हैं।

५ आह्लादक, आह्लादजनक रथवाले, पिङ्गलवर्ण, जलके बीच निवास करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त, शीघ्रगामी, बलशाली, भर्त्ता और दीप्तिवाले वैश्वानर अग्निको देवोंने इस लोकमें स्थापित किया है ।

अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥६॥
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयून्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥७॥
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम्।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥८॥
विभावा देवः सुरणः परिक्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुपभूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥९॥
वैश्वानर तव धामान्याचके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१०॥
वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥



६ जो यज्ञ-साधक देवों और ऋत्विकोंके साथ कर्म द्वारा यजमानके नानाविध यज्ञोंका सम्पादन करते हैं, जो नेता, शीघ्रगामी, दानशील और शत्रुओंके नाशक हैं, वही अग्नि द्यावापृथिवीके बीच जाते हैं।

७ हम सुपुत्र और दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे; इसलिये, हे अग्नि, तुम देवोंकी स्तुति करो। अन्न द्वारा उन्हें प्रीत करो। हमारे धान्यके लिये भली भाँति वृष्टिको संचालित करो। अन्न दान करो। सदा जागरण-शील अग्नि, तुम महान् यजमानको अन्न दो; क्योंकि तुम सुकर्मा और देवोंके प्रिय हो।

८ मनुष्योंके पति, महान्, अतिथि-भूत, बुद्धि-नियन्ता, ऋत्विकोंके प्रिय, यज्ञके ज्ञापक, वेगयुक्त और सर्वभूतज्ञ अग्निको, नेता लोग, समृद्धिके लिये, नमस्कार और स्तुतिके द्वारा, प्रशंसा करते हैं।

९ दीप्तिमान्, स्तूयमान, कमनीय और सुन्दर रथवाले अग्नि बलके द्वारा सारी प्रजाको व्याप्त करते हैं। हम अनेकोंके पालक और गृहमें निवासी अग्निके सारे कर्मोंको, सुन्दर स्तोत्र द्वारा, प्रकाशित करेंगे।

१० विज्ञ वैश्वानर, तुम जिस तेजके द्वारा सर्वज्ञ हुए हो, मैं तुम्हारे उसी तेजका स्तव करता हूँ। जन्मके साथ ही तुम द्यावापृथिवी और सारे भुवनोंको व्याप्त कर डालते हो। अग्नि, तुम अपने सारे भूतोंको व्याप्त करते हो।

११ वैश्वानरके सन्तोषजनक कर्मसे महान् धन होता है; क्योंकि वह सुन्दर यज्ञ आदि कर्मकी इच्छासे यजमानों-को धन देते हैं। वह वीर्यशाली हैं। पिता-माता द्यावा-पृथिवीकी पूजा करते हुए उत्पन्न हुए हैं।

४ सूक्त। आप्री देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

समित् समित् सुमना बोध्यस्मे शुचा शुचा सुमतिं रासि वस्वः।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥१॥
यं देवास स्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् ॥२॥
प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥३॥
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा विर्बर्हिः ॥४॥
सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन।
नृपेशसो विदथेषु प्रजाता अभीमं यज्ञं विचरन्त पूर्वीः ॥५॥
आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥६॥

---

१ हे समिद्ध अग्नि, अनुकूल मनसे जागो। तुम अतीव गतिशील तेजसे युक्त होकर हमारे ऊपर धनके लिये अनुग्रह करो। द्योतमान अग्नि, देवोंको सम यज्ञमें ले आओ। अग्नि, तुम देवोंके सखा हो। अनुकूल मनसे मित्र देवोंका यज्ञ करे।

२ वरुण, मित्र और अग्नि जिन तनूनपात् नामक अग्निका, प्रतिदिन तीन बार करके, यज्ञ करते हैं, वही हमारे इस जल-कारण यज्ञको वृष्टि आदि फल दें।

३ देवोंके आह्वानकारी अग्निके पास सर्वजन-प्रिय स्तुति गमन करे। इला, प्रसन्नता उत्पन्न करनेके लिये, प्रधान, अतीव अभीष्टवर्षी और वन्दनीय अग्निके पास जायँ। यज्ञकर्ममें कुशल अग्नि, हमारे द्वारा प्रेरित होकर यज्ञ करें।

४ अग्नि और बर्हिरूप अग्निक लिये यज्ञमें एक उन्नत मार्ग किया हुआ है। दीप्तियुक्त हव्य ऊपर जाता है। दीप्तिमान् यज्ञ-गृहके नाभिप्रदेशमें होता उपविष्ट हैं। हम देवोंके द्वारा व्याप्त कुशको बिछावेंगे।

५ जल द्वारा संसारके प्रसन्नकर्त्ता देवता लोग सप्त यज्ञमें जाते हैं। वे अकपट चित्तसे याचित होकर नररूपी यज्ञजात (अग्निरूप यज्ञ-द्वार-द्वय) प्रत्यक्ष होकर हमारे इस यज्ञमें आवें।

६ स्तूयमान अग्नि-रूप रात और दिन, परस्पर-संगत होकर अथवा पृथक् रूपसे, सशरीर प्रकाशित होकर आवें। मित्र, वरुण अथवा इन्द्र हमें जिस रूपसे अनुगृहीत करते हैं, तेजस्वी होकर, उसी रूपको धारण करें।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥७॥
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥८॥
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९॥
वनस्पतेव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥
आयाह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥



५ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानो बोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥१॥

---

७ मैं दिव्य और प्रधान अग्निरूप दोनों होताओंको प्रसन्न करता हूँ। यज्ञाभिलाषी, सप्त और अन्नवान् ऋत्विक् लोग हव्य द्वारा अग्निको प्रमत्त करते हैं। व्रतके रक्षक और दीप्तिशाली ऋत्विक् लोग प्रत्येक व्रतमें यज्ञरूप अग्निको यह बात बोलते हैं।

८ भारती लोगों (सूर्य-सम्बन्धियों) के साथ अग्नि-रूप भारती आवें, देवों और मनुष्योंके साथ इळा आवें, अग्नि भी आवें। सारस्वतगणों (अन्तरीक्षस्थ वचनों) के साथ सरस्वती भी आवें। ये तीनों देवियाँ आकर सम्मुखस्थ कुशपर बैठें।

९ अग्निरूप त्वष्टा देव, जिससे वीर, कर्मकुशल, बलशाली, सोमाभिषवके लिये प्रस्तर-हस्त और देवाभिलाषी पुत्र उत्पन्न हो सके, सन्तुष्ट होकर तुम हमें वैसा ही त्राण-कुशल और पुष्टिकारी वीर्य प्रदान करो।

१० अग्निरूप वनस्पति, तुम देवोंको पास ले आओ। पशुके संस्कारक अग्नि (वनस्पति) देवोंके लिये हव्य दें। वे ही यज्ञ-रूप देवता लोगोंको बुलानेवाले अग्नि यज्ञ करें; क्योंकि वे ही देवोंका जन्म जानते हैं।

११ अग्नि, तुम दीप्ति-युक्त होकर इन्द्र और शीघ्रताकारी देवोंके साथ एक रथपर हमारे सामने आओ। सुपुत्र-युक्त अदिति हमारे कुशपर बैठें। नित्य देवगण अग्निरूप स्वहाकारवाले होकर तृप्ति प्राप्त करें।

---

१ अग्नि उषाको जानते हैं। मेधावी अग्नि ज्ञानियोंके मार्गपर जानेके लिये जागते हैं। अत्यन्त तेजस्वी अग्नि देवाभिलाषी व्यक्तियोंके द्वारा प्रदीप्त होकर अज्ञानका द्वार उद्घाटित करते हैं।

प्रेद्धग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः।
पूर्वीऋृतस्य सन्दृशश्चकानः सन्दूतो अद्यौ दुषसो विरोके ॥२॥
अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्वपां गर्भो मित्र ऋतेन साधन्।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥३॥
मित्रो अग्निर्भवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः।
मित्रो अध्वर्यु रिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४॥
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥
ऋभुश्चक ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान्।
ससस्य चर्म घृतवत् पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥६॥
आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात् पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मातरानव्यसीकः ॥७॥
सद्योजात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥८॥

२ पूज्य अग्नि स्तोताओंके स्तोत्र, वाक्य और मंत्र द्वारा वृद्धि पाते हैं। देव-दूत अग्नि अनेक यज्ञोंमें दीप्ति प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रातःकाल प्रकाशित होते हैं।

३ यजमानोंके मित्र, यज्ञके द्वारा अभिलाषा पूरी करनेवाले और जलके पुत्र अग्नि मनुष्योंके बीच स्थापित हुए हैं। अग्नि स्पृहणीय और यजनीय हैं। वह उन्नत स्थानपर बैठे हैं। ज्ञानी अग्नि स्तोताओंकी स्तुतिके योग्य हुए हैं।

४ जिस समय अग्नि समिद्ध होते हैं, उस समय मित्र बनते हैं। वही, मित्र ही, होता और सर्वज्ञ वरुण हैं। वही, मित्र ही, दानशील अध्वर्यु और प्रेरक वायु हैं। वह नदियों और पर्वतोंके मित्र हैं।

५ सुन्दर अग्नि सर्वव्याप्त पृथिवीके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं। महान् अग्नि सूर्यके विहरण-स्थान अन्तरीक्ष-की रक्षा करते हैं। अन्तरीक्षके बीच मरुतोंकी रक्षा करते हैं। वह देवोंके प्रसन्नता-कारक यज्ञकी रक्षा करते हैं।

६ महान् और सारे ज्ञातव्योंके ज्ञाता अग्नि प्रशंसनीय और सुन्दर जल उत्पन्न करते हैं। अग्निके निद्रित रहनेपर भी उनका चर्म या रूप दीप्तिमान् रहता है वही अग्नि सावधानीसे उसकी रक्षा करते हैं।

७ दीप्तिमान्, विशेष रूपसे स्तुत और स्वस्थान-प्रिय अग्नि अधिरूढ़ हुए हैं। दीप्तिवाले, शुद्ध, महान् और पवित्र अग्नि पिता-माता द्यावापृथिवीको नवीनतर करते हैं।

८ जन्म लेते ही अग्नि ओषधियों द्वारा धृत होते हैं। उस समय पथ-प्रवाहित जलकी तरह शोभित ओषधियाँ जल द्वारा वर्द्धित होकर फल देती हैं। पिता-माता द्यावापृथिवीके क्रोड़में बढ़कर अग्नि हमारी रक्षा करें।

उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥९॥
उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वोऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥



६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥१॥
आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२॥
द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥३॥

---

९ हमारे द्वारा स्तुत और दीप्ति द्वारा महान् अग्निने पृथिवीकी नाभि वा उत्तर वेदीपर स्थित होकर अन्तरीक्षको प्रकाशित किया है । सबके मित्र और स्तुति-योग्य अरणि-प्रदीप्त अग्नि देवोंके दूत होकर यज्ञमें देवोंको बुलावें ।

१० जिस समय मातरिश्वाने भृगुओं वा आदित्य-रश्मियोंके लिये गुहास्थित और हव्य-वाहक अग्निको प्रज्वलित किया था, उस समय तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ महान् अग्निने तेज द्वारा स्वर्गको स्तब्ध किया था ।

११ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतु भूत और धेनु-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो । हमारे वंशका विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो । हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

---

१ यज्ञकर्त्ता लोग, तुम सोमाभिलाषी हो । मंत्र द्वारा प्रेरित होकर तुम देवार्चन-साधक स्रुक् ले आओ । जिसे आहवनीय अग्निकी दक्षिण दिशामें ले जाया जाता है, जिसके अन्न है, जिसका अग्र भाग पूर्व दिशामें है और जो अग्निके लिये अन्न धारण करता है, वही घृतयुक्त स्रुक् जाता है ।

२ जन्मके साथ ही तुम द्यावापृथिवीको पूर्ण करो । याग-योग्य, महिमा द्वारा तुम अन्तरीक्ष और पृथिवीसे प्रकृष्टतर होओ और तुम्हारे अंशभूत विशिष्ट अग्नि—सप्त जिह्वाएँ पूजित हों ।

३ अग्नि, तुम होता हो । जिस समय देवाभिलाषी और हव्य-युक्त मनुष्य तुम्हारे दीप्त तेजकी स्तुति करते हैं, उस समय अन्तरीक्ष, पृथिवी और यज्ञार्ह देवगण, यज्ञ-सम्पादनके लिये, तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

महान्त्सधस्थे ध्रुव आनिषत्तोन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥४॥
व्रताते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आततन्थ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥५॥
ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥६॥
दिवश्चिदाते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः।
अपो यदग्नउशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥७॥
उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नाना रथं वा विभवो ह्यश्वाः।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमावह मादयस्व ॥९॥
स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञं यज्ञमभिवृधे गृणीतः।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥१०॥

---

४ महान् और यजमानोंके प्रिय अग्नि, द्यावापृथिवीके बीच, महिमावाले अपने स्थान पर, बैठे हैं। आक्रमण-शीला, सपत्नीभूता, जरारहिता, अहिंसिता और क्षीरप्रसविनी द्यावापृथिवी अत्यन्त गमन-शील अग्निकी गायें हैं।

५ अग्नि, तुम सर्वोत्कृष्ट हो। तुम्हारा कर्म महान् है। तुमने यज्ञ द्वारा द्यावापृथिवीको विस्तृत किया है। तुम दूत हो। अभीष्टवर्षी अग्नि, उत्पन्न होनेके साथ ही तुम यजमानके नेता बनो।

६ द्युतिमान् अग्नि, प्रशस्त केशवाले, रज्जुयुक्त और घृतस्रावी रोहित नामक दोनों घोड़ोंको यज्ञके सम्मुख योजित करो। अनन्तर तुम सारे देवोंको बुलाओ। सर्वभूतज्ञ, तुम उन्हें सुन्दर यज्ञ-युक्त करो।

७ अग्नि, जिस समय तुम वनमें जलका शोषण करते हो, उस समय सूर्यसे भी अधिक तुम्हारी दीप्ति होती है। तुम भली भाँति प्रकाशमान पुरातन उषाके पीछे शोभित होते हो। स्तोता लोग स्तुतियोग्य होता अग्निकी स्तुति करते हैं।

८ विस्तीर्ण अन्तरीक्षमें जो देवगण हृष्ट हैं, आकाशकी दीप्तिमें जो सब देवता हैं, 'ऊम' संज्ञक जो यजनीय पितर लोग भली भाँति आहूत होकर आगमन करते हैं, रथी अग्निके जो सब अश्व हैं—

९ अग्नि, उक्त सब देवोंके साथ एक रथ अथवा नाना रथोंपर चढ़कर हमारे सामने आओ; क्योंकि तुम्हारे अश्वगण समर्थ हैं। ३३ देवोंको, उनकी स्त्रियोंके साथ, अन्नके लिये, ले आओ और सोम द्वारा हृष्ट करो।

१० विशाल द्यावापृथिवी, प्रत्येक यज्ञमें, समृद्धिके लिये, जिन अग्निकी प्रशंसा करती हैं, वे ही देवोंके होता। सुरूपा, जलवती और सत्यस्वरूपा द्यावापृथिवी, यज्ञकी तरह, सत्यसे उत्पन्न होता अग्निके अनुकूल हैं।

इलामग्ने पुरुदंस सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥

११ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतुभूत और धेनुदात्री भूमि सदा दो। हमारे वं और सन्ततिजनयिता एक पुत्र हो। अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

अष्टम अध्याय समाप्त

द्वितीय अष्टक समाप्त



